धारा...94 ग्रन्थांङ्क ...307

# कौन हूँ मैं ? गीताञ्जली

## (स्वशुद्धात्मा-ज्ञान-ध्यान-स्वरूप प्राप्ति)

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

**: पुण्य-स्मरण :**

**नन्दौड़ में द्वितीयबार (2018) चातुर्मास के उपलक्ष्य में।**

**स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)**

**गुप्तदानी द्वारा**

(आपके द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं और आगे भी होते रहेंगे।)

ग्रन्थाङ्क-307 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य-121/- रु.

**प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र**

**आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त**

**(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान**
**द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा**
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 082337-34502
**(2) डॉ. नारायणलाल कछारा**
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

## श्री गणाधिपति गणधराचार्य
## कुन्थुसागर विद्या शोध संस्थान

हातकणंगले - रामलिंगरोड, श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि, मु.पो. आळते-416101
ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

आचार्य श्री कनकनंदी जी महाराज को मेरा प्रति नमोस्तु।
आपके शोध पूर्ण ग्रंथ निकल रहे हैं, प्रसन्नता हुई। सर्व समाचार ज्ञात हुऐ।
विषय :
आचार्य कनकनंदी जी महाराज वर्तमान युग के वैज्ञानिकाचार्य हैं। आपने जिनदीक्षा धारण करने के बाद सरस्वती की आराधना त्रियोगपूर्वक किया है। इसलिए आपके ऊपर सरस्वती प्रसन्न हैं। आपने उपाध्याय पद को धारण किया है एवं आचार्य पद को भी धारण किया है। 'संघनायक' भी बने हैं। आप सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र के धनी हैं। आपने अपने जीवन में सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के बाद अनेक पुस्तकों का सृजन किया है। आपके अंदर जैनागम के अनुसार विद्वता भरी हुई है। आपकी लेखनी सतत चलती है। आपकी पुस्तकें जो भी हैं उसको पढ़ने के बाद ज्ञान विज्ञान समझ में आता है। आपका जीवन रत्नत्रय की आराधना में निकले ऐसा मेरा प्रतिनमोस्तुपूर्वक आशीर्वाद।

ग्रंथ संपादकों को मेरा आशीर्वाद। आप यह कार्य अच्छा कर रहे हैं।

ग.आ. कुन्थुसागर



## परमपूज्य स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज

### समुद्र के समान विशाल गुण धारी का एक कलश सा संक्षिप्त गुणानुवाद

एक ऐसे सन्त जो ज्ञान के कोष हैं।
एक ऐसे सन्त जो आध्यात्म की आन हैं।
एक ऐसे सन्त जो निर्मलता की पहचान हैं।
एक ऐसे सन्त जो सादगी की ढाल हैं।
एक ऐसे सन्त जिनके किसी विवाद या मतवाद से कोई सरोकार नहीं।
एक ऐसे सन्त जहाँ विद्यमान होते हैं वहाँ खुशहानी व समृद्धि बरसती है।
एक ऐसे सन्त जहाँ धन का नहीं बल्कि सेवा व ज्ञान का सम्मान होता है।
एक ऐसे सन्त जिनके पास सिर्फ और सिर्फ तत्त्व, आध्यात्म, आत्म शुद्धता, दया, सद्भाव व अनुशासन की ही चर्चा है।
एक ऐसे सन्त जो पाँच प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मौन रहते हैं।
एक ऐसे सन्त जिनकी वाणी व भाव में निंदा व कषाय का लोप है।
एक ऐसे सन्त जिनके पास छोटे से साधारण बच्चे द्वारा भी दर्शन पा लेना, प्रोत्साहन पा लेना, बिल्कुल सहज है।
एक ऐसे सन्त जिनकी संगति में आत्मा, भावना, आचरण व भाषा की शुद्धता होना तय है।
एक ऐसे सन्त जिनके ज्ञान की सादगी की वजह से दिगम्बर जैनों से ज्यादा श्वेतांबर अजैन क्षत्रिय राजपरिवार भी परम भक्त है।

एक ऐसे सन्त जो 20 से अधिक भाषाओं में व्याकरण सहित पारंगत है।

एक ऐसे सन्त जिन्होंने विश्व से सर्वाधिक 5000 से अधिक आध्यात्मिक सारभूत कविताओं की रचना की है और आगे भी यथावत जारी है।

एक ऐसे सन्त जिनके साहित्यों से विश्व की 59 विश्वविद्यालयों में शोध शिक्षा होती है।

एक ऐसे सन्त जो 300 से अधिक सन्तों के शिक्षा गुरु हैं।

एक ऐसे सन्त जो विलक्षण, श्रेष्ठतम, योग्यतम, दुर्लभतम, महानतम फिर भी अत्यंत सहजतम सुलभतम जिनका वर्षा योग छोटे से छोटा गाँव भी करा लेता है।

ऐसे हमारे गौरवशाली सन्त परमपूज्य स्वाध्याय तपस्वी सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज के चरणों में कोटि कोटि नमन।

**- लेखक : शाह मधोक जैन, चितरी**



# जैन धर्म की कुछ अति अद्वितीय विशेषतायें

सृजेता - आचार्य कनकनन्दी

(चालः आत्मशक्ति...(2) भातुकली...(3) शत-शतवन्दन...)

जैन धर्म की कुछ विशेषताओं का मैं कर रहा हूँ यहाँ वर्णन।
आगम में हुआ विस्तृत वर्णन, मेरे साहित्य में भी किया हूँ वर्णन।। ध्रुव

अनेकान्त है परम विशेषता युक्त जो अनन्त गुण-पर्याओं से युक्त।
हर द्रव्य में होते अनन्त गुण ऐसा वर्णन अनेकान्त(सिद्धांत) करता।
अनेकान्त को कहने वाला स्याद्वाद जो अनन्त सप्तभंग सहित।
अस्ति-नास्ति-अव्यक्तव्य आदि सापेक्ष परक कथन सहित।। (1)

वस्तु-व्यवस्था भी विशेषतायुक्त जो अनादि अनिधन व मौलिक।
जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाशकाल-
छहों/(हर) द्रव्य अनन्त गुण-पर्याय युक्त।।
छहों द्रव्य ही स्वयंभू सनातन सत्य अकृत्रिम अविनाशी-पृथक्-पृथक्।
परस्पर सहयोगी, एक क्षेत्र अवगाही तो भी एक दूसरों से है पूर्ण पृथक्।।(2)

कर्म सिद्धान्त भी विशेषताओं से युक्त द्रव्य-भाव-नोकर्म रूप में।
द्रव्यकर्म है पुद्गल परमाणु भावकर्म रागद्वेष मोह रूप।।
नोकर्म होते है पंचविध शरीर स्वरूप भावकर्म से बनते/(बन्धते) हैं द्रव्यकर्म।
तीनों कर्म भी परस्पर प्रभावित होते किन्तु 'भावकर्म' सबसे प्रभावी होते।।

गुणस्थान का स्वरूप भी विशेषता युक्त आध्यात्मिक क्रम विकास से सहित।
आध्यात्मिक विकास के कारण ही जीव अन्त में बनता परमात्म स्वरूप।।
परमात्मा बनने की इस प्रक्रिया से भव्यात्मा ही बने परमात्मा स्वरूप।

अभी तक बने हैं अनन्त परमात्मा और भी बनेंगे अनन्त परमात्मा रूप। (4)
इसलिये हर जीव स्वयं का कर्त्ता-धर्त्ता भव्य जीव स्वयं का भी उद्धार कर्त्ता।
तीनों कर्म रहित जीव बने परमात्मा कर्म सहित जीव ही संसारी आत्मा।।
धर्म तो वस्तु स्वभावमय होता अतः छहों द्रव्य भी होते धर्ममय।
जीवों का भी शुद्ध स्वभाव ही स्व-धर्म परमात्म स्वरूप ही जीवों का स्वधर्म।। (5)

अलौकिक गणित भी विशेषतायुक्त संख्यात-असंख्यात-अनन्त युक्त।
उपरोक्त हर विशेषताओं के मापक लौकिक गणित परे अलौकिक गणित।।
अतएव जैन धर्म होता विश्वव्यापक अकृत्रिम अनादि अनिधन शाश्वत।
सीमा व बन्धनों से रहित आत्मिक 'कनकनन्दी' का शुद्धात्मा स्वरूप।।(6)

सागवाड़ा दिनांक 17-2-2016 रात्रि 8.22

## जहाँ समस्या वहाँ ही समाधान

### (मेरे गुणों को दोष मानने-कहने वालों से प्रभावना )
### (अन्य की शंका(निन्दा) से स्व-पर लाभान्वित)

- आचार्य कनकनदी

(चाल:- आत्मशक्ति...)

जहाँ समस्या वहाँ ही समाधान, जहाँ गाँठ वहाँ ही गाँठ खुले निदान।
परतंत्रता दूर से यथा मिले स्वाधीन, कर्म क्षय ये यथा मिले परिनिर्वाण ।। (1)
अन्धेरा ही प्रकाश में होता परिवर्तन, 'दीपस्तमः पुद्गल भावतोअस्ति' प्रमाण।
''नैवाऽसतो जन्मः सतो न नाशो' न्याय, ''न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति'' प्रमाण।। (2)
हर क्षेत्र में हुआ अनुभव अनेक, बाल्यकाल से सम्प्रति कार्य पर्यन्त।
इस सम्बन्धी मेरे अधिक ग्रन्थ,अधिकांश वैज्ञानिक अनुसन्धान तक।। (3)
नवीन कुछ अनुभव यहाँ करूँ वर्णन, स्वयं दृष्टान्त स्वयं द्राष्टान्त मान्य।
शिष्य/(भक्त) मणिभद्र दीपेश खुशपाल, मेरे 'मैं' प्रयोग को माने थे भूल। (4)
किन्तु जब 'मैं' पढ़ाया उन्हें 'मैं' का सत्य, व्याकरण से आध्यात्मिक भी रहस्य।
''अहमेक्को खलु सुद्धो'' का बताया रहस्य, स्वयं प्रति व मेरे प्रति बढ़ा उत्साह।। (5)
अन्य भी जो 'मैं' का कर रहे स्वाध्याय, उनमें भी बढ़ रहा आत्मिक प्रभाव।
आनन्द उत्साह की हो रही वृद्धि,'अहंकार' ममकार की हो रही हानि/(क्षति )।। (6)
'आध्यात्मनन्दी' को था भाषा का गर्व, मेरी भाषा की निन्दा की ग्यारह वर्ष तक।।
जब उन्हें सिखाया हिन्दी व्याकरणादि, स्व-दोष-कमियों को कर रहे कमी/(हानि, दूर)।। (7)
अन्य भी जो कर रहे हैं अध्ययन, उन्हें भी ज्ञात हुआ नहीं है हिन्दी ज्ञान।
मैं भी कर रहा हूँ सरल हिन्दी प्रयोग, जिससे लाभान्वित हो रहे बहुत लोग।। (8)
'विमल' बोला आप (कनक सूरी) की हो रही निन्दा, ग्रन्थ प्रकाशन की हो रही बहुत निन्दा।
आगम से जब पढाया ज्ञानदान महिमा, स्वेच्छा से कर रहे ज्ञानदान प्रचुर।। (9)



मैं करता हूँ गुरु-शास्त्र -शिष्य प्रशंसा, अध्ययन-अध्यापन-ग्रन्थ लेखन।
देश-विदेशों में शिष्यों द्वारा ज्ञान प्रचार, इसे भी अनेक लोग माने मेरा अहंकार।। (10)
जब उन्हें पढ़ाया मैं विनय पंचप्रकार,निह्नव/(छिपाना) आदि से बन्धे घाती प्रचुर।
पूजा-प्रार्थना-आरती आदि गुण प्रशंसा, इनके बिना न होता धर्म प्रारंभ।। (11)
परनिन्दा-अपमान मैं न करूँ सर्वथा, ''गुणगणकथा दोषवादेच मौनं'' सर्वदा।
इसे भी अनेक शिष्य माने गलत, पर निन्दा को मानते थे कथन सत्य।। (12)
आगम से पढ़ाया जब बहुत विस्तृत, 'पुष्टमांस भक्षी' होते निन्दक लोग।
देव-शास्त्र-गुरु निन्दा से होता मिथ्यात्व,तब से हो रही क्रान्ति विशेष।। (13)
गौतम गणधर की शंका से दिव्यध्वनि निर्गत, जिससे हुआ जिनशासन प्रवत्त।
तथाहि अन्य कि शंका से हो रही प्रभावना, स्वाध्याय से ज्ञानदान की भावना।। (14)
'सत्यमेव जयते' भी हो रहा प्रसिद्ध, समता-शान्ति-क्षमा हो रही प्रसिद्ध।
इससे हो रही मेरी आत्मविशुद्धि, 'सूरी कनक' का लक्ष्य आत्मसिद्धि।।

## दोष दूर करने के उपाय

### (आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान से प्रायश्चित्त तक )

- श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल:- छोटी-छोटी गैया...)

दोष दूर करने के उपाय करूँ...आलोचना-प्रतिक्रमण साधन करूँ...
प्रत्याख्यान-प्रायश्चित भी करूँ...आत्म विशुद्धि हेतु सतत करूँ...

अनादिकाल से मैं पापी/दोषी रहा...जिससे संसार भ्रमण किया...
मेरी अवस्था दीन-हीन रही...रत्नत्रय से विरुद्ध रही...
राग-द्वेष मोह युक्त रहा...जिससे आत्म पतन किया...
गुरु देशना से आत्म बोध हुआ...जिससे स्व-दोषों का ज्ञान हुआ...

सांसारिक समस्त व्यवहार से...पञ्च पाप व सप्त व्यसन में...
आत्म विपरीत भाव कथन से...उपक्रम भव भ्रमण का किया...
अन्त:करण से आत्मा निन्दा करूँ... श्रीगुरु समक्ष गर्हा भी करूँ...
पश्चात्ताप-प्रतिक्रमण करूँ...अशुभ भावों को नष्ट करूँ...

पूर्वकृत समस्त पापों को त्यागूँ...आगामी पापों का भी त्याग करूँ...
अशुभ त्यागकर शुभ को वरूँ...शुद्ध प्राप्ति हेतु प्रयत्न करूँ...

नन्दौड़ दिनांक 25.7.2018, मध्याह्न 2.40

(आचार्य श्री द्वारा मेरे स्व-दोषों के निवारणार्थ यह कविता लिखने का प्रायश्चित मिला, जिससे यह कविता बनी।)

## निस्पृह संत की महानता देखो!

### (जैसा कि मैने 2016 से 2018 तक गुरुदेव कनकनन्दी को देखा और अनुभव किया। )

(चालः दिल है छोटा सा...) - बा.ब्र. पल्लवी

देखो! देखो! देखो! निस्पृहता देखो! कनक गुरु की महानता देखो!...
सीखो।सीखो।सीखो।...गुरुवर से सीखो...आत्म साधना प्रायोगिक सीखो।...(ध्रुव)

देह के प्रति...निर्ममत्व भाव...,तथापि करे है...श्रेष्ठ आहार...
शरीर माद्यं...खलुधर्म साधनं...स्वस्थ तन हेतु, आहार ग्रहणं...।।देखो।...(1)

संसार शरीर ...भोग विरक्त...अनात्म कार्य...चर्चा से रिक्त...
पंच प्रकार...स्वाध्याय रत...इसके अतिरिक्त...रहते मौन...।। देखो!...(2)

विषय कषाय से...रहित भाव...सरल-सहज...शान्त स्वभाव...
ख्याति पूजा...लाभ प्रसिद्धि त्यागी...सत्य समतामयी...आत्मानुभवी...।। देखो।...(3)

न भौतिक निर्माण...नहीं आडम्बर...आत्मिक गुणयुक्त...आत्म विकास...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश शून्य...ज्ञान-ध्यान व अध्ययन धन्य।।देखो!(4)

जाति-मत...पंथवाद से परे...भेद-भाव व ...पक्षपात परे...
संगठन समन्यव...सदाचार युक्त...वाद-विवाद...कलह मुक्त...।। देखो!(5)

निरंतर श्रुत...अभ्यास करते...शिष्य भक्तों को...प्रेरित करते...



प्रशंसा करके...प्रोत्साहन करते...कमियों को कहके...दोष मुक्त करते...।। देखो!...(6)

देश-विदेश के...ज्ञानी-विज्ञानी आते...विनय-भक्ति से...सुज्ञान पाते...
ज्ञानार्जन करके...हर्षित होते...गुरु चरणों में ...सुख शान्ति पाते...।। देखो!...(7)

कलिकाल के...श्रेष्ठ सूरी पाठक...मेरे लिए तो...तीर्थंकर स्वरूप...
तव समवशरण...दिव्यातिदिव्य...आते यहाँ पर...भव्यातिभव्य...।।देखो! ... (8)

निस्वार्थ भाव युक्त...आत्म प्रभावना...पंच महादेशों में धर्म प्रभावना...
गुरु-शिष्यों से...हो रही सतत...निस्पृह संत की ...निज प्रभावना...।। देखो...(9)

ऐसे गुरुवर का ...साधु जीवन धन्य-आपके साधना...हम सबको प्रिय...
मैं भावना भाऊँ...तव सम बनूँ...गुरु भक्ति करके...भव-सिन्धु तरूँ...देखो (10)

सागवाड़ा दिनांकः 04-07-2018 रात्रि : 9:56

## गुणगान करूँ कनकनन्दी जी का

ब्रा.ब्र. उमंग जैन

(चालः ए मेरे वतन के लोगो...)

हे। कनकनन्दी गुरुवर तुम हो करुणा (के) भण्डारी
हे मेरे गुरुवर तुम तो 2 हो दया की मूर्ति
आत्मज्ञानी हो तुम तो आत्मा का परिचय कराते
इसलिए गुरुवर उमंग पीछे-पीछे आवे है
जय हो! जय हो ! जय हो ! कनक गुरुवर की...(1)

जब मैं था पूर्ण मिथ्या में, तुमने सम्यक् दिखलाया
मेरे प्यारे गुरुवर तुम 2 जब सागवाड़ा में आये
मुझे आत्म ज्ञान करवाया मिथ्यामयी कुएँ से निकाला
मोक्ष मार्ग बतलाया गुरुवर तुमने ही मुझे बचाया
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की...(2)

मैं था बाह्य आडम्बर में, मैं था पूर्ण अज्ञानी
तुम तो बाह्य आडम्बर से 2 विरक्त हो तुम ध्यानी
गुरुवर तुम कल्याणकारी, कल्याण सभी का करते
हो गुरुवर तुम ज्ञानदानी, ज्ञान दान सतत तुम करते
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की ...(3)

हो गुरुवर मेरे प्यारे, हो तुम तो तारण हारे
मुझको भी तार दो गुरुवर 2, इस मायावी संसार से
आचार्य भी तुमको चाहते, मैं भी तुमको ही जपता
तेरा नाम जपने से मुझको, समस्या का हल मिल जाता
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की...(4)

वागड़ मेवाड़ की धरती, पावन तुम्ही से हुई है
वागड़ में जो क्रान्ति हुई है 2 वह आपसे हुई है
पहले मैं था अज्ञानी, अब हो गया सम्यग्दृष्टि
नहीं तो फँस जाता मैं भी, जैसे मोही फँस जाते हैं
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की...(5)

हे! कनकनन्दी गुरुवर, ज्ञान अर्जन बहुत किया है
अधिक आगम अध्ययन 2 विजयमती आर्यिका से किया
कुन्थुसागर जी से दीक्षा लेकर आगे बढ़े हो
कुन्थुगुरु का नाम आपने रोशन ही किया है
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की...(6)

बचपन से रहे ब्रह्मचारी, बचपन से रहे जिज्ञासु
बचपन से रहे विवेकी, बचपन से रहे सत्यवादी,
तुम अनेक विद्या के ज्ञानी, फिर भी तुम स्वयं को मानते
छोटे से छात्र समान, ओ मेरे भोले गुरुवर
जय हो! जय हो! जय हो! कनक गुरुवर की...(7)

सागवाड़ा दिनांक 27-07-2018 समय रात्रि 08:00



गुरु पूर्णिमा के उपलक्ष्य में

## कनक गुरु के पदचिन्हों पर चलना है

बा.ब्र. उमंग जैन
- संघस्थ आचार्य कनकनन्दी जी

(चालः चाहा है तुझको...)

माना है तुझको मानूँगा हर दम
कुछ भी हो जाए यह भक्ति न होगी कम (स्थायी)
तेरा स्मरण जो करता हूँ मुझे शक्ति मिलती है
मुझे हर पल मिलो तुम पल-पल यह जपता हूँ
यह जो मेरी भक्ति है बस तेरे ही प्रति है। माना है तुझको...(1)
तेरा जो ज्ञान वो मोक्ष को पाने का
झूठी यह लौकिक ऽऽ शिक्षा मेरी है
मेरे कनक गुरुवर तुम जो भी कह दोगे तो
वह ही मेरे लिए सत्य बन जाएगा
तेरी वाणी में जो होगा वही जिनवाणी में, माना है तुझको...(2)

तेरे ही कारण मैं जो भी हूँ आज
तुमने जितना दिया ऽऽ कोई ना दे पाया
मेरे उपकारी गुरुवर बस इतना कह देना
मुझे शिक्षा दोगे आप मार्ग भी बताओगे आप
इस अज्ञानी जीव को ज्ञानी बनाओगे आप, माना है तुझको...(3)

तेरे ही कारण मैं सत्य को जान पाया
नहीं तो फँस जाता लन्द, फन्द, चन्दा, चिट्ठा में,
तेरे ही कारण मैं सत्य को जान पाया
नहीं तो फँस जाता लन्द, फन्द, चन्दा, चिट्ठा में
अब मैं भी प्रतिज्ञा लेता हूँ मैं इनमें न फसूँगा
जो भी तुमने सिखाया है अनुकरण करूँगा
तेरे ही पदचिन्हों पर आगे बढ़ूँगा, माना है तुझको...(4)

मुंबई (महाराष्ट्र) दिनांक 8/7/2018 समय सायं 7.30

## गुरु दर्शन भावना

– निर्मला नरेन्द्र खोड़निया, सागवाड़ा

(चालः कोई दीवाना कहता है...)

पुनः दर्शन, पुनःदर्शन, पुनःदर्शन मिले गुरुवर।
यही है प्रार्थना मुनिवर, यही है भावना यतिवर।।

तुम्हारे दर्शन बिन गुरुवर, कहाँ हम चैन पायेंगे।
मुनिवर याद आयेंगे नयन आँसू बहाएंगे।।
निकाली नीर से मछली, तड़पती चेतना स्वामी। यही है प्रार्थना...(1)

बिना स्वाति की बूंदों के, पपीहा प्राण तज देगा।
कृपा के मेघ बरसा दो, कनक गुरु नाम रट लेगा।।
निहारे निर्मला तुमको, यही रटना रहे गुरुवर। यही है प्रार्थना...(2)

विरह की वेदना गुरुवर, तुम्हें कैसे सुनाये हम।
चाँद बिन ज्यों चकोरे सा, हमारा आज ये तन मन।।
शिशु माता से बिछुडा ज्यों, रुदन करता रहे गुरुवर । यही है प्रार्थना (3)

नहीं सुर सम्पदा चाहूँ, नहीं मैं राज पद चाहूँ।
यही है कामना मेरी (निर्मला) गुरु (कनक) तुमसा ही बन जाऊँ।।
मिले निर्वाण ना जब तक, रहो नयनों के पथगामी। यही है प्रार्थना...(4)

सागवाड़ा दिनांक 17-7-2018, मध्याह्न 2.37

## गुरु वन्दना

### (शुद्ध स्वरूपी, स्व-पर उद्धारक, आराध्य प्रभु आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव )

रचयित्री : दीपिका एन.शाह

चालः 1 आँखें बन्द करो... 2. छलिया मेरा नाम...

अंतर्मन से ध्यान करो और...लेलो गुरु का नाम...।
फिर देखो कैसे नहीं बनते...सारे बिगड़े काम...।।



/(आध्यात्म की ज्योति जगे और...होवे दिव्य प्रकाश...) (ध्रुवपद)

ये तो वो गुरुकुल जहाँ पर...सभी पाते हैं ज्ञान...।
ना तो कोई छोटा-बड़ा और...ना ही कोई विद्वान्...।।
यही तो है समदृष्टि गुरु की 2...यही तो है समभाव...।।
फिर देखो कैसे.../(अध्यातम)...। (1)

ख्याति-पूजा-लाभ से परे...महादेशों में विख्यात...।
दिव्यस्वरूपी महाविज्ञानी...अनन्त गुणों की खान...।।
शुद्ध स्वरूप को अपना माने 3...लक्ष्य है शुद्धात्म...।।

फिर देखो कैसे.../(अध्यातम) ... । (2)
मेरे तो आराध्य प्रभु हो...परम सत्य दर्शाय...।
कनक गुरु की चरण शरण में...मम जीवन बीत जाय...।।
मन शुद्ध कर दो मेरा 3...और हरो द्वेष अभिमान...।।

फिर देखो कैसे .../(अध्यातम)...। (3)
अंतर्मन से ध्यान करो और ...ले लो गुरु का नाम...।
अध्यात्म की ज्योति जगे और...होवे दिव्य प्रकाश...।।

दिनांक 29.7.18 गलियाकोट पु. कॉलोनी सागवाड़ा
(मैंने 2007 से 2018 तक आचार्य श्री (कनकनन्दीजी) को जाना, समझा और अनुभव किया।)

## 'कनक' गुरुवर का मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है

### (जैसा कि मैंने 1997 से 2018 तक गुरुदेव कनकनन्दी जी को देखा और अनुभव किया )

– रचयित्री – प्रेरणा शाह (सागवाड़ा)

(चालः जन्म-जनम का साथ...)

बहुत बड़ा उपकार है...गुरुवर जी तुम्हारा 2
तुमसे ही जाना है मैंने...स्वयं को कैसे पाना।। (ध्रुव) ।।

यदि न तुम मिलते मुझे...रहती मैं बहिरातम-2
राग-द्वेष-मोह-माया में...उलझी रहती हरदम-2
मेरे दोष बताकर मुझको...पापों से है बचाया...बहुत बड़ा...।। (1)।।

अनादिकाल से मैंने...मुझको ना पहचाना-2
इसीलिए तो गुरुवर...पर को अपना माना-2
तेरी कृपा से गुरुवर मैंने...आत्मज्ञान है पाया...बहुत बड़ा...(2)।।

स्वयं को जो नहीं जाने...पर को कैसे जाने-2
स्वयं को जो जीव जाने...पर को भी पहचाने-2
स्व-पर-भेद बताकर गुरुवर...स्व का बोध कराया...बहुत बड़ा...।।(3)।।

श्वास-श्वास में गुरुवर...आप ही आप बसे हो-2
सरल-स्वभावी गुरुवर...प्रभुवर सम लगते हो-2
आपकी प्रेरणा से ही गुरुवर...मैंने काव्य रचाया...बहुत बड़ा...।। (4)।।

सागवाड़ा, दि. 20-7-2018

## गुणनिधि आचार्य कनकनन्दी गुरुवर

रचयित्री - श्रीमति दृष्टि जिनेन्द्र जैन

(चालः कोई दिवाना कहता है...)

मेरे गुरुवर कनकनन्दी सरल सहज व भोले हैं
इनकी वैज्ञानिकता भी आध्यात्मिक युक्त है
मैं हूँ अल्पबुद्धि इनके गुणों का बखान क्या करूँ
इनकी वाणी सहज सरल मधुर व हितकारी है...(1)

देश-विदेश के शिष्य भी इनके गुणगान गाते हैं
ये ख्याति पूजा प्रसिद्धि से कोसों दूर रहते हैं ...
ये गुरुवर धैर्य नम्रता अनुशासन पालन करते हैं
छोटे ग्राम के उद्धारक आप तो शांत संत हैं। (2)



आधुनिक विज्ञान से परे आपका ज्ञान विशद है
समस्त ज्ञान विज्ञान के आप तो पुरोधा हैं
अपने पराये का कभी भेदभाव नहीं करते
धनी गरीब का भेदभाव कभी भी न करते...(3)

हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई दिगम्बर श्वेताम्बर आवे
आप से ज्ञानार्जन करके जीवन धन्य बनावे
समता की मूर्ति गुरुवर वीतरागी छवि प्यारी
निस्पृह निराडम्बर छवि आपकी है अति प्यारी...(4)

आपके ज्ञान अनुभव का जहाँ में न कोई सानी
वैज्ञानिक ज्ञानी को उत्तर देने में याद आए नानी
मेरे गुरुवर शांत एकांत व मौन में रहते हैं...
'दृष्टि' पे हो कृपा दृष्टि, सदा शुभ भावना भाऊँ।

नन्दौड़ दिनांक 5-8-2018, रात्रि 8.30

## ज्ञानी गुणी गुरु कनकनन्दी

- रचयिता - कुमार अक्षत जैन

(चालः ऐ मालिक तेरे बंदे हम...)

कनक गुरु तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से मिटे भरम...
अज्ञान मिटे विज्ञान मिले...जिससे मिलता है आनन्द परम...
आऽऽऽ आऽऽऽ (स्थायी)

जब समस्या का हो सामना...तब तू ही हमें थामना...
तेरी शरण मिले...ज्ञान शिक्षा मिले...भाव होवे सरल व सहज़..
तेरी सेवा में बीते जीवन...ऐसा भाव जगाये 'अक्षत'...
अज्ञान मिटे...(1)

बहुत ज्ञान है आपमें ...सारे गुण भी भरे आप में...
चिन्तन-मनन-ज्ञान-अध्ययन...सतत करे हैं गुरुवर...

स्वाध्याय से मिले आनन्द...और मिटे मन का ये भरम...
अज्ञान मिटे...(2)

नन्दौड़ दिनांक 08-08-2018 अपराह्न 07:20

## गुरुदेव कनकनन्दी के स्मरण से उदभवित रचना

- ब्र. अलका दीदी(कोबा)

गुरुदेव आपकी नजरों से निज को निहारा है।
बिखरा हुआ था सदियों से जीवन उसको संवारा है।।

मैं कौन हूँ और आया कहाँ से जाना कहाँ ये न बोध था।
निज आत्मा की गहराईयों का किया हमने कोई न शोध था।
धुंधला सा मेरा धर्माचरण था उसको निखारा है।। (1)

जिसे ढूंढते हम बाहिर भटक कर वो भीतर में तुमने ही दिखलाया
मनोरथ लिये दौड़े मन के जो घोड़े वो पल में तुमने है ठहराया।
सहज जीवन से सदुण का सौरभ जगत् में बिखेरा है।। (2)

क्या भेट दूँ मैं उनके चरण में जिनको जगत् की न आस है।
तन-मन ये आतम करूँ सर्व अर्पण ये जीवन तुम्हारा दास है।
परम पथ पर बढ़ते हर जीवन को तुम्हारा सहारा है।। (3)
(श्री संत चरण रज...)

श्री तारंगा तीर्थ दिनांक 14-7-2018

## नन्दौड़ की पावन भूमि में आचार्य कनकनन्दी श्री संघ

(चालः तुम दिल की धड़कन...) रचयिता - चयन जैन (कक्षा : पाँच)

कनकनन्दी गुरु के चरणों में, मेरा शत-शत वन्दन है।
नन्दौड़ ग्राम की यह भूमि, तेरे चरणों से पावन हुई है।।
ऐसे गुरुदेव के चरणों में चयन नमन करता है।। (स्थायी)

कनकनन्दी गुरु श्री संघ का, चातुर्मास नन्दौड़ ग्राम में हुआ।



दो हजार पन्द्रह (2015) व अठारह (2018) में,
दो बार चातुर्मास लाभ मिला।। ऐसे गुरुदेव के...(1)
कनक गुरु के स्वाध्याय में, ज्ञान की गंगा बहती है।
जो भी इस गंगा में नहाता, उसका जीवन धन्य होता।।
ऐसे गुरुदेव के...(2)

जो स्वाध्याय में आते हैं, 'मैं' /(आत्मा) का ज्ञान प्राप्त करते।
आत्मा की चर्चा सुनकर, आनन्द भरपूर आता हैं।
ऐसे गुरुदेव के...(3)

नन्दौड, दि. 9-8-2018, मध्याह्न में

## क्या खोया क्या पाया

### (आ. कनकनन्दी गुरुदेव के कारण)

- सौ. आनल विपिन शाह

(चालः तुम दिल की...)

मिथ्यात्व को खोया है, आत्मश्रद्धान को पाया है।
कनकनन्दी गुरुवर से, समता का पाठ पढ़ा है।। (ध्रु)

सत्य असत्य को जाना है, आत्म स्वरूप को जाना है
अज्ञान मोह को खोया है, अशुभ भावों को छोड़ा है।
शरीर भोगों से विरक्ति हुई, अन्तरात्मा को जाना है।...
स्व-आत्म तत्त्व ही उपकारी, गुरुदेव से जाना हैं। (1)

दान की महिमा जानी है, पात्र कुपात्र को जाना है।
चारों दान के माध्यम से, स्वर्ग-मोक्ष को पाना है।
सम्यक् दृष्टि जीव ही, अनन्त चतुष्टय को पाता।
तीन लोक का स्वामी बनना मेरा(आनल का) परम लक्ष्य है... (2)

सागवाड़ा दिनांक 16-7-2018 रात्रि 13: 30

## गुरुवर कनकनन्दी की महिमा

- सौ. आनल जैन

(चालः हे! राम...)

जय हो गुरुवर, जय हो ऋषिवर 2
पूजा तेरी, जग, करे ऽऽऽऽ

जय हो सूरिवर, जय हो यतिवर।।
कनकनन्दी गुरु,ज्ञान के सागर 2
कनकनंदी गुरु, रत्नत्रय धारी 2
'आनल' को आशीष दो ऽऽऽ जय हो...(1)

सिद्धान्त चक्री, स्वाध्याय तपस्वी 2
सरल स्वभावी, समता धारी 2
निस्पृह जगत् गुरु ऽऽ ।। जय हो...(2)

एकान्त मौनी प्रकृति प्रेमी 2
ख्याति पूजादि विभावों से दूर 2
स्वात्म रमण करे ऽऽऽ जय हो...(3)

दुर्लभ ऐसा ज्ञान-विज्ञान 2
स्वयं को स्वयं से स्वयं में पाना 2
शुद्ध-बुद्ध,-आनन्द (हूँ) मैं ऽऽ।। जय हो...(4)

गुरुवर की वाणी हम सबने मानी 2
आगम रहस्य (व) जिनवाणी जानी 2 ... (5)

सूरज सम प्रखर गुरुवर 2
चन्द्रमा सम शीतल गुरुवर 2
सागर धरती सम गम्भीर ऽऽऽ जय हो...(6)
सागवाड़ा दि. 16-7-2018 रात्रि 11.00



## आ. कनकनन्दी गुरुदेव के स्वाध्याय से मैं (आत्मा) को पाया

### (सहजभावी जीव ही धार्मिक)

(चालः बहुत प्यार करते है...)

कनकनन्दी गुरुवर है! तुमको नमन 2
वात्सल्य भावी, समता मगन।। ऽऽऽ धृ

निस्पृह उदार, सहिष्णु आप
अध्यात्म योगी, सहज सरल
निर्णय क्षमता 2 है अद्वितीय ऽऽऽ ।। (1)

न्याय, गणित, राजनीति, विज्ञान
सिद्धान्त आगम के, आप हो ज्ञाता
स्व-आत्म ज्ञान से, परमात्मा बनो ऽऽऽ (2)

भव्य ही भावी, है भगवान्
स्व-आत्म चिन्तन से बनता धार्मिक
श्रेष्ठतम भाव (काम) 2 से अन्तरआत्मा बनो ऽऽऽ (3)

स्वाध्याय कक्षा में आत्म बोध मिला
(आत्म) स्व गुण प्रशंसा से, आत्मोन्मुख बनता
पर चिन्ता करने से 2, परांगमुख बनता ऽऽऽ (4)

संत-समागम, संत संगति
गुरु देशना से, मिले सद्गति
प्रवीण भाई की देखो 2 हुई सुगति ऽऽऽ (5)

(सौ. आनल एण्ड डॉ. विपिन शाह)
रात्रि : 9-00 सागवाड़ा दि. 16-7-2018

## कनक गुरु के नाम स्मरण

- रचयिता - कुमार अक्षत जैन, कक्षा-छठवी

(चालः सुबह सवेरे लेकर तेरा नाम प्रभु...)

सुबह सवेरे लेकर तेरा नाम गुरु...करते हैं हम शुरु आज का काम गुरु
हो करते हैं हम...(स्थायी)

गुरुओं का सत्कार कभी न भूले हम...इतना बने महान् गगन को छूले हम
हो ...इतना बने महान्...(1)

शुद्ध भाव से तेरा ध्यान लगाए हम...विद्या का वरदान तुम्हीं से पाए हम
हो...विधा का वरदान...(2)...

तुम्ही से है प्रातः तुम्ही से शाम गुरु...करते हैं हम शुरु आज का काम गुरु...
हो...करते हैं हम...(3)

नन्दौड़, दिनांक 1-8-2018, रात्रि प्रायः 8-00

## हे 'कनक' गुरुदेव मेरी व्यथा और अभिलाषा

रचयित्री - नैना सारगिया

चाल :(तुम दिल ही धड़कन में, चांद सी महबूबा...)

हे गुरुदेव मुझे आपका सानिध्य, विवाह से पूर्व मिला होता
तो मैं कभी विवाह न करती, आपके संघ की प्रमुख आर्यिका बनती

1. भव शरीर भोगों में फंस गई हूँ
   यहाँ से अभी न निकल रही
   आपसे पढ़ के स्व का बोध हुआ
   अब स्व को पाने की भावना बढ़ रही
   लेकिन आगे बढ़ने का साहस न होता
   घर में भी मन व्याकुल रहता
   कठिन परिस्थिति आन पड़ी, आप ही इसे अब सुलझाओ



   हे! गुरुदेव मुझे...तो मैं कभी...

2. विवाह न होता तो परिवार न होता
   संसार न बढ़ता, राग-द्वेष न बढ़ता
   राग से ही है मोह पनपता
   मोह ही भव में भटकाता
   मोह-माया को त्यागना है
   कर्मों को अब काटना है
   जन्म-मरण से छूटना है, सिद्ध मुझे अब बनना है

   हे गुरुदेव मुझे आपका सानिध्य...
   तो मैं कभी विवाह न करती...

दिनांक 17-7-18, सायं 7:30 बजे सागवाड़ा

## मेरे गुरु की महिमा अपार

- रचयित्री - नैना सारगिया

ये है पावन गुरुकुल, यहाँ बार-बार आना
कनकनंदी जी के चरणों में आकर के झुक जाना
ये है पावन गुरुकुल...

मंदिर न मठ इनके, नौकर न सेवक हैं,
आकर्षण से ये दूर, आडम्बर से भी परे
ख्याति-पूजा-लाभ से दूर, प्रसिद्धि नाम से भी दूर
आत्मा को पहिचान के, निर्वाण प्राप्ति लक्ष्य इनका है। ये... (1)

मैं का अध्ययन करने, देश-विदेश के भक्त आते
बड़े-बड़े जज और वैज्ञानिक, आकर नतमस्तक होते
स्वाध्याय तपस्वी गुरु, अनुशासन प्रेमी हैं
ज्ञानी-विज्ञानी गुरु, सत्य के शोधक हैं। ये हैं... (2)

हर विषय पर कविता लिखें, गागर में सागर भर दें
तृण नारी से लेकर, सिद्धों की महिमा ये करते
आगम पारगामी गुरु, आध्यात्म प्रेमी गुरु
नहीं इन सम कोई ज्ञानी, नहीं इनका कोई सानी। ये है... (3)

गुरु से पढ़कर मैंने, स्व को पहिचाना है
इनकी निश्रा में मुझे, संसार पार होना है
भोले-भाले गुरुवर निश्चल है इनकी हँसी
सभी विधा के ज्ञाता गुरु, कनकनन्दी वैश्विक गुरु/ये है... (4)

गुरु की सन्निधि पाकर 'नैना' का जीवन पल्लवित
पूजन कर लो इनकी, भक्ति कर लो गुरु की
गुरु आराधन करके, स्वआत्मा को पाओ
बहुगुणधारी गुरुवर, उत्तम क्षमाभावी हैं ... ये है ... (5)
कुंथु गुरु के हीरा शिष्य, इस वसुधा में अद्वितीय
जलधि सम विशाल हृदय, जन-जन के दुलारे हैं
ये है पावन...कनकनंदी जी... (6)
दिनांक 1-7-2018 समय रात्रि 9-30 बजे

## कनक गुरु का क्या कहना ?

- रचयिता -कुमार चयन जैन

(चाल: जहाँ डाल-डाल पर...)

गुरु कनकनन्दी जी के चरणों में
शत-शत वन्दन है मेरा 2

जिस धरती पे गुरु चरण पड़े वह धरती पावन हुई।
ऐसे गुरुदेव का क्या कहना 2 ।।
कनक गुरु श्री संघ का मंगल प्रवेश हुआ है
गुरु कनकनन्दी श्री हममें ज्ञान का दीप जलाये...2 ऐसे गुरुदेव...(1)



गुरुदेव की स्वाध्याय कक्षा में जो बार-बार है आता
जो बार-बार है आता वह भी ज्ञानी बन जाता...2 ऐसे गुरुदेव...(2)
गुरु कनकनन्दी जिनने हमको 'मैं' का मतलब भी समझाया
जिनने 'आत्मा' का मतलब भी समझाया...2 ऐसे गुरुदेव का क्या कहना?(3)
नन्दौड़ दि. 2-8-2018 रात्रि 9:10

## ग्राम उद्धारक सन्त आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

- रचयित्री - श्रीमती दृष्टि जैन नन्दौड़

(चाल: 1 इक नाम सांचा...2 हे राम...2)

कनकनन्दी गुरु जग से निराले
अब तो आवो इनकी शरणा
गुरुदेव मेरे गुरुदेव
भजलो सभी गुरुदेव...(ध्रु )

गुरु चरणों में दृष्टि का नमन है
वैज्ञानिक गुरु नाम धरा है।
सरल सहज-आध्यात्मिक योगी
वैज्ञानिक धर्म सब को बताते...गुरुदेव (1)

छोटे-बड़े का न भेद हैं करते
सभी की भावना का सम्मान करते
प्रदूषण रिक्त प्रकृति में रमते
अतः छोटे गाँव में भी चौमासा करते... गुरुदेव(2)
मैं/(आत्मा) का सभी को परिचय कराते
इस हेतु स्वाध्याय की प्रेरणा देते
गुरुदेव मेरे गुरुदेव
भजलो सभी गुरुदेव ...2(3)
नन्दौड, दिनांक 2.8.2018 प्रातः

## गुरु का गुणानुस्मरण

- बा.ब्र. रोहित जैन

(चालः सुर ना सजे...)

गुरु है मिले...सब पाऊँ मैं...2
गुरु मिलने का सुख है पाया...2 (स्थायी)

मेरे गुरु सबसे अनुठे...2
गुरु को पाकर भव्य है जीते...2 (गुरु है मिले) (1)

गुरु भव्य को पार करावे, आतम ज्ञान से भव छुडावे...2
मैं का पाना ऽऽऽ0(2) गुरु बतावे...(गुरु है मिले) (2)

सिद्ध बनने का मार्ग बतावे, गुरु को पाकर भव्य हर्षायें...2
''हंस'' का दर्शऽऽऽ 2 गुरु करावे...(गुरु है मिले) (3)

नन्दौड़ दि. 12-08-2018 मध्याह्न 12:45

## कनकनन्दी गुरुदेव के गुणगान करने में शब्द कम लगते

- बा. ब्र. उमंग जैन

(चालः माता तू दया करके...)

गुरुदेव दया करके चरणों में शरण देना।
बहुत विनय तुमसे, स्वाध्याय करा देना।। (स्थायी)

'उमंग' भटका था, मुझे राह बता देना
जिस पथ के गामी तुम, वह पथ दिखा देना
मैं समझ ना पाया हूँ, इसे कैसे अपनाऊँ...इतनी सी...(1)

गुरुवर से जो पाया हूँ, वह कहीं नहीं मिलता
विनय भाव जो सिखाया, वह मैं ना सीख पाता
अगर तुम ना होते, मैं डूब ही जाता...इतनी सी...(2)

बाह्य जग-मग ही देखा, इसलिए भीतर ना देखा



अन्तर आत्मिक सुख है, वह पहले ना मिला
अब नहीं भाता मुझको, बाह्य सुख देने वाला...इतनी सी...(3)

हे ! मोक्ष के राही गुरु, गुणगान करूँ तेरा
जितने भी शब्द लिखूँ, सब ही कम लगे मेरे
सूरज को दिखाना दीपक, वैसा ही लगता है...इतनी सी...(4)

मुझमें अनन्त शक्ति, यह ज्ञान कराया है
मैं कभी नहीं मरता (हूँ) यह भी सिखाया है
आत्मा और शरीर में भेद करना सिखाया ...इतनी सी...(5)

मैं बाह्य त्याग को ही, पूर्ण साधुत्व माना था
भावों की विशुद्धता का महत्व बताया
शुद्ध भावों के साथ मुझे आगे बढ़ना...इतनी सी...(6)

सागवाड़ा दिनांक 9-8-18 समय 05:00 सांय

## नन्दौड़ ग्राम का अद्वितीय ऐतिहासिक चातुर्मास,

- सृजन - श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः हल्दी घाटी में समर लडयो...

नन्दौड़ ग्राम में चौमासो...एकल/(शाह) परिवार करायो है...
''कलिकाल श्रेयांस'' प्रवीणचन्द्र... नन्दा देवी ने पायो है...
निस्पृह गुरुवर कनकनन्दी .... श्रीसंघ कृपा बरसायो है ...
निराडम्बर चौमासा से...हीरक इतिहास बनायो है...
कलिकाल श्रेयांस...(स्थायी)...

गुरुभक्त शाह प्रवीणचन्द्र...कुशलगढ़ ग्राम में जन्म लियो...
नन्दौड़ ग्राम में निवास कर...गुरु सेवा से बहु पुण्य कियो...
नन्दा देवी की दृढ़ता से...द्वितीय/(बहु) चातुर्मास पायो है...
निराडम्बर चौमासा से...(1)

वाग्वर अञ्चल के ग्रामों से...जैन-हिन्दू भक्त-शिष्य आवे...

**आहारदान में भाग लेकर...स्वाध्याय/(ज्ञानार्जन) का लाभ करे...**
**सेवा-सहयोग की भावना से...जन-गण-मन हर्षायो है...**
**निराडम्बर चौमासा से...(2)...**

**गुरुदेव प्रतिज्ञा न्यारी है...स्व-पर-विश्व कल्याणी है...**
**धन-जन-मान व ख्याति से...संकीर्ण पन्थ-मत-जाति से...**
**निर्लिप्त साधक उदारमना...श्रीसंघ भाग्य से पायो है...**
**निराडम्बर चौमासा से...(3)...**

नन्दौड़, दि. 19-8-2018 रात्रि 10:00

## अतिशयकारी वर्षा योग स्थापन सम्पन्न

अरावली की सुरम्य पर्वत श्रृंखला में स्थित भाव भक्ति तथा मधुरता की भूमि वाग्वर अञ्चल के लघु ग्राम नन्दौड़ में ग्राम उन्नायक सन्त आचार्य प्रवर श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के द्वितीय चातुर्मास के मंगल प्रवेश में ग्राम व अञ्चल के जन-गण-मन द्वारा श्रीसंघ का अभूतपूर्व महान् सहज सरल भावभीना प्रभावनाकारी स्वागत देखकर अपूर्व आनन्द व उल्लास का सञ्चार हुआ। यह सब अतिशय कलिकाल श्रेयांस महान्देव शास्त्र गुरु आराधक स्व. श्री प्रवीणचन्द्र शाह व उनकी धर्म पत्नी श्रीमती नन्दा देवी सपरिवार के भावना भक्ति समर्पण व दृढता का प्रतीक बना।

ग्रीष्मकालीन प्रवास में सागवाड़ा के आबाल वृद्ध वनिता व अञ्चल के जिज्ञासु जनों में आचार्य श्री द्वारा की जा रही आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञान की क्रान्ति से भावात्मक विकास के साथ कविता सृजन व भाव अभिव्यक्ति की क्षमता में अपूर्व वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप सागवाड़ा के समाज जनों द्वारा आचार्य श्रीसंघ के आजीवन चातुर्मास-प्रवास हेतु भावभीना निवेदन किया गया, जिससे आह्लादित होकर आचार्य श्री ने सागवाड़ा नगर के जन-गण-मन को प्रोत्साहन अनुमोदना सह शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

वर्षायोग स्थापन के अनन्तर नन्दौड़ में गुरु पूर्णिमा व वीरशासन जयन्ती आदि पर्व अत्यन्त उत्साह व भावना भक्ति भावाभिव्यक्ति आदि के माध्यम से



आचार्य श्री संघ के प्रति आहारदान ज्ञानदान स्वाध्याय व ज्ञानार्जन आदि करके आध्यात्मिक धर्म प्रभावना हुई। इस अवसर पर पारडा ईटीवार ग्राम से पधारे भक्त व शिष्यों द्वारा आचार्य श्री संघ के आगामी चातुर्मास कराने हेतु सहृदय अनुरोध किया गया। आचार्य श्री ने अपने प्रवचन में वर्ष 2002 में किए गए दो महीने के पारडा ईटीवार के प्रवास का अनुभव बताते हुए कहा कि आपके ग्राम में जैन व अजैन विशेषतः ब्राह्मणों में भी गुरुदेव के प्रति अगाध श्रद्धा है व उस प्रवास में भी एक ब्राह्मण भक्त ने भावना व्यक्त की थी कि यदि आचार्य श्री चातुर्मास करते हैं तो मैं इसका 1/3 खर्च वहन करूँगा। उक्त ग्राम की भावना भक्ति सेवा समन्वय स्वच्छता, प्राकृतिक वातावरण आदि से प्रभावित आचार्य श्री ने आदर्श ग्राम बताया।

आचार्य श्री सृजित कृतियाँ (1) परम आत्महित-सत्य गीताञ्जली धारा 82 व (2) प्रश्नोत्तर रत्नमालिका गीतांः धारा 83 व (3) पाप < पुण्य < मोक्ष (शुद्ध) गीतां. धारा 84 जिनके ग्रंथांक क्रमशः 295-296-297 है इन तीन पुस्तकों का विमोचन भी हुआ। (श्रमण मुनि सुविज्ञसागर)

# विषयानुक्रमणिका


| क्र. | विषय | पृ. |
|---|---|---|
| 1. | परमपूज्य स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी गुरुराज | 3 |
| 2. | जैन धर्म की कुछ अति अद्वितीय विशेषतायें | 5 |
| 3. | जहाँ समस्या वहाँ ही समाधान | 6 |
| 4. | दोष दूर करने के उपाय | 7 |
| 5. | निस्पृह सन्त की महानता देखो! | 8 |
| 6. | गुणगान करूँ कनकनन्दीजी का | 9 |
| 7. | कनक गुरु के पदचिह्नों पर चलना है | 11 |
| 8. | गुरु दर्शन भावना | 12 |
| 9. | गुरु -वन्दना | 12 |
| 10. | 'कनक' गुरुवर का मुझ पर बहुत बड़ा उपकार है | 13 |
| 11. | गुणनिधि आचार्य कनकनन्दी गुरुवर | 14 |
| 12. | ज्ञानी गुणी गुरु कनकनन्दी | 15 |
| 13. | गुरुदेव के स्मरण से उद्भवित रचना | 16 |
| 14. | नन्दौड़ की पावन भूमि में आचार्य कनकनन्दी श्रीसंघ | 16 |
| 15. | क्या खोया क्या पाया (आ.कनकनन्दी गुरुदेव के कारण) | 17 |
| 16. | गुरुवर कनकनन्दी की महिमा | 18 |
| 17. | आ. कनकनन्दी गुरुदेव के स्वाध्याय से मैं (आत्मा) को पाया | 19 |
| 18. | कनक गुरु के नामस्मरण | 20 |
| 19. | हे 'कनक' गुरुदेव-मेरी व्यथा और अभिलाषा | 20 |
| 20. | मेरे गुरु की महिमा अपार | 21 |
| 21. | कनक गुरु का क्या कहना ? | 22 |
| 22. | ग्राम उद्धारक सन्त आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव | 23 |
| 23. | गुरु का गुणानुस्मरण | 24 |
| 24. | कनकनन्दी गुरुदेव के गुणगान करने में शब्द कम लगते | 24 |
| 25. | नन्दौड़ ग्राम का अद्वितीय ऐतिहासिक चातुर्मास | 25 |
| 26. | अतिशयकारी वर्षा योग स्थापना सम्पन्न | 26 |




# शुद्धात्मा स्वरूप


| क्र. | विषय | पृ. |
|---|---|---|
| 1. | कौन हूँ मैं...! क्यों बना हूँ मुमुक्षु साधक...! ? | 30 |
| 2. | मेरा स्व-शुद्धात्मा ध्यान के सूत्र | 45 |
| 3. | ध्यान सूत्राणि | 47 |
| 4. | मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द | 80 |
| 5. | शुद्ध<बुद्ध<आनन्द (आध्यात्मिक शान्ति) | 90 |
| 6. | मेरा आत्मविश्लेषण स्वरूप संबोधन हेतु | 104 |
| 7. | स्वयं को मनाऊँ बड़े चाव से...अन्य को मनाऊँ मैं दया भाव से | 111 |
| 8. | मुझ से कोई न छोटा न कोई महान् | 120 |
| 9. | स्व-आत्मश्रद्धान बिना ज्ञान व धर्मकर्म संसार कारण | 134 |
| 10. | मेरी तीव्र प्रज्ञा बढ़ने व शिक्षा लेने के कारण | 145 |
| 11. | मेरे कम प्रयास से अधिकतम सफलता के सूत्र | 146 |
| 12. | शुभस्य शीघ्रं अशुभस्य काल हरणम् ! | 148 |
| 13. | मेरी नीति-साधना-उपलब्धि | 156 |
| 14. | स्व-आत्म आराधना हेतु धर्माराधना (वन्दे तद् गुणलब्धये) | 171 |
| 15. | प्रदूषित परिणामी ही अधिक अधर्मी, स्थूल पाप बिना भी | 173 |
| 16. | मेरे परम उपकारी सत्य-समता-शान्ति | 197 |
| 17. | मैं हूँ दास सबसे नीच | 198 |

शुद्धात्मा का स्वरुप

## कौन हूँ मैं .....!? क्यों बना हूँ मुमुक्षु साधक ! ?

(चाल: आत्मशक्ति...) - आचार्य कनकनदी

**सब से श्रेष्ठ हूँ, सब से ज्येष्ठ हूँ, सबसे पावन हूँ जीव द्रव्य।**
**हर जीव मेरे समान है, कोई सुप्त तो काई अभिव्यक्त।। (1)**

**अनादि कर्मबन्ध के कारण भले अभी मैं हूँ अशुद्ध जीव।**
**किन्तु शक्ति अपेक्षा मैं भी हूँ, सिद्ध समान श्रेष्ठ व ज्येष्ठ।। (2)**

**सिद्ध भी थे मेरे समान कर्म बन्ध के कारण अशुद्ध जीव।**
**किन्तु वे आत्मसाधना के द्वारा, कर्म नाश से बने विशुद्ध जीव।।**
**उनके समान मैं भी आत्मसाधना से, कर्मनाश से बनूँगा शुद्ध।**
**शुद्ध बनने हेतु ही मैं भी बना हूँ मुमुक्षु साधक।। (4)**

**राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध मद तथाहि ईर्ष्या तृष्णा व घृणा।**
**ये सभी है भाव कर्म बन्ध तथाहि संकल्प-विकल्प-संक्लेश।। (5)**

**इनसे ही उपजते हैं आकर्षण-विकर्षण तथा हि भोग-उपभोग।**
**पर निन्दा अपमान वैर-विरोध आक्रमण युद्ध से ले हत्या तक।।(6)**

**अन्याय-अत्याचार-शोषण-मिलावट तथा फैशन-व्यसन।**
**ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि आदि भी होते हैं कर्मबन्ध के कारण।। (7)**

**संकीर्ण-कट्टरता व अन्धानुकरण तथाहि ढोंग व पाखण्ड।**
**दिखावा-आडम्बर-वर्चस्व-प्रतिस्पर्धा (आदि) से भी होता कर्मबन्ध (8)**

**इन सब से परे होने पर ही मैं बनूँगा-श्रेष्ठ-ज्येष्ठ पावन।**
**इस हेतु ही मैं कर रहा हूँ निस्पृह से ध्यान व अध्ययन।। (9)**

**समता-शान्ति व मौन साधना से कर रहा हूँ आत्मविशुद्धि।**
**इससे ही कर्म नाश करके 'कनक' पाऊँगा स्व-आत्मोपलब्धि ।। (10)**

**आत्मोपलब्धि से मुझे मिलेंगे मेरे ही अनन्त ज्ञान-दर्श-सुख-वीर्य**
**शुद्ध-बुद्ध व आनन्द होकर, मैं बनूँगा श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-पावन।। (11)**

नन्दौड़ 12.08.2018 मध्याह्न 02:54



**सन्दर्भ :**

## स्वशुद्धात्मोपलब्धि ही मोक्षमार्ग

**एवं जिणां जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा।**
**जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स।।**

My saluation to that path leading so Nirvana and to those who, following it, attained the state of Sramans, of Jinas of Jinendra and of Siddhas.

आगे विशेष करके समर्थन करते हैं कि यह अपने शुद्धात्मा की प्राप्ति लक्षण ही मोक्ष मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है -

(एवं) इस तरह पूर्व कहे प्रमाण (मग्गं समुट्ठिदा) मोक्ष मार्ग को प्राप्त होकर (समणा) मुनि, (जिणा) सामान्य केवली जिन, (जिणिंदा) तथा तीर्थंकर केवली जिन, (सिद्धा) सिद्ध परमात्मा (जादा) हुए (तेसिं) उन सबको (य) और (तस्सणिव्वाणमग्गस्स) उस मोक्षमार्ग को (णमोत्थु) नमस्कार हो। इस तरह बहुत प्रकार से पहले कहे हुए निज परमात्मतत्त्व के अनुभवमयी मोक्षमार्ग को आश्रय करने वाले जीव सुखःदुःख आदि में समताभाव से परिणमन करने वाले तथा आत्मतत्त्व में लीन अनेक मुनि हुए जो तद्भव मोक्षगामी न थे तथा सामान्यकेवलीजिन हुए व तीर्थंकर परमदेव हुए, ये सब सिद्ध परमात्मा हुए हैं। उस सबको तथा उस विकार रहित स्वसंवेदन लक्षण निश्चयरत्नत्रयमयी मोक्ष के मार्ग को हमारा अनन्तज्ञानादि सिद्ध गुणों का स्मरण रूप भाव नमस्कार हो, यहाँ अचरमशरीरी मुनियों को सिद्ध मानकर इसलिए नमस्कार किया है कि उन्होंने भी रत्नत्रय की सिद्धि की है। जैसा कहा है -

**तव सिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्रसिद्धे य।**
**णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंस्सामि।**

अर्थात् जिन्होंने तप में सिद्धि पाई है। नयों के स्वरूप ज्ञान में सिद्धि पाई है, संयम में सिद्धि की है, चारित्र में सिद्धि पाई है तथा सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान में सिद्धि पाई है, उन सबको मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। इससे निश्चय किया जाता है कि यही मोक्ष का मार्ग है, अन्य कोई नहीं है।

**समीक्षा** - आचार्य श्री ने इस गाथा में मोक्षमार्गी, मोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग के

वर्णन के साथ-साथ उन्हें भाव नमस्कार किया है। जो भी जीव मोक्ष गये हैं, जा रहे हैं और जायेंगे वह सब स्वशुद्धात्मोपलब्धि रूप निश्चय मोक्षमार्ग के माध्यम से ही संभव है और कोई मार्ग विकल्प विधान नहीं है क्योंकि सिद्धि स्वात्मोपलब्धि अर्थात स्वात्मा की उपलब्धि ही सिद्धि है मोक्ष है, परिनिर्वाण है। इसके अतिरिक्त कोई क्षेत्र (सिद्ध क्षेत्र या सिद्धशिला) कोई काल (चतुर्थ काल या सिद्ध होने के का काल) आदि मोक्ष के लिए उपादान कारण नहीं है क्योंकि -

**रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।**
**तम्हा तत्तियमइउ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।**

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता है इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है, वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ सर्वश्रेष्ठ अंतिम अनुपम पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ का अर्थ है (पुरुष + अर्थ) जो पुरुष के लिए/आत्मा के लिए/स्वयं के लिए कारणभूत हो/उपादेयभूत हो/अभिप्रेत हो उसे पुरुषार्थ कहते हैं।

पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में आचार्य अमृतचंद्रसूरि ने पुरुष का स्वरूप भी निम्न प्रकार से कहा है -

**अस्ति पुरुषश्चिदात्मा विवर्जितः स्पर्शगंधरसवर्णैः।**
**गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः।। (9)**

स्पर्श रस गंध वर्ण से रहित-वियुक्त गुणपर्यायों से विशिष्ट उत्पाद-व्यय ध्रौव्य से संयुक्त चैतन्यमय आत्मा पुरुष है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में अमृतचंद्रसूरि ने पुरुषार्थसिद्धि का स्वरूप बताते हुए कहा है कि जो संपूर्ण कर्मों से रहित होकर स्व-सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन रहता है वही कृतकृत्यपना है, वही मोक्ष है, वही जीव का स्वशुद्ध स्वरूप है। यथा -

**सर्वविवर्तोतीर्ण यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।**
**भवति तदा कृतकृत्यःसम्यक् पुरुषार्थसिद्धिमापन्नः।।**

जिस समय समस्त वैभाविक भावों से उत्तीर्ण वा रहित होकर वह पुरुष निष्कंप चैतन्यस्वरूप को प्राप्त होता है, उस समय समीचीन पुरुषार्थ सिद्धि (पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि) को पाता हुआ कृतकृत्य हो जाता है।



इस गाथा में आचार्य श्री ने स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्षमार्ग का वर्णन इसलिए किया है कि बिना मार्ग के गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँचा जा सकता है, बिना कारण कार्य नहीं हो सकता है। बिना साधन साध्य की सिद्धि नहीं हो सकती है। आचार्य उमास्वामी ने भी मोक्ष-शास्त्र के अंतिम अध्याय में मोक्ष का वर्णन किया है पर प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही मोक्षमार्ग का वर्णन इसीलिए किया है। इस सूत्र की टीका में तार्किक शिरोमणि भट्टाकलंक देव ने भी उपर्युक्त विषय का वर्णन तार्किक दृष्टिकोण से निम्न प्रकार किया है -

धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूप चार पुरुषार्थों में प्रधान पुरुषार्थ मोक्ष है। संसारी आत्मा के सर्व पुरुषार्थों में से अंतिम पुरुषार्थ प्रधान है और प्रधान के लिए किया हुआ पुरुषार्थ सफल होता है। इसलिए मोक्षमार्ग का उपदेश देना ही चाहिये क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति मोक्षमार्गोपदेश के आधीन है।

प्रश्न- चार पुरुषार्थ में मोक्ष पुरुषार्थ प्रधान है तो सर्वप्रथम मोक्ष का उपदेश करना चाहिए न कि मोक्ष मार्ग का।

उत्तर- ऐसा नहीं है क्योंकि उपदेश, जिज्ञासु पुरुष के प्रश्नानुसार ही किया जाता है।

प्रश्न - सर्वश्रेय कार्यों में मोक्ष ही आत्मा का सर्वश्रेष्ठ कार्य है, अन्तिम अनुपम एवं श्रेष्ठ पुरुषार्थ होने से इसलिए सर्वप्रथम मोक्ष का उपदेश करना चाहिए मोक्षमार्ग का नहीं ?

उत्तर - ऐसा कहना योग्य नहीं है क्योंकि तत्त्व का प्रतिपादन जिज्ञासु के प्रश्नानुसार ही होता है। मोक्षार्थी जिज्ञासु भव्य ने मोक्षमार्ग ही पूछा है, मोक्ष का स्वरूप नहीं पूछा इसलिए जिज्ञासु के प्रश्नानुसार मोक्षमार्ग का उपदेश करना ही न्यायसंगत है।

प्रश्न - मोक्षार्थी जिज्ञासु ने मोक्ष का स्वरूप क्यों नहीं पूछा ?

उत्तर - ऐसा नहीं कहना चाहिये कि मोक्ष क्यों नहीं पूछा, मोक्षमार्ग के उपदेश का कार्य विशेष मोक्ष है, उसके प्रति किसी का भी विवाद नहीं है।

प्रश्न - शंकाकार कहता है कि जिज्ञासु के प्रश्नानुसार ही प्रत्युत्तर दिया जाता है और जिज्ञासु ने मोक्षमार्ग जानने की इच्छा से मोक्षमार्ग का स्वरूप पूछा। उसने

सर्वप्रथम मोक्ष का स्वरूप क्यों नहीं पूछा ? मोक्षमार्ग किसलिये पूछा ? वा मोक्षमार्ग पूछने का क्या कारण है ?

उत्तर - ऐसा नहीं कहना, क्योंकि मोक्ष रूप कार्य विशेष के प्रति किसी का विवाद नहीं है। जितने भी सद्वादी हैं उन सबका मोक्ष रूप कार्य के प्रति एक मत है अर्थात् सभी दुःख की निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं परंतु कारण(मोक्षमार्ग) के प्रति सभी वादियों का एक मत नहीं है अर्थात् मार्ग के प्रति विवाद है।

मोक्षमार्ग के प्रतिवादियों का परस्पर वैसा ही विवाद है जैसा पटना जाने के लिए मार्ग का विवाद। जैसे विभिन्न दिशाओं से पटना जाने वाले यात्रियों का अपनी अपनी दिशाओं के अनुकूल मार्ग में विवाद होता है, प्राप्त करने योग्य पटना नगर के स्वरूप से नहीं, उसी प्रकार सर्वोच्च लक्ष्यभूत मोक्षकार्य को प्राप्त कर उस मोक्ष में आदर करने वाले सर्वसद्वादी है। मोक्षरूप कार्य में किसी का विवाद नहीं है परंतु मोक्ष के कारणभूत (सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र) मोक्षमार्ग के विवाद है। जैसे नैयायिक कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र रहित ज्ञान से ही मोक्ष होता है। (रा.वा. भाग-1, पृ 2)

उपर्युक्त मोक्षमार्ग में जो आगे बढ़ता है उसे ही मोक्ष मिलता है उसके अतिरिक्त अन्य मार्ग से मोक्ष उपलब्ध नहीं हो सकता है। भले वह सामान्य मोक्षमार्ग हो, शलाका पुरुष मोक्षमार्गी हो या तीर्थंकर मोक्षमार्गी ही क्यों न हो।

**ण वि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होई तित्थयरो।**
**णग्गो हि मोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे।। (23) सूत्र-पा.**

जिन शासन में कहा है कि वस्त्रधारी पुरुष सिद्धि को प्राप्त नहीं होता भले ही वह तीर्थंकर क्यों न हो। नग्न वेष ही मोक्ष मार्ग है शेष सब उन्मार्ग है, मिथ्यामार्ग है। इससे सिद्ध होता है कि धर्मानुशासन सबके लिए समान है। इसमें छोटा, बड़ा, समर्थ असमर्थ के लिए पक्षपात नहीं है। कोई अधिक प्रभावशाली हो पुण्यशाली हो और वह धर्म के अनुशासन को तोड़कर धर्म करना चाहे, मोक्ष प्राप्त करना चाहे तो वह उस कार्य में कृतकार्य/सफल नहीं हो सकता है। कुछ लोगों का मत है -

**समरथ को नहीं दोष गुसाई** अर्थात् समर्थ कोई दोष करता है तो उसे दोष नहीं लगता है, उससे वह निर्लिप्त रहता है, उसे दंड नहीं मिलता है परन्तु यह शाश्वतिक, प्राकृतिक नियम से विरोध है। धर्म में घूसखोरी, धोखाधड़ी, पक्षपात, मुँह



देखा कार्य नहीं होता है। सामान्य परिवार में जन्मे एक चरम शरीरी के लिए जो मोक्षमार्ग है वही मोक्षमार्ग तीर्थंकर प्रकृति से युक्त जन्म लेने वाले महाप्रभावशाली पुण्यवान् तीर्थंकर चरम शरीरी के लिए भी है। भले बाह्य गतिविधि में दोनों में कुछ अंतर परिलक्षित हो पर अंतरंग स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्षमार्ग में कोई अंतर नहीं रह सकता है। दोनों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए अंतरंग विशुद्धि रूप पुरुषार्थ समान करना पड़ेगा। यह है वस्तु स्वतंत्रता परंतु स्वच्छन्दता नहीं है, क्योंकि **जैन धर्म स्वैराचार विरोधिनी** अर्थात् जैन धर्म स्वैराचार विरोधी है। जैनधर्म में मनमाना निजमतानुसार कोई कार्य नहीं होता है परंतु सर्वज्ञ भगवान् द्वारा बताये गये वस्तु स्वरूप के अनुसार ही कार्य होता है। इससे सामान्य व्यक्तियों को शिक्षा लेना चाहिये कि तीर्थंकर के लिए भी मोक्षमार्ग सामान्य जन के समान है। तब क्या उनके लिए मोक्षमार्ग दूसरा हो सकता है ? जो मतानुसार मत, सम्प्रदाय बनाकर उसको मोक्षमार्ग मानते हैं और बताते हैं वे मोह मार्ग को ही अपनाते हैं। इसलिए मुमुक्षु भव्यों को आत्मोपलब्धि रूप मोक्षमार्ग ही श्रेयस्कर है अन्य नहीं ।

इस गाथा की द्वितीय पंक्ति में मुक्त जीव तथा मोक्षमार्ग को भी नमस्कार किया है। क्योंकि अभेदनय ने मोक्षमार्ग एवं मोक्षमार्गी में कोई अंतर नहीं है। इन्हें नमस्कार करने का उद्देश्य वंदे तद्गुणलब्धये ही है अर्थात् उनके गुणों की उपलब्धि के लिए मैं वंदना करता हूँ अर्थात् कोई भी भव्य भक्त बने बिना भगवान् नहीं बन सकता है। कुछ एकान्ती आध्यात्मवादी देव शास्त्र गुरु की भक्ति को एकान्ततः हेय मानते हैं। उनके लिए यह एक आदर्श प्रायोगिक उदाहरण है। जब स्वयं कुंदकुंददेव भी भावनमस्कार कर रहे हैं तो क्या उनके शास्त्र की कुछ गाथाओं को पढ़कर स्वयं को कुंदकुंद के सच्चे अनुयायी मानने वाले क्या कुंदकुंद के आदर्श के अनुसार चल रहे हैं ? क्या वे स्वयं कुंदकुंद के भक्त हैं ? कदापि नहीं क्योंकि जो जिसका भक्त होता है वह उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता है, भले करने में असमर्थ होने के कारण श्रद्धा रूप में ही उसे मानता है।

## मुमुक्षु को साम्यभाव - आवलम्बनीय

**तम्हा तह जाणित्ता अप्पाणं जाणगं सभावेण।**
**परिवज्जामि ममत्तिं उवट्ठिदो णिम्ममत्तम्मि।।**

Therefore, thus realising the soul as the knower by nature, I give up the nation of mineness and have to adopt the (nation of) non attachment.

आगे प्रथम ज्ञानाधिकार की पाँचवीं गाथा में आचार्य ने कहा था कि **उवसंपयामि सम्मं जुत्तो णिव्वाणसंपत्ती** मैं साम्यभाव को धारण करता हूँ, जिससे निर्वाण की प्राप्ति होती है, उसे अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए स्वयं ही मोक्षमार्ग की परिणति को स्वीकार करते हुए कहते हैं -

(तम्हा) इसलिए (तह) तिस ही प्रकार (सहावेण) अपने स्वभाव से (जाणगं) ज्ञायक मात्र(अप्पाणं) आत्मा को (जाणित्ता) जानकर (णिम्मत्तम्हि) ममता रहित भाव में (उवट्ठिदो) ठहरा हुआ (ममत्तिं) ममता भाव को (परिवज्जामि) मैं दूर करता हूँ। क्योंकि पहले कहे हुए प्रमाण शुद्धात्मा के लाभ रूप मोक्षमार्ग के द्वारा जिन, जिनेन्द्र तथा महामुनि सिद्ध हुए हैं इसीलिए मैं भी उसी ही प्रकार से सर्व रागादि विभाव से रहित शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव के द्वारा उस केवलज्ञानादि अनंतगुण स्वभाव के धारी अपने ही परमात्मा को जान करके सर्वपरद्रव्य सम्बन्धी ममकार अहंकार से रहित होकर निर्ममता लक्षण परमसाम्यभाव नाम के वीतरागचारित्र में अथवा उस चारित्र में परिणमन करने वाले अपने शुद्ध आत्म स्वभाव में ठहरा हुआ सर्वचेतन अचेतन व मिश्र रूप परद्रव्य सम्बन्धी ममता को सब तरह से छोड़ता हूँ। भाव यह है कि मैं केवलज्ञान तथा केवलदर्शन समभावरूप से ज्ञायक एवं टंकोत्कीर्ण स्वभावी हूँ, ऐसा होता हुआ मेरा परद्रव्यों के साथ अपने स्वामीपने आदि का कोई सम्बन्ध नहीं है मात्र ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है, सो भी व्यवहारनय से है निश्चय से यह ज्ञेय-ज्ञायक संबंध भी नहीं है। इस कारण से मैं सर्व परद्रव्यों के ममत्व से रहित होकर परम समता लक्षण स्वरूप अपने शुद्धात्मा में ठहरता हूँ। श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने उवसंपयामि सम्मं में समता भाव को आश्रय करता हूँ इत्यादि अपनी ही की हुई प्रतिज्ञा का निर्वाह करते हुए स्वयं ही मोक्षमार्ग की परिणति को स्वीकार किया है ऐसा जो गाथा की पातनिका के प्रारम्भ में कहा गया है। उससे यह भाव प्रगट होता है कि जिन महात्माओं ने उस प्रतिज्ञा को लेकर सिद्धि पाई है उन्हीं के द्वारा वास्तव में वह प्रतिज्ञा पूरी की गई है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव ने तो मात्र ज्ञान दर्शन ऐसे दो अधिकारों को ग्रंथ में समाप्त करते हुए उस प्रतिज्ञा को पूरा किया है। शिवकुमार महाराज ने तो मात्र ग्रन्थ के श्रवण से ही साम्यभाव का अवलम्बन



किया है, क्योंकि वास्तव में जो मोक्ष को प्राप्त हुए हैं उन्हीं की यह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई है न कि श्रीकुन्दकुन्दाचार्य देव की और न शिवकुमार राजा की क्योंकि? दोनों के चरमदेह का अभाव है ।

**दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं।**
**अव्वाबाधरदाणं णमो णमो सिद्धासाहूणं।।**

इस तरह निज शुद्धात्मा की भावनारूप मोक्षमार्ग के द्वारा जिन्होंने सिद्धि पाई है और जो उस मोक्षमार्ग के आराधना करने वाले हैं तथा उन सबको इस दर्शन अधिकार की समाप्ति में मंगल के लिए अथवा ग्रंथ की अपेक्षा मध्य में मंगल के लिये उस ही पद की इच्छा करते हुए आचार्य नमस्कार करते हैं -

(दंसणसंसुद्धाणं) सम्यग्दर्शन से शुद्ध (सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं) व सम्यग्ज्ञानमयी उपयोग से युक्त तथा (अव्वाबाधरदाणं) अव्याबाध सुख में लीन (सिद्धसाहूणं) सिद्धों को और साधुओं को (णमो णमो) बार-बार नमस्कार हो। जो तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोषों से रहित शुद्ध सम्यग्दृष्टि हैं, व संशयादि दोषों से रहित सम्यग्ज्ञानमयी उपयोगधारी है अथवा सम्यग्ज्ञान और निर्विकल्प समाधि में वर्तने वाले वीतरागचारित्र सहित है तथा सम्यग्ज्ञान आदि की भावना से उत्पन्न अव्याबाध तथा अनंतसुख में लीन हैं ऐसे जो सिद्ध हैं अर्थात् अपने आत्मा की प्राप्ति करने वाले अर्हंत और सिद्ध हैं तथा जो साधु हैं अर्थात् मोक्ष के साधक आचार्य, उपाध्याय तथा साधु हैं उन सबको मेरा बार-बार नमस्कार हो ऐसा कहकर श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने अपनी उत्कृष्ट भक्ति दिखाई है।

**जैन ज्ञानं ज्ञेयतत्त्वप्रणेतृ स्फीत्तं शब्दब्रह्म सम्यग्विगाह्य।**
**संशुद्धात्मद्रव्यमात्रैकवृत्या नित्यं युक्तैः स्थीयतेस्माभिरेवम्।।**

इस प्रकार ज्ञेयत्व को समझाने वाले जैन ज्ञान में - विशाल शब्दब्रह्म में सम्यक्तया अवगाहन करके (डूबकी लगाकर गहराई में उतरकर निमग्न होकर) हम मात्र शुद्ध आत्मद्रव्य रूप एक वृत्ति से (परिणति से) सदा युक्त रहते हैं।

**ज्ञेयीकुर्वन्नञ्जसासीमविश्वं ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम्।**
**आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि स्फूर्जत्यात्मा ब्रह्म संपद्य सद्यः।।**

आत्मा ब्रह्म को (परमात्मतत्त्व को सिद्धत्व को) शोध प्राप्त करके, असीम (अनंत) विश्व को शीघ्रता से (एक समय में) ज्ञेय रूप करता हुआ, भेदों को प्राप्त

ज्ञेयों को ज्ञानरूप करता हुआ (अनेक प्रकार) के ज्ञेयों को जानता हुआ ) और स्वपर प्रकाशक ज्ञान को आत्मरूप करता हुआ, प्रगट दैदीप्यमान होता है।

**द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम।**
**तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्ग द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य।।**

चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है। इस प्रकार वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं इसलिए या तो द्रव्य का आश्रय लेकर अथवा चरण का आश्रय लेकर मुमुक्षु (ज्ञानी मुनि) मोक्षमार्ग में आरोहण करो।

**समीक्षा** - आचार्य कुंदकुंददेव ने इस गाथा में अपने परमलक्ष्य को प्रतिपादित किया है। अपना स्वशुद्धात्मस्वरूप आत्मस्वभाव को जानने मात्र से, मानने मात्र से (श्रद्धान के लिए समस्त राग, द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार, ममकार विषय कषाय आदि सम्पूर्ण वैभाविक भावों को समग्रता से त्याग करके निर्मम, निरहंकार, निःकषाय, निर्मल, साम्यरस में लीन होना पड़ेगा तब जाकर स्वशुद्धात्मा की उपलब्धि हो सकती है, अन्यथा श्रद्धा एवं ज्ञान मोक्ष को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। कुंदकुंददेव ने शीलपाहुड में भी कहा है -

**विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।**
**उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं।। (13) शीलपाहुड़**

जो विषयों में मोहित हैं, जो उन्मार्गगामी हैं, इष्टदर्शी द्वारा कथित मार्ग के ज्ञान के ज्ञाता होते हुए भी उनका ज्ञान निरर्थक है।

**जदि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।**
**जदि सिक्खिऊण अणयं करेदि किं तस्स सिक्खफलम्।।**

हस्त में दीपक होते हुए भी और कुएँ को देखते हुए भी जो कुएँ में गिरता है उसके हस्त में स्थित दीपक क्या कर सकता है? क्या गिरते हुए मनुष्य को दीपक बचा सकता है ? कदापि नहीं अथवा दीपक युक्त मनुष्य के कुएँ में गिरने पर दीपक का कोई दोष होगा ? कदापि नहीं होगा। इसी प्रकार जो ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके भी ज्ञानानुसार आचरण नहीं करता, उसकी शिक्षा के ज्ञान का क्या फल रहा ? अर्थात् कोई नहीं।

**बहुमपि सुधमदिधं किं काहदि आजाण माणस्य।**
**दीव विसेसो अंधे णाण विसेसो वि तह तस्स।।**



जो आत्मज्ञान से रहित है वह बहुश्रुत का अध्यन करने पर भी क्या करेगा ? जैसे अंधे के लिए दीपक कोई विशेष कार्यकारी नहीं है उसी प्रकार वीतराग चारित्र अविनाभावी -वीतराग ज्ञान या चारित्र सम्पन्न ज्ञान रहित उसका विपुल श्रुतज्ञान क्या करेगा ?

**सीलस्स या णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहि णिद्दिट्ठो।**
**णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति।। (2)**

अनन्त केवली बुद्धों द्वारा निर्दिष्ट चारित्र एवं ज्ञान का परस्पर कोई विरोध नहीं है। अपरञ्च शील के बिना विषय सुख से ज्ञान का विनाश हो जाता है।

**णाणं णाऊण णरा केइ विसयाइभावसंसत्ता।**
**हिडंति चतुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा ।। (7)**

कुछ मनुष्य ज्ञान को जानते हुए भी विषय वासना से भावित होकर विषयों में विमोहित मूढ़ होकर चर्तुगति रूप संसार में परिभ्रमण करते हैं। स्थावर, जंगम विष में भी विषय रूपी विष अत्यन्त भयंकर है। विषयरूपी विष से सुगति, मोक्ष गति आदि विनाश हो जाती है। विषय रूपी विष अत्यन्त दारुण है । ?

**वार एकम्मि य जम्मे मरिगा विसवेयणाहदो जीवो।**
**विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे।। (22)**

विष पान से एक बार मरण करके अन्य गति में जीव उत्पन्न होता है परन्तु विषय रूपी विष सेवन से संसार रूपी वन में अनेक परिभ्रमण करना पड़ता है।

**णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसण विहूणं।**
**संजमहीणों य तवो जड़ चरइ णिरत्थयं सव्वं।। (5) शील पा. 41.**

चारित्र हीन, ज्ञान, दर्शन विहीन मुनि वेषादि धारण, इन्द्रिय मन एवं प्राणी संयम रहित तप जो आचरण करता है वह सर्व निर्रथक होता है।

इसलिए आचार्य श्री ने इस गाथा में अपना भाव प्रगट किया है कि मैं स्वशुद्धात्मस्वरूप को जान करके ही नहीं बैठ जाऊँ अपितु जानने के बाद उसको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहूँ । वह प्रयत्न है निर्ममत्व, समता या चारित्र। कुन्दकुन्द देव ने समता को ही चारित्र कहा है यथा (चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो मोहक्खोह -विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो) चारित्र ही निश्चय से धर्म है और यह चारित्र साम्यभाव रूप है। और यह चारित्र रूपी धर्म, मोह,

क्षोभ आदि वैभाविक भावों से रहित आत्मा का समता भाव है। यह समता भाव ही जीव का धर्म है, रत्नत्रय है, मोक्ष है, उत्तम क्षमादि दश धर्म है। केवल समता को ही प्राप्त करने के लिए श्रावक एवं मुनियों के व्रत नियम आदि हैं। जिन-जिन कारणों से समता प्रगट होती है वह यथार्थ से धर्म है, अन्य तो धर्म के नाम पर आडम्बर है, दिखावा है या धर्म विध्वंसी क्रियाएँ हैं। इसलिए इस गाथा में आचार्य श्री अपनी भावना प्रगट करते हैं कि मैं निर्ममत्व या साम्य भाव को प्राप्त करूँ, क्योंकि साम्य भाव से रहित समस्त कार्य दुःखकारक है, दुःखोत्पादक हैं और दुःख स्वरूप ही हैं। परमात्मप्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है -

**जो सम - भावहँ बाहिरउ तिं सहुं मं करि संगु।**
**चिंता - सायरि पडहि पर अण्णु वि डज्झइ अंगु।। (109)**

जो कोई समभाव अर्थात् निजभाव से बाह्य पदार्थ हैं, उनके साथ संग मत कर। क्योंकि उनके साथ संग करने से केवल चिंतारूपी समुद्र में पड़ेगा, और भी शरीर दाह को प्राप्त होगा, अर्थात् अंदर से जलता रहेगा।

जो कोई जीवित, मरण, लाभ अलाभादि में तुल्यभाव उसके सम्मुख जो निर्मल ज्ञान दर्शन स्वभाव परमात्म द्रव्य उसका सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप निजभाव उस रूप समभाव से जो जुदे पदार्थ हैं उनका संग छोड़ दे। क्योंकि उनके संग से चिंतारूपी समुद्र में गिर पड़ेगा। जो समुद्र राग द्वेषरूपी कल्लोलों से व्याकुल है, उनके संग से मन में चिंता उत्पन्न होगी, और शरीर में दाह होगा। यहाँ तात्पर्य यह है कि वीतराग निर्विकल्प परमसमधि की भावना से विपरीत जो रागादि अशुद्ध परिणाम है वे ही परद्रव्य कहे जाते हैं, और व्यवहारनय कर मिथ्यात्वी रागी-द्वेषी पुरुष पर कहे गये हैं। इन सबकी संगति सर्वदा दुःख देने वाली है, किसी प्रकार सुखदायी नहीं है, ऐसा निश्चय है। इसलिए भव्यात्मा मुमुक्षु को सतत समग्रता से सर्व ममत्व भाव को त्याग कर निर्ममत्व भाव प्राप्त करना चाहिए। इष्टोपदेश में पूज्यपाद आचार्य ने कहा भी है -

**बध्यते मुच्यते जीवः , सममो निर्ममः क्रमात्।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्।। (26)**

ममतावाला जीव बंधता है और ममता रहित जीव मुक्त होता है। इसलिए हर तरह से पूरी कोशिश के साथ निर्ममता का ही ध्यान रखें।



## सशरीरी भगवान् का स्वरूप

**(13) त्रयोदश सयोगकेवली गुणस्थान**

**सुद्धो खाइयभावो अवियप्पो णिगालो जिणिंदस्स।**
**अत्थि तया तं झाणं सुहुमकिरिया अपडिवाई ।। 668।। (भाव सं.)**
**परिफंदो अइसुहमो जीवपएसाण अत्थि तक्काले।**
**तेणाणु आइट्ठा आसवि य पुणो वि विहडंति।। 669।।**
**जं णत्थि रायदोसो तेण ण बंधो हु अत्थि केवलिणो।**
**जह सुक्कुड्डुलग्गा वालूया झडियंति तह कम्मं।।670।। (भाव संग्रह)**

अर्थ-मन, वचन, काय को त्रियोग कहते हैं। मूर्तिक मन वचन काय योग सहित जीव को, केवलज्ञानी होने के कारण ही, इस गुणस्थानवर्ती को सयोग केवली कहते हैं।

तेरहवें गुणस्थानवर्ती योगी पुरुष के विकल्प रहित, निश्चय (स्थिर) क्षायिक भाव होते हैं तथा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम का तीसरा शुक्ल ध्यान होता है।

इस तेरहवें गुणस्थानवर्ती योगी पुरुष की आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन (हलन चलन) अत्यन्त सूक्ष्म होता है। जिस कारण शुभकर्मों की वर्गणाएँ आत्मप्रदेशों की ओर आने पर भी तुरन्त चली जाती हैं। आत्मप्रदेशों में कार्माण वर्गणाएँ नहीं ठहरती हैं, क्योंकि केवलज्ञानी पुरुष के रागद्वेषभाव कर्मों का सर्वथा अभाव हो चुका होता है। जिस प्रकार से सूखी दीवाल पर बालू नहीं चिपकती उसी प्रकार स्निग्ध राग द्वेषभावों के बिना, कर्म जीवात्मा के प्रदेशों में नहीं ठहरते।

**अयोग केवली गुणस्थान में, निश्चयनय से ध्यान ध्येय नहीं होते - कारण**

**झाणं तह झायारो झेयवियप्पा य होंति मणसहिए।**
**तं णत्थि केवलिदुगे तह्मा झाणं ण संभवइ।।683।।**
**मणसहियाणं झाणं मणो वि कम्मइयकायजोयाओ।**
**तत्थ वियप्पो जायइ सुहासुहो कम्मउदयेण।। 684।।**

**अर्थ** - मन के, विकल्प विचारों से सहित, जीव को ही ध्यान, ध्याता, ध्येय रूप विकल्प होते हैं। अयोगकेवली के मन के विकल्प विचार नष्ट होने से

मन की चेष्टा प्रवृत्ति क्रिया नहीं रह जाने के कारण, परमार्थ से 13वें 14वें गुणस्थानों में केवलीपुरुष के ध्यान नहीं रह जाता। दर्शन ज्ञान शुद्धोपयोगी हो जाते हैं। मन के विकल्पों एवं संकल्प सहित जीव के ही ध्यान ध्येय होता है।

कार्मण काय योग के संयोग से ही, मन की प्रवृत्ति होती है। कर्मों के उदय से ही मन में शुभ अशुभ संकल्प विकल्प विचार इच्छायें उत्पन्न होती हैं। रागद्वेष भावकर्मों का क्षय हो जाने से क्षायिक भाव रूप, केवल दर्शन केवलज्ञान स्वभावी आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाने पर भाव विचार नहीं रह जाते। भावमन का मरण हो जाता है, तब ध्याता, ध्यान, ध्येय नहीं रह जाते।

## अशुद्ध शुद्ध दर्शन ज्ञान उपयोग से ही ध्यान होता है

**असुहे असुहं झाणं सुहझाणं होइ सुहपजोगेण।**
**सुद्धे सुद्धं कहियं सासवाणासवं दुविहं।। 685।।**
**पढ़मं बीयं तइयं सासवयं होइ इय जिणो भणइ।**
**विगयासवं चउत्थं झाणं कहियं समासेण।। 686।।**

अर्थ - जीव का लक्षण दर्शन ज्ञान उपयोग है। जीव दर्शन ज्ञान (उपयोग) गुणों से ही, शुद्ध अशुद्ध होता है। इस कारण दर्शन ज्ञान उपयोग शुद्ध एवं अशुद्ध उपयोग रूप हैं। शुद्ध उपयोग कर्मास्रव रहित होता है। अशुद्ध उपयोग ही कर्मास्रव सहित होता है। आत्मस्वभावी केवल दर्शन, केवल ज्ञान, शुद्धोपयोग है।

अशुद्धोपयोग 2 भेद रूप है। शुभ उपयोग एवं अशुभ उपयोग।

जहाँ शुभ उपयोग, शुभ भाव विकल्प है वहाँ शुभध्यान होता है। जहाँ अशुभ दर्शन, ज्ञान उपयोग रूप, अशुभ विकल्प है वहाँ अशुभ (आर्त्तरौद्र) ध्यान होते हैं। शुद्ध उपयोग, आस्रव रहित है। अशुद्ध, शुभ एवं अशुभ उपयोग कर्मास्रव विकल्प सहित है।

जिनदेव कथन है कि प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय शुक्ल ध्यान भेद सहित है परन्तु चतुर्थ व्युपरत क्रिया प्रतिपाति शुक्ल ध्यान आस्रव रहित है। यही संक्षिप्त रूप कथन है।



## अशरीरी भगवान् का स्वरूप

**(मुक्त सिद्ध अवस्था का स्वरूप लक्षण)**
**णट्ठट्ठपयडिबंधो चरमसरीरेण होइ किंयूणो।**
**उड्ढं गमणसहावो समएणिक्केण पावेइ।। 687।।**
**लोयग्गसिहरखित्तं जावं तणुपवणउपरिमं भायं।**
**गच्छइ ताम अथक्को धम्मत्थित्तेण आयासो।। 688।।**
**तत्तो परं ण गच्छइ अच्छइ कालं तु अंतपरिहीणं।**
**जम्हा अलोचखित्तं धमद्दत्वं ण तं अत्थि ।। 689।।**

**अर्थ** - चौदह गुणस्थानावर्ती जीव, आठों प्रकार की कर्म प्रकृतियों को नष्ट कर, प्राप्त अन्तिम औदारिक शरीर आकार से कुछ कम आकार रूप, अशरीरी आत्मा से, एक समय मात्र में, ऊर्ध्वगमन करके, लोक (आकाश) के ऊपरी स्थान पर तनुवातवलय के ऊपरी भाग पर (जहाँ तक कि गतिशीलतारूप धर्म द्रव्य है) सिद्धशिला को प्राप्त होकर सिद्धशिला पर अवस्थित हो जाते हैं ।

अलोकाकाश (स्पेश) में धर्मद्रव्य (गतिशीलता) नहीं होने के कारण, मुक्त सिद्ध जीव(धर्मद्रव्य से मौजूद) लोकाकाश के बाहर नहीं जाते और लोकाकाश के कथित ऊपरी शिखर पर आगे अन्तरहित अनन्तकाल तक के लिए स्थिर हो जाते हैं।

**जो जत्थ कम्ममुक्को जलथलआयासपव्वए णयरे।**
**सो रिजुगईपवण्णो माणुसरवेत्ताउ उप्पयई ।। 690।।**
**पणयालसयसहस्सा माणुसखेत्तं तु होइ परिमाणं।**
**सिद्धाणं आवासो तित्तिमित्तम्मि आयासे।। 69।।।**
**सव्वे उवरिं सरिसा विसमा हिट्ठम्मि णिगालपएसा।**
**अवगाहणा य जह्मा उक्कस्सजहण्णिया दिट्ठा।। 692।।**
**एगो वि अणंताणं सिद्धो सिद्धाण देइ अवगासं।**
**जम्हा सुहुमत्तगुणो अवगाहगुणो पुणो तेसिं।।693।।**

अर्थ- सिद्ध पर्याय को प्राप्त हुये जीव, मनुष्य भूमि क्षेत्र के ही जल, आकाश, भूमि पर्वत नगर में जन्म लेकर रहते हैं तपश्चर्या से कर्ममुक्त होकर सीधे

ऋजुगति से जाकर, लोकाकाश की शिखर पर, उसी सीध में विराजमान हो जाते हैं। जिस स्थान से कि वह मुक्त हुए थे।

लोकाकाश में मनुष्य भूमि क्षेत्र का आकार 45 लाख योजन है। इसीलिए 45 लाख योजन क्षेत्र में ही मुक्त सिद्ध जीवों का निवास स्थान है।

उस सिद्ध शिला के ऊपरी सतह पर पहुँचने वाले मुक्त सिद्ध जीव समान होते हैं। नीचे का भाग ऊँचा-नीचा असमान होता है। क्योंकि मुक्त हुये सिद्ध जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना सवा पाँच सौ धनुष है और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ है।

एक मुक्त सिद्ध जीव की अमूर्तिक आत्मा में, सूक्ष्मत्व एवं अवगाहनत्व गुणों के कारण, अनन्तानन्त सिद्ध जीव समा जाते हैं। जिस प्रकार से एक ही कमरे में रखे असंख्यात दीपकों का प्रकाश समा जाता है।

## सिद्धों के 8 गुण

**सम्मत्त णाणं दंसण वीरिय सुहुमं तहेव अवगहणं।**
**अगुरुलहुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।684।।**
**सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शन वीर्यं सूक्ष्मं तथैव अवगाहनं।**
**अगुरुलघुअव्याबाधं अष्टगुणा भवंति सिद्धाना।। 694।।**

अर्थ- ज्ञानावरणादि 8 कर्मप्रकृतियों को नाश कर देने के कारण सिद्धों में 8 गुण, सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन, वीर्य,सूक्ष्मत्व, अवगाहन अगुरुलघुत्व, अव्याबाध होते हैं।

## सिद्धों के सुख

**जाणइ पिच्छइ सयलं लोयालोयं च एक्कहेलाए।**
**सुक्खं सहावजाय अणोवमं अंतपरिहीणं।।695।।**
**रवि मेरु चंद सायर गयणाईयं तु णत्थि जह लोए।**
**उवमणं सिद्धाणं णत्थि तहा सुक्खसंधाए।। 696।।**
**चलणं वलणं चिंता करणीयं किं पि णत्थि सिद्धाणं।**
**जह्मा अदिंदियत्तं कम्माभावे समुप्पण्णं।। 697।।**



अर्थ - वह सिद्ध परमात्मा एक ही समय में समस्त लोक एवं अलोक को जानते देखते हैं। इस कारण केवल दर्शन केवल ज्ञानस्वभावी (स्वभावगत) अनुपमेय अन्तरहित अनन्तसुख का अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार से लोक (संसार में) स्थित सूर्य, चन्द्रमा, सुमेरु पर्वत, समुद्र आकाश आदि की तुलना नहीं की जा सकती । उसी प्रकार सिद्धों को प्राप्त आत्म स्वभावी अनुपमेय अनन्तसुख की तुलना नहीं की जा सकती।

सिद्धों को कर्ममुक्त हो जाने के कारण, अतीन्द्रियपना के कारण, कहीं आने जाने रूप क्रिया करने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती, क्योंकि 5 इन्द्रियों के होने पर, देही जीवों को ही जड़ इन्द्रिय विषयों की चिन्ता होती है।

### ध्यान सूत्र के आधार पर

## मेरा स्वशुद्धात्मा ध्यान के सूत्र

**- आचार्य कनकनदी**

**(चालः आत्मशक्ति...क्या मिलिए...)**

**शुद्धात्माध्यान का मेरा मैं कर रहा हूँ वर्णन,**
**जैसा कि आचार्य माघनन्दी ने ध्यान सूत्र में किया वर्णन।**
**ध्यान परम अन्तरंग तप जिस हेतु ही अन्य तप,**
**ध्यान से तो कर्म ईन्धन भस्मसात् होते हैं क्षणात्।। (1)**

**परम शुद्ध निश्चयनय से जैसा है मेरा स्वरूप,**
**उसके अनुसार मैं हूँ शुद्ध चैतन्य स्वरूप।**
**भले व्यवहारनय से अभी मैं हूँ अशुद्ध जीव**
**तथापि मैं ध्यान से कर्मनाश से बनूँगा शुद्ध जीव।। (2)**

**'चिन्मात्रमूर्ति स्वरूपोऽहं सूत्र मुझे बताता,**
**''मैं हूँ चैतन्यमात्र स्वरूपी शुद्धात्मा कहता।**
**'ज्ञानज्योति स्वरूपोऽहं' सूत्र मुझे कहता,**
**''मैं हूँ ज्ञानज्योति स्वरूपी'' बुद्धात्मा जताता।। (3)**

**'अनन्तज्ञान स्वरूपोऽहं मंत्र मुझे कहता,**

''मैं हूँ अनन्तज्ञान स्वरूपी'' ऐसा ज्ञान कराता।
''अनन्तदर्शन स्वरूपोऽहं महामंत्र बोलता,
''मैं हूँ आनन्तदर्शनमय'' ऐसा बोध कराता।। (4)

''अनन्तसुख स्वरूपोंऽहं'' महान् आह्वान करता,
''मैं हूँ अनन्तशक्ति स्वरूपी'' ऐसा उद्बोधन देता।। (5)

''शुद्धात्मा स्वरूपोऽहं'' मुझे पाठ पढ़ाता,
''मैं हूँ शुद्धात्मा स्वरूपी'' निश्चय से बताता।
''परमात्मा स्वरूपोऽहं'' मुझे मार्ग बताता,
''मैं हूँ परमात्मा स्वरूपी'' मोक्षपथ कहता।।(6)

''अव्याबाध स्वरूपोऽहं'' मुझे साहस देता,
''मैं हूँ बाधा से रहित'' ऐसा धैर्य भी देता।।
''निरञ्जन स्वरूपोऽहं'' से स्वाध्याय करता,
''मैं हूँ कर्म अंजन से रहित'' शुद्ध रूप बताता।। (7)

''अतिशय स्वरूपोऽहं'' मेरा अतिशय बताता,
''मैं हूँ विशेष गुणवाला'' आत्मद्रव्य कहता।
''सिद्ध स्वरूपोऽहं'' मेरा शुद्ध रूप कहता,
''मैं हूँ सिद्ध स्वरूपी'' निश्चयनय कहता।। (8)

''अनन्तगुण स्वरूपोऽहं'' मेरा व्यक्तित्व बताता,
''मैं हूँ अनन्तगुणधारी'' ऐसा मंत्र बताता।
''स्वयंभूः अहं'' सूत्र से मुझे शिक्षा मिलती,
''मैं हूँ स्वयं से ही उत्पन्न'' ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा होती।। (9)

''शाश्वतोऽहं'' से मुझे प्रेरणा मिलती,
'' मैं हूँ अनादि अनिधन'' की शिक्षा मिलती।
''जगत् पूज्योऽहं' से मेरी महानता का होता ज्ञान,
''मैं हूँ परम पावन पूजनीय गुण सम्पन्न''।। (10)



स्व स्वरूप चिन्तन व ज्ञान व ध्यान से,
मन एकाग्र होता संकल्प-विकल्प-रिक्त से।
जिससे संवर-निर्जरा से मोक्ष है मिलता,
आत्म उपलब्धि हेतु 'कनक' ध्यान करता।। (11)

नन्दौड़ 19-08-2018 रात्रि 10:52

# ध्यान-सूत्राणि

- आचार्य श्री माघननन्दीकृत

## प्रथम अधिकार

1. रागद्वेष मोह क्रोध मान माया लाभ पञ्चेन्द्रिय विषय व्यापार मनो वचन काय कर्म भाव कर्म द्रव्य कर्म नोकर्म ख्याति पूजा लाभ दृष्ट श्रुतानुभूत भोगाकांक्षा रूप निदान माया मिथ्यात्व शल्यत्रय गारव त्रय दण्ड त्रयादि-विभाग-परिणामशून्योऽहं।
मेरा आत्मा राग-द्वेष मोह से रहित है, क्रोध मान-माया लोभ कषाय रहित है, पाँचों इन्द्रियों के विषयभूत व्यापारों (स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्दश्रवण) से रहित है, मन-वचन काय की समस्त क्रियाओं से रहित है, राग-द्वेष आदि भावकर्म, ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्म तथा शरीरादि नोकर्म से रहित है। अपनी प्रसिद्धि, पूजा,लाभ, अपने लिए इष्टभोग,सुने हुए या अनुभव किये हुए भोगों की आकांक्षा से रहित हैअर्थात् निदान शल्य से रहित है, माया(मायाचारी) तथा मिथ्यादर्शन शल्य से रहित है, इस प्रकार (मेरा आत्मा) तीनों शल्यों से रहित है। रस-गारव-ऋद्धि गारव और सात गारव इन तीनों गारव अर्थात् तीनों अभिमानों से रहित है। इस प्रकार मैं समस्त विभाव परिणामों से रहित विभाव परिणति से शून्य हूँ।

2. निज निरञ्जन स्व शुद्धात्म सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुष्ठान रूपाभेद रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि संजात वीतराग सहजानन्द सुखानुभूति रूप मात्र लक्षणेन स्व सम्वेदन ज्ञान सम्यक् प्राप्तया भरित विज्ञानेन गम्य प्राप्तया भरितावस्थोहम्।

मेरा आत्मा कर्म वा विकारों से रहित स्व शुद्ध स्वरूप है। उस स्वशुद्धात्मा का सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान व उसी में आचरण रूप क्रिया अभेद रत्नत्रय है। अभेद रत्नत्रय से निर्विकल्प समाधि प्राप्त होती है। उस निर्विकल्प समाधि या ध्यान से जो वीतराग व स्वभाविक सहजानन्द सुखानुभूति की उत्पत्ति होती है, वही वीतराग सहजानन्द सुख मेरा व मेरा आत्मा का लक्षण है। उसी वीतराग सहजानन्द से मेरा आत्मा में स्वसम्वेदन अर्थात् अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव रूप ज्ञान की प्राप्ति समीचीन रूप से हो जाती है। उसी आत्मा के अनुभव रूपज्ञान की प्रप्ति से स्वात्मा में लीन होने रूप सम्यक् चारित्र की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार अभेद रत्नत्रय की प्राप्ति मेरे आत्मा में हो जाती है। उसी अभेद रत्नत्रय से मेरा यह आत्मा लबालब/पूर्णरूप से भरपूर हो रहा है।

3. सहजशुद्ध परिणामिक भाव स्वभावोऽहम्।
मैं सहज परिणामिक भाव स्वभाव वाला हूँ।

4. सहज शुद्ध ज्ञानानन्दैक स्वभावोऽहम्।
मैं स्वाभाविक शुद्धज्ञान अर्थात् केवलज्ञान से उत्पन्न होने वाले परमानन्द स्वभाव वाला हूँ।

5. भेदाचल निर्भरानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं समस्त आनन्दों से भिन्न अचलपूर्ण आनन्द स्वरूप हूँ

6. चित्कला स्वरूपोऽहम्।
मैं चैतन्य कला स्वरूप हूँ/ मेरा आत्मा चैतन्य कला से युक्त है।

7. चिन्मुद्रांकित निर्विभाग स्वरूपोऽहम्।
शुद्ध चैतन्य स्वरूप मुद्रा से शोभायमान और जिसका किसी प्रकार विभाग न हो सके, ऐसे शुद्ध आत्मामय मैं हूँ।

8. चिन्मात्र मूर्ति स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति स्वरूप हूँ।



9. चैतन्य रत्नाकर स्वरूपोऽम्।
मैं चैतन्यगुण रत्नों का आकर/ समुद्र स्वरूप हूँ। अर्थात् मेरा आत्मा रत्नत्रय-अनन्त चतुष्टय आदि गुणों का खजाना/रत्नाकर है। अथवा मेरे आत्मा में अनन्त गुण रूपी रत्न भरे हैं।

10. चैतन्यामर द्रुम स्वरूपोऽहम्।
मै शुद्ध चैतन्यमय अमर कल्पवृक्ष हूँ।

11. चैतन्यामृताहार स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्ध चैतन्यमय अमृताहार करने वाला हूँ अथवा अमृताहार स्वरूप हूँ।

12. चैतन्य रस रसायन स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्ध चैतन्य रूप रस से बने हुए रसायन स्वरूप हूँ।

13. चैतन्य चिह्न स्वरूपोऽह्म्।
मैं शुद्धात्मा चैतन्य चिह्न स्वरूप हूँ।

14. चैतन्यकल्याणवृक्ष स्वरूपोऽहम्।
मैं चैतन्य कल्याण वृक्ष स्वरूप हूँ।

15. चैतन्य पुञ्ज स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्धात्मा चैतन्य पुञ्ज स्वरूप हूँ।

16. ज्ञानज्योति स्वरूपोऽहम्।
समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली ज्योति केवलज्ञान ज्योति वह मेरा स्वरूप है। निश्चय से में तद्रूप हूँ।

17. ज्ञानामृत प्रवाह स्वरूपोऽहम्।
मेरे आत्मा में निश्चय से सतत ज्ञानामृत का प्रवाह हो रहा है, मैं उस ज्ञानामृत प्रवाह स्वरूप हूँ।

18. ज्ञानार्णव स्वरूपोऽहम्।
मेरा आत्मा ज्ञान समुद्र स्वरूप है। अथवा मैं अखण्ड ज्ञान समुद्र स्वरूप हूँ।

19. निरुपमलेप स्वरूपोऽहम्।
मेरा आत्मा उपमातीत गुणों के लेप से लिप्त है। मैं तत् स्वरूप हूँ।

20. निरवद्यस्वरूपोऽहम्।
मेरा आत्मा पाप रहित निष्पाप अथवा सावद्य रहित है।
मैं निरवद्य स्वरूप हूँ।

21. शुद्ध चिन्मात्र स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप हूँ।

22. शुद्धाखण्डैक मूर्त स्वरूपोऽहम्।
मै शुद्ध-अखण्ड-एक-मूर्ति स्वरूप हूँ।

23. अनन्तज्ञान स्वरूपोऽहम्।
मैं अनन्तज्ञान स्वरूप हूँ।
24. अनन्तदर्शन स्वरूपोऽहम्।
मैं अनन्त दर्शन स्वरूप हूँ।
25. अनन्तसुखस्वरूपोऽहम्।
मैं अनन्त सुख स्वरूप हूँ।
26. अनन्त शक्ति स्वरूपोऽहम्।
मै अनन्त शक्ति स्वरूप हूँ।
27. सहजानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं सहज/स्वाभाविक आत्मा से उत्पन्न आनन्द स्वरूप हूँ।
28. परमानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्धात्मा परम आनन्द स्वरूप हूँ।
29. परमज्ञानानन्द स्वरूपोऽहम्।
मेरा शुद्धात्मा परमज्ञानानन्द स्वरूप है अथवा मैं परम-ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ।
30. सदानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं सदा आनन्द स्वरूप हूँ।
31. चिदानन्द स्वरूपोऽहम्।



मैं चिदानन्द स्वरूप हूँ।
32. निजानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं निजानन्द अर्थात् स्वात्मानन्द/अपने आत्मा से उत्पन्न स्व-आनन्द स्वरूप हूँ।
33. निज निरञ्जन स्वरूपोऽहम्।
मैं निजस्वरूप में रहने वाला समस्त विकारी भावों से रहित निरञ्जन स्वरूप हूँ।
34. सहजसुखानन्द स्वरूपोऽहम्।
मेरा यह आत्मा सिद्धों के समान केवल आत्मा के स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाले परमसुख अथवा परम आनन्दमय है।
35. नित्यानन्द स्वरूपोऽहम्।
मैं सतत/अविरतरूपेण आनन्द स्वरूप हूँ।
36. शुद्धात्म स्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्धआत्म स्वरूप हूँ।
37. परमज्योति स्वरूपोऽम्।
मैं परमज्योति स्वरूप हूँ। अथवा मेरा यह आत्मा परम ज्योति स्वरूप है।
38. स्वात्मोपलब्धि स्वरूपोऽहम्।
मैं अपने आत्मा की उपलब्धि स्वरूप हूँ। अर्थात् जिस प्रकार सिद्ध भगवान् को स्व-आत्मा की उपलब्धि होने पर जैसा उनका स्वरूप है, उसी स्वरूप वाला मैं हूँ।
39. शुद्धात्मानुभूति स्वरूपोऽहम्।
मैं अपने शुद्ध आत्मा से उत्पन्न अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव करने वाला शुद्ध आत्मा की अनुभूति स्वरूप हूँ।
40. शुद्धात्म संवित्ति स्वरूपोऽहम्।
भगवान् सिद्ध परमेष्ठी जिस प्रकार अपने शुद्ध आत्मा से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञानमय हैं। उसी प्रकार मैं भी शुद्ध केवल ज्ञानमय हूँ।
41 भूतार्थस्वरूपोऽहम्।
जैसे सिद्ध भगवान् का आत्मा का स्वरूप आत्मा का यथार्थ स्वरूप है, वैसे ही मेरा आत्मा भी पर संयोग से रहित भूतार्थ स्वरूप है।
42. परमात्मस्वरूपोऽहम।

जिस प्रकार अरिहन्त घातिया कर्मों को क्षय कर अर्हन्त परमात्मा बन गये हैं तथा सिद्ध भगवान् अष्टविध कर्मों का क्षय करके परम परमात्मपद को प्राप्त हो गये हैं। मेरा आत्म भी परमात्म स्वरूप है।

43. निश्चय पञ्चाचार स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा निश्चय दर्शनाचार, निश्चय ज्ञानाचार, निश्चय चारित्राचार, निश्चय तपाचार और निश्चय वीर्याचार स्वरूप है।

44. समयसार स्वरूपोऽहम्।

मैं समयसार स्वरूप हूँ।

45. अध्यात्मसार स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा अध्यात्मसार स्वरूप है।

46. परम मंगल स्वरूपोऽहम्।

मैं परम मंगल स्वरूप हूँ।

47. परमोत्तम स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा परम-उत्तम स्वरूप है।

48. परमशरणोऽहम्।

मेरा आत्मा परम शरण रूप है।

49. परमकेवल ज्ञानोत्पत्तिकारण स्वरूपोऽहम्।

परम केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण स्वरूप मैं हूँ।

50. सकलकर्मक्षयकारण स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा सम्पूर्ण कर्मों के क्षय को कारण स्वरूप है अथवा मैं सम्पूर्ण कर्मों के क्षय का कारण स्वरूप हूँ।

51. परमाद्वैतस्वरूपोऽहम्।

मैं निश्चयनय से परम-अद्वैत स्वरूप हूँ।

52. परमस्वाध्याय स्वरूपोऽहम्।

मैं परम स्वाध्याय स्वरूप हूँ।

53. परमसमाधि स्वरूपोऽहम्।

मैं परम समाधि स्वरूप हूँ।

54. परम स्वास्थ्यस्वरूपोऽहम्।



मैं परम स्वास्थ्य स्वरूप हूँ।

55. परमभेदज्ञान स्वरूपोऽहम्।

मैं परमभेद-ज्ञान स्वरूप हूँ।

56. परम स्व-सम्वेदन स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा परम स्व-सम्वेदन स्वरूप है।

57. परम समरसिक भाव स्वरूपोऽहम्।

मैं परम समरसी भाव स्वरूप हूँ।

58. क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूपोऽहम्।

मेरा यह आत्मा क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूप है।

59. केवलज्ञान स्वरूपोऽहम्।

मेरा आत्मा केवलज्ञान स्वरूप है।

60. केवलदर्शन स्वरूपोऽहम्।

मैं केवलदर्शन स्वरूप हूँ।

61. अनन्तवीर्य स्वरूपोऽहम्।

मैं अनन्तवीर्य/(शक्ति) स्वरूप हूँ।

62. परम सूक्ष्म स्वरूपोऽहम्

मैं परम सूक्ष्मत्वगुण स्वरूप हूँ।

63. अवगाहन स्वरूपोऽहम्।

मैं अवगाहनगुण स्वरूप हूँ।

64. अव्याबाध स्वरूपोऽहम्।

मैं अव्याबाध गुण स्वरूप हूँ।

65. अष्टविध कर्म रहितोऽहम्।

मैं निश्चय नय से अष्ट प्रकार कर्मों से रहित हूँ।

66. निरञ्जन स्वरूपोऽहम्।

मैं निरञ्जन स्वरूप हूँ।

67. अष्टगुण सहितोऽहम्।

मैं आठ गुणो से सहित हूँ। अर्थात् भगवान् सिद्ध परमात्मा के समान मैं भी आठ गुणों से सहित हूँ।

68. कृतकृत्योऽहम्।
मैं कृतकृत्य हूँ।
69. लोकाग्रवासीस्वरूपोऽहम्।
मैं लोक शिखर का वासी हूँ।
70. अनुपमोऽहम्।
मैं अनुपम हूँ।
71. अचिन्त्योऽहम्।
मैं अचिन्त्य हूँ।
72. अतर्क्योऽहम्।
मेरे शुद्धात्मा के अनन्त गुणों में कोई ऊहापोह नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा आत्मा अतर्क्यस्वरूप है, अर्थात् किसी के तर्क का विषय नहीं है।
73. अप्रमेयस्वरूपोऽहम्।
मैं अप्रमेय स्वरूप हूँ।
74. अतिशयस्वरूपोऽहम्।
मैं अतिशय स्वरूप हूँ।
75. अक्षय स्वरूपोऽहम्।
मैं अक्षय स्वरूप हूँ।
76. शाश्वतोऽहम्।
मैं शाश्वत हूँ।
77. शुद्धस्वरूपोऽहम्।
मैं शुद्ध स्वरूप हूँ।
78. सिद्ध स्वरूपोऽहम्।
मैं सिद्ध स्वरूप हूँ।
79. सोऽहम्।
मैं वही हूँ, कौन ? यः परमात्मा स एवाहं'' जो परमात्मा है वही मैं हूँ। जिस प्रकार सिद्ध परमात्मा का परम शुद्ध आत्मा शुद्ध निरञ्जन है, वैसा ही मैं हूँ।
80. घातिचतुष्टयरहितोऽहम्।



मैं चार घातिया कर्मों से रहित हूँ।
81. अष्टादशदोषरहितोऽहम्।
मैं अठारहदोषों से रहित हूँ।
82. पञ्चकल्याणकांकितोऽहम्।
शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा मैं पञ्चकल्याणक वैभव से सहित हूँ। जिस प्रकार श्री तीर्थंकर परमदेव गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणकों के स्वामी होते हैं वैसे ही मेरा चिदानन्दात्मा भी स्व-पर कल्याणकारक कल्याणक से विभूषित है
83. अष्टमहाप्रातिहार्य विशिष्टोऽहम्।
शुद्ध निश्चयनय से मेरा शुद्धात्मा आठ प्रतिहायों से सहित है।
84. चतुस्त्रिंशदतिशय समेतोऽहम्।
भगवान् श्री अरहन्त के समान मेरा यह शुद्ध आत्मा भी निश्चय से चौंतीस अतिशयों से सुशोभित है।
85. शतेन्द्रवृन्दवन्द्यपादारविन्दवन्दोऽहम्।
मुझ शुद्धात्मा के चरणकमल सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं, अर्थात् जिस प्रकार भगवान् अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी के पावन चरणकमल सौ इन्द्रों द्वारा वन्दनीय होते हैं वैसे ही मेरे भी चरण कमल सौ इन्द्रों से वन्दनीय हैं क्योंकि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से मैं भी अरहन्त-सिद्ध परमेष्ठी के समान हूँ। ''सोऽहम्''।
86. विशिष्टानन्तचतुष्टय समवशरणादिविभूतिरूपान्तरंग बहिरंग श्री समेतोऽहम्।
जिस प्रकार भगवान् अरहन्त देव अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरंग विभूति तथा समवशरण रूप बहिरंग विभूति से सुशोभित हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरंग विभूति तथा समवशरणरूप बहिरंग-विभूति से सुशोभित है।
87. परमकारुण्यरसोपेतसर्वभाषात्मक दिव्यध्वनिस्वरूपोऽहम्।
परमकरुणारूपी रस से भरपूर और समस्त भाषा रूप दिव्य ध्वनि स्वरूप मैं हूँ। अर्थात् जिस प्रकार अरहन्त भगवान् परम करुणारूपी रस से भरपूर और सर्वभाषात्मक दिव्य ध्वनि स्वरूप हैं, उसी प्रकार मेरा भी यह शुद्ध

आत्मा परम करुणारूपी रस से भरपूर और समस्त भाषा रूप दिव्य ध्वनि स्वरूप हूँ।

88. कोट्यादित्यप्रभा संकाश परमौदारिक दिव्य शरीरोऽहम्।

जिस प्रकार अरहन्त देव का शरीर करोड़ों सूर्यों की प्रभा समान दैदीप्यमान परमौदारिक परमदिव्य है, उसी प्रकार मेरा शुद्धात्मा भी करोड़ों सूर्य की प्रभा समान अत्यन्त दैदीप्यमान परमौदारिक दिव्य शरीर युक्त है।

89. परमपवित्रोऽहम्।

मैं परम पवित्र हूँ।

90. परममंगलोऽहम्।

मैं परम मंगल स्वरूप हूँ।

91. त्रिजगद्गुरुस्वरूपोऽहम्।

मैं तीनों जगत् के गुरुस्वरूप हूँ।

92. स्वयम्भूरहम्।

मैं स्वयम्भू हूँ। जिस प्रकार अरहन्त भगवान् अपने कर्मों को नष्ट कर आप स्वयम्भू हुए हैं, उसी प्रकार कर्मों से रहित मेरा शुद्धात्मा भी स्वयम्भू है।

93. शाश्वतोऽहम्।

मैं शाश्वत अर्थात् कभी नाश नहीं होने वाला हूँ।

94. जगत्त्रकालत्रयवर्तिसकल पदार्थ युग पदावलोकन समर्थ सकल विमल केवलज्ञान स्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार अरहन्तदेव तीनों लोकों के भूत-वर्तमान-भावी समस्त पदार्थों को एक साथ जानने देखने की सामर्थ्य रखने वाले पूर्ण निर्मल केवलज्ञान स्वरूप है। उसी प्रकार यह मेरा परम शुद्धात्मा भी त्रिजगत् के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को एक साथ जानने की सामर्थ्य रखने वाले केवलज्ञान स्वरूप है।

95. विशदाखण्डैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयसकलविमल केवल दर्शनस्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार अरहन्त भगवान् अत्यन्त निर्मल तथा अखण्ड रूप समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष प्रतिभासित करने वाला पूर्ण निर्मल केवलदर्शन स्वरूप हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्म भी पूर्ण निर्मल केवलदर्शनमय है।



96 अतिशयातिशयमूर्तानन्तसुख स्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार अरहन्त भगवान् अनन्त अतिशयों की मूर्तिरूप अनन्त सुख स्वरूप हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा अनन्त अतिशयों की मूर्ति स्वरूप अनन्त सुख स्वरूप है।

97. अवार्यवीर्यानन्तबल स्वरूपोऽहम्।

जिस प्रकार भगवान् अरहन्तदेव जो किसी से भी निवारण न हो सके, ऐसे अनन्त बल के स्वामी हैं, उसी भाँति मेरा यह शुद्ध आत्मा भी शुद्धनयापेक्षा अनन्त बल का धारक है। क्योंकि मैं अरहन्त स्वरूप हूँ।

98. अतीन्द्रियातिशयमूर्तिकस्वरूपोऽहम्।

भगवान् अरहन्त देव जिस भाँति अतीन्द्रिय, अनेक अतिशयों से सुशोभित होते हुए अर्मूत स्वरूप हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी अतीन्द्रिय व अनेक अतिशयों से सुशोभित होता हुआ अमूर्त स्वरूप है।

99. अचिन्त्यानन्तगुण स्वरूपोऽहम्।

जैसे अरहन्त भगवान् अचिन्त्य(जो चिन्तवन में भी नहीं आ सके ऐसे) अनन्त गुण स्वरूप है, उसी भाँति मेरा शुद्धात्मा भी अचिन्त्य अनन्त गुणस्वरूप है।

100. निर्दोष परमात्मस्वरूपोऽहम्।

मैं निर्दोष परमात्म स्वरूप हूँ।

# द्वितीय अधिकार

## निश्चय सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान का स्वरूप कथन

**1. ज्ञानावरणादिमूलोत्तररूप सकल कर्म निर्मुक्तोऽहम्।**

सिद्ध भगवान् के समान मेरा यह शुद्धात्मा ज्ञानावरणादि आठ मूल प्रकृति और एक सौ अड़तालीस उत्तर प्रकृतिरूप समस्त कर्मों से सर्वथा रहित है।

**2. सकलविमलकेवलज्ञानादिगुणसमेतोऽहम्।**

सिद्ध भगवान् के समान मेरा यह शुद्धात्मा अत्यन्त निर्मल ऐसे केवलज्ञानादि समस्त गुणों से सहित है।

**3. निष्क्रियटंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वरूपोऽहम्।**

जिस प्रकार सिद्ध परमेष्ठी समस्त क्रियाओं से रहित/टंकोत्कीर्ण अर्थात् टाँकी से उकेरे हुए पुरुषाकार के समान समस्त पदार्थों को जानने वाले ज्ञायक स्वरूप हैं उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी समस्त क्रियाओं से रहित टंकोत्कीर्ण के समान समस्त पदार्थों को जानने वाला ज्ञायकस्वरूप है।

**4. किञ्चिन्न्यूनोऽत्तमचरम शरीर प्रमाणोऽहम्।**

मैं शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से चरम-उत्तम शरीर के प्रमाण से कुछ कम आकार वाला हूँ।

**5. अमूर्तोऽहम्।**

मैं शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से अमूर्त हूँ।

**6. अखण्डशुद्धचिन्मूर्तिरहम्।**

मैं शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अखण्ड-शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ।

**7. निर्व्यग्र सहजानन्दसुखमयोऽहम्।**

मैं आकुलतारहित सहजानन्द सुखमय हूँ।

**8. शुद्धजीवघनाकारोऽहम्।**

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से मेरा शुद्धात्मा शुद्ध जीवघनाकार रूप है। जैसे सिद्ध भगवान् नानाकार रूप हैं वैसे ही उनके समान ही मेरा यह शुद्धात्मा भी घनाकार रूप है।

**9. नित्योऽहम्।**

मैं नित्य हूँ अर्थात् सिद्ध भगवान् का आत्मा जैसे नित्य व अविनाशी है, वैसे ही मेरा शुद्धात्मा भी नित्य, अविनाशी है।

**10. निष्कलंकोऽहम्।**

मैं कलंक से रहित निष्कलंक हूँ।

**11. ऊर्ध्वगतिस्वभावोऽहम्।**

जिस प्रकार सिद्ध परमेष्ठी स्वाभाविक ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से कर्मक्षय होते ही ऊर्ध्वगमन करते हैं, उसी प्रकार स्वाभाविक रूपेण ऊर्ध्वगमन करना मुझ आत्मा का स्वभाव है।



**12. जगत्त्रय पूज्योऽहम्।**

सिद्ध परमेष्ठी की भाँति मेरा शुद्धात्मा तीन जगत से पूज्य है।

**13. लोकाग्रनिवासोऽहम्।**

सिद्धभगवान् की भाँति मेरा शुद्धात्मा भी लोकाग्र निवासी है।

**14. त्रिजगत्वन्दितोऽहम्।**

मैं तीन जगत् के द्वारा वन्दनीय हूँ।

**15. अनन्तज्ञानस्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्ध भगवान् के समान अनन्त ज्ञान को धारण करने वाला केवलज्ञानमय हूँ।

**16. अनन्त दर्शन स्वरूपोहम्।**

मैं सिद्ध भगवान् के समान अनन्त दर्शन स्वरूप हूँ।

**17. अनन्तवीर्यस्वरूपोऽहम्।**

मैं अनन्त वीर्य स्वरूप हूँ।

**18.अनन्तगुणस्वरूपोऽहम्।**

मेरा आत्मा अरहन्त व सिद्ध परमेष्ठी के समान अनन्त सुख स्वरूप है।

**19. अनन्तगुणस्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्ध भगवान् के समान अनन्त गुण स्वरूप हूँ।

**20. अनन्तशक्तिस्वरूपोऽहम्।**

मैं अनन्त शक्तिवान् हूँ।

**21. अनन्तानन्तस्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्धसम अनन्तानन्त गुण स्वरूप हूँ।

**22. निर्वेदस्वरूपोऽहम्।**

मैं 'वेदरहित निर्वेद स्वरूप हूँ।

**23. निर्मोह स्वरूपोऽहम्।**

मेरा शुद्धात्मा मोह रहित निर्मोह स्वरूप है।

**24. निरामयस्वरूपोऽहम्।**

मैं निरामय स्वरूप हूँ।

**25. निरायुष्क स्वरूपोऽहम्।**

मैं आयु कर्म से रहित हूँ।

**26. निरायुध स्वरूपोऽहम्।**

मैं आयुध / शस्त्र से रहित निरायुध स्वरूप हूँ।

**27. निर्नामस्वरूपोऽहम्।**

मैं शुद्धात्मा नामकर्म से सर्वथा रहित निर्नाम हूँ।

**28. निर्गोत्र स्वरूपोऽहम्।**

मैं ऊँच-नीच गोत्र कर्म से रहित निर्गोत्र स्वरूप हूँ।

**29. निर्विघ्न स्वरूपोऽहम्।**

मैं निर्विघ्न स्वरूप हूँ।

**30. निर्गति स्वरूपोऽहम्।**

मैं गति से रहित निर्गति स्वरूप हूँ।

**31. निरिन्द्रिय स्वरूपोऽहम्।**

मैं इन्द्रियों से रहित निरिन्द्रिय स्वरूप हूँ।

**32. निष्कायस्वरूपोऽहम्।**

मैं शरीर रहित निष्काय स्वरूप हूँ।

**33. निर्योग स्वरूपोऽहम्।**

योग रहित सिद्धों के समान मैं भी योग रहित अर्थात् निर्योग स्वरूप हूँ।

**34. निजशुद्धात्मस्मरण निश्चय सिद्धोऽहम्।**

जिस प्रकार सिद्ध भगवान् अपने शुद्धात्मा के स्मरण के विषयभूत निश्चय सिद्ध स्वरूप हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी अपने शुद्ध आत्मा के स्मरणभूत निश्चय सिद्ध है।

**35. परमज्योतिस्वरूपोऽहम्।**

मैं परमज्योति स्वरूप हूँ।

**36. निजनिरञ्जन स्वरूपोऽहम्।**

अञ्जन से रहित मैं सिद्ध भगवान् के समान निरञ्जन स्वरूप हूँ।

**37. चिन्मयस्वरूपोऽहम्।**

मैं चिन्मय (चेतनमय) स्वरूप हूँ।



**38. ज्ञानानन्द स्वरूपोऽहम्।**

मेरा शुद्धात्मा केवलज्ञान व अनन्त सुखमय स्वरूप है।

# तृतीय अधिकार

## आचार्य-उपाध्याय-साधु पद की प्राप्ति के लिए शुद्धात्मा के ध्यान का वर्णन

**1. व्यवहार निश्चयनय पञ्चाचार परम दया रस परिणति पञ्च प्रकार संसार सागरोत्तरण कारण भूतपूत पोत पात्र रूप निज निरञ्जन चित्स्वभावना प्रिय चतुर्वर्णचक्रवर्त्याचार्य परमेष्ठि स्वरूपोऽहम्।**

आचार्य परमेष्ठि व्यवहार व निश्चय दोनों नयों के ज्ञाता होते हैं वे दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार व तपाचार इन पञ्चाचारों का स्वयं पालन करते हैं व अन्य मुनिवृन्द से पालन कराते हैं। उनके परिणाम परमोत्कृष्ट दयारूपी रस से भी भीगे रहते हैं। द्रव्य क्षेत्र-काल-भव तथा भाव ये पाँच प्रकार का संसार है और इस पञ्च परावर्तन संसार में संसारी प्राणी भ्रमण करता है, अतः यह संसार एक महासागर के समान है। अनादिकाल से इस संसार रूपी महासागर में गोते लगाते हुए जीवों को पार लगाने के लिए आचार्य परमेष्ठि जहाज के समान हैं। उन आचार्य परमेष्ठि को सर्व कर्मों से रहित अपना शुद्ध चैतन्य स्वभाव ही प्रिय हैं। वे आचार्य चारों वर्ण(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के जीवों को यथेष्ट मोक्षमार्ग में चलाने के लिए चक्रवर्ती महान् सम्राट हैं। इस प्रकार जो आचार्य परमेष्ठि का स्वरूप सूत्र कहा गया है, निश्चय नय से उन्हीं समस्त गुणों से सुशोभित मेरा यह शुद्ध-आत्मा है। इसलिए मैं भी आचार्य परमेष्ठि स्वरूप हूँ।

**2. निजनित्यानन्दैकतत्त्वभाव स्वरूपोऽहम।**

वे आचार्य परमेष्ठी अपने आत्मा में सदाकाल रहने वाले आनन्दमय जीव के एक जीवत्व भाव को धारण करते हैं। उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी अपने में सदाकाल रहने वाले आनन्दमय एक जीवत्व भाव को धारण करने वाला है, क्योंकि मैं आचार्य परमेष्ठी स्वरूप हूँ।

**3. सकलविमलकेवलज्ञान स्वरूपोऽहम्।**

मैं पूर्ण निर्मल केवल ज्ञान स्वरूप हूँ। आचार्य-उपाध्याय-साधु परमेष्ठि प्रतिदिन निर्मल शुद्धात्मा को ध्याते हुए चिन्तन करते हैं कि ''अरहन्त भगवान् के समान मेरा आत्मा भी क्षायिक अनन्त ज्ञान/केवलज्ञान स्वरूप हैं।

**4. दण्डत्रयखण्डिताखण्डचित्पिण्ड स्वरूपोऽहम्।**

मैं दण्डत्रय को खण्डित करने वाला अखण्ड चैतन्य पिण्ड अरहन्त स्वरूप हूँ।

**5. चतुर्गति संसार दूरस्वरूपोऽहम्।**

मैं चतुर्गतिरूप संसार से रहित हूँ।

**6. निश्चयपञ्चाचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं आचार्य परमेष्ठि के समान निश्चय पञ्चाचार स्वरूप हूँ।

**7.भूतार्थषडावश्यक स्वरूपोऽहम्।**

जिस प्रकार आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठि निश्चयरूप छह आवश्यकों को पालन करते हुए परमात्म पद को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी परमार्थ छह आवश्यकों को पालते हुए निज परमात्म पद को प्राप्त होता है। अतः मैं भूतार्थ षट् आवश्यक स्वरूप हूँ।

**8. सप्तभयविप्रमुक्त स्वरूपोऽहम्।**

आचार्य परमेष्ठि सप्तभय से रहित हैं, उनके ही समान मेरा शुद्धात्मा भी सप्तभयों से रहित है, निर्भय स्वरूप है।

**9. विशिष्टगुणपुष्टस्वरूपोऽहम्।**

जिस प्रकार सिद्ध परमेष्ठि क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त केवल ज्ञान, अनन्त केवल दर्शन, अनन्तवीर्य, परमसूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अव्याबाधत्व, अगुरुलघु इन अष्टगुणों से सदाकाल पुष्ट रहते हैं। उसी प्रकार मेरा यह शुद्धात्मा भी सदाकाल उन आठों गुणों से पुष्ट रहता है, क्योंकि मैं भी सिद्ध समान अष्टगुणमय हूँ।

**10. नवकेवललब्धि स्वरूपोऽहम्।**

मेरा शुद्धात्मा नव केवललब्धि स्वरूप है अथवा मैं नव क्षायिक लब्धि स्वरूप हूँ।

**11. अष्टविधकर्मकलङ्करहित स्वरूपोऽहम्।**

मेरा शुद्धात्मा सिद्धों की भाँति शुद्ध निश्चयनय से अष्ट-विध कर्म कलंक से रहित शुद्ध सिद्ध परमात्मा है।



**12. अष्टादशदोष रहित स्वरूपोऽहम्।**

अरहन्त-सिद्ध परमात्मा के तरह मैं भी क्षुधा आदि के कारणभूत असातावेदनीय, मोहनीय आदि कर्मों के क्षय होने पर अष्टादश दोष रहित हूँ।

**13. सप्तनयव्यतिरिक्त स्वरूपोऽहम्।**

मेरा शुद्धात्मा सप्तनयों के कथन से भिन्न प्रमाणस्वरूप है।

**14. निश्चय व्यवहाराष्टविधज्ञानाचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं निश्चय व व्यवहार रूप आठों प्रकार के ज्ञानाचार को धारण करने वाला ज्ञानाचार स्वरूप हूँ।

**15. अष्टविधदर्शनाचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं आठ प्रकार के दर्शनाचार स्वरूप हूँ।

**16. द्वादशविधतपाचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं बारह प्रकार के तपाचरण स्वरूप हूँ।

**17. पञ्चविध वीर्याचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं पञ्चविधवीर्याचार स्वरूप हूँ।

**18. त्रयोदशविधचारित्राचार स्वरूपोऽहम्।**

मैं आचार्य परमेष्ठी के भाँति व्यवहार/निश्चय तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करता हुआ चारित्राचार स्वरूप हूँ।

**19. क्षायिकज्ञानस्वरूपोऽहम्।**

मैं क्षायिक ज्ञान स्वरूप हूँ।

**20. क्षायिकदर्शन स्वरूपोऽहम्।**

मैं क्षायिक दर्शन स्वरूप हूँ।

**21. क्षायिकचारित्र स्वरूपोऽहम्।**

मैं क्षायिक चारित्र स्वरूप हूँ।

**22. क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूपोऽहम्।**

मैं क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूप हूँ।

**23. क्षायिक पञ्चलब्धि स्वरूपोऽहम्।**

मैं क्षायिक पञ्चलब्धि( क्षायिक दान-लाभ-भोग-उपभोग वीर्य ) स्वरूप हूँ।

**24. परमशुद्धचिद्रूपस्वरूपोऽहम्।**

मैं परमद्रव्य से भिन्न, अनेक कर्तृत्व से भिन्न परमशुद्ध चिद्रूप स्वरूप हूँ।

**25. विशुद्धचैतन्यस्वरूपोऽहम्।**

मैं शुद्ध निश्चयनय अपेक्षा विशुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ।

**26. शुद्ध चित्काय स्वरूपोऽहम्।**

निश्चय से शुद्ध चेतना ही मेरा शरीर है।

**27. निजजीव तत्त्वस्वरूपोऽहम्।**

मैं निज जीव तत्त्व स्वरूप हूँ।

**28. शुद्धजीव पदार्थस्वरूपोऽहम्।**

मेरा जीवात्मा सिद्ध परमात्मा के समान मात्र शुद्धजीव पदार्थ है।

**29. शुद्धजीव द्रव्य स्वरूपोऽहम्।**

मैं शुद्ध जीव द्रव्य स्वरूप हूँ। अर्थात् शुद्ध जीव द्रव्य का जो परमशुद्ध( सिद्ध रूप ) है, वही स्वरूप यथार्थ से मेरे शुद्ध आत्मा का है।

**30. शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपोऽहम्।**

मैं शुद्ध जीव-अस्तिकाय स्वरूप हूँ।

**31. अखण्ड शुद्ध ज्ञानैक स्वरूपोऽहम्।**

सिद्ध भगवान की भाँति मैं परमशुद्ध अखण्ड केवल ज्ञानमय हूँ।

**32. स्वाभाविकज्ञानदर्शनस्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्ध भगवान् के समान स्वाभाविक ज्ञान और दर्शन स्वरूप हूँ।

**33. अन्तरंगरत्नत्रय स्वरूपोऽहम्।**

अरहन्त व सिद्ध भगवान् के समान मेरा यह शुद्ध आत्मा भी अन्तरंग/ निश्चय रत्नत्रय स्वरूप है।

**34.अनन्तचतुष्टय स्वरूपोऽहम्**

मैं अर्हत् स्वरूप सम अनन्तचतुष्टय स्वरूप हूँ।

**35. पञ्चमभावस्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्ध परमात्मा के समान पञ्चमभाव स्वरूप हूँ।

**36. नयनिक्षेप प्रमाण विदूर स्वरूपोऽहम्।**



मुझ आत्मा का स्वरूप नय-निक्षेप-प्रमाण के गोचर नहीं है अर्थात् सिद्ध भगवान् का स्वरूप जैसे नय-निक्षेप-प्रमाण के गोचर नहीं है, वचनातीत है, वैसे ही मेरा शुद्ध स्वरूप भी उक्त नयादि के कथन से सर्वथा भिन्न वचनातीत है।

**37.सप्तभय विप्रमुक्त स्वरूपोऽहम्।**

मैं सप्तभयों से पूर्ण रहित निर्भय स्वरूप हूँ।

**38. अष्टविधकर्म निर्मुक्त स्वरूपोऽहम्।**

मैं शुद्ध चेतन आत्मा शुद्ध निश्चय नय से सिद्धों की भाँति अष्टविध कर्मों से पूर्ण मुक्त स्वरूप हूँ।

**39. अविचलित शुद्ध चिदानन्द् स्वरूपोऽहम्।**

मैं सिद्ध परमात्मा के समान अचल, शुद्ध तथा चैतन्य के आनन्द से परिपूर्ण स्वरूप हूँ।

**40. अद्वैत परमाह्लादसुख स्वरूपोऽहम्।**

मैं अद्वैत परमाह्लाद सुख स्वरूप हूँ। जिस प्रकार सिद्ध परमेष्ठी स्व-आत्मोत्थ अन्य में न पाये जाने वाले ऐसे परम आनन्द वा सुख स्वरूप है, उसी प्रकार मेरा यह परमशुद्ध आत्मा भी अन्य किसी में न पाये जाने वाले ऐसे अद्वैत परमाह्लाद रूप सुखमय है।

केवलज्ञान में सबसे अधिक अनंतानंत अनुभाग प्रतिच्छेद शक्ति होने के कारण यह ज्ञान समस्त ज्ञेयों में विस्तृत है इसलिये इस ज्ञान में जानने के लिए कुछ अवशेष नहीं रहता है। इस ज्ञान में जानने की इच्छा का अभाव होने के कारण यह ज्ञान सुख-स्वरूप भी है।

विमल(मल रहित, निर्मल) छद्मस्थ का ज्ञान एवं सुख कर्म सापेक्ष होने के कारण, मलयुक्त होने के कारण आकुलता उत्पन्न करने वाला है परन्तु केवलज्ञान कर्म निरपेक्ष एवं अव्याबाध होने के कारण वह सुख परम आल्हाद रूप सुख है।

रहिदं तु ओग्गहादिहि( अवग्रहादि से रहित) केवलज्ञान क्षायिक होने के कारण युगपत प्रवृत्त होता है। इसलिए अवग्रहादि का क्रम नहीं है और तज्जनित खेद व आकुलता नहीं है। इसलिये प्रत्यक्ष ज्ञान ही पारमार्थिक या एकान्तिक सुख है।

**संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।**
**आत्मानमात्मवान्ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितं। (22)।**

Controlling his senses with concentrated mind the knower ! of the self should contemplete the self seated in his self, through the self.

**''स्वपरज्ञप्ति रूपत्वात्, न तस्य कारणान्तरम्।**
**ततश्चिन्तां परित्यज्य, स्वसंवित्यैव वैद्यताम्।।**
**''गहियं तं सुअणाणा, पच्छा संवेयणेण भाविज्जा।**
**जो ण हु सुयमवलंबई, सो मुज्झइ अप्पसब्भावौ।।'' तथा च**
**''प्राच्याव्य विषयेभ्योऽहं, मां मयैव मयि स्थितम्।**
**बोधात्मानं प्रपनोऽस्मि परमानन्दनिर्वृतम्'' ।।**

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! यद्यपि आत्मा का अस्तित्व है तथापि उसकी उपासना किस प्रकार की जावे ? इस प्रश्न का आचार्य जी उत्तर देते हैं- इन्द्रिय एवं मन को निरोध करके पूर्वोक्त प्रकार आत्मा का आत्मा के द्वारा स्वसंवेदन रूप से आत्मा में ही तत्व ज्ञान के द्वारा उपासना करनी चाहिए, ध्यान करना चाहिये। आत्मा का ज्ञान-ध्यान स्वसंवेदन के द्वारा ही होता है अन्य किसी कारण इन्द्रियाँ, यन्त्रादि से नहीं होता है। कहा भी है आत्मा स्व पर ज्ञाप्ति (ज्ञान जानने वाला) रूप होने से उसको जानने के लिए अन्य इन्द्रिय आदि की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए अन्यान्य चिन्ताओं को त्यागकर के स्वसंवेदन के माध्यम से ही स्वयं को जानना चाहिये। इन्द्रियों को रूपादि स्व-स्व विषय से निवृत्त कराके एकाग्र रूप से स्थिर चित्त से एक ही विवक्षित आतमा के द्रव्य पर्याय में से कोई एक में चित्त को स्थिर करना चाहिए। श्रुत ज्ञान के आलम्बन से मन एवं इन्द्रियों का निरोध करके समस्त चिंता को त्याग करके स्व-आत्मा की ही भावना भानी चाहिए तथा स्व-आत्मा को ही स्व-संवेदन के माध्यम से ही अनुभव करना चाहिए। आत्मा में स्थिर होने पर समस्त वस्तु का परिज्ञान हो जाता है क्योंकि समस्त वस्तु के परिज्ञान का आधार आत्मा ही है। कहा भी है - पहले श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा को जानकर पश्चात् स्व-संवेदन प्रत्यक्ष से उसका अनुभव करना चाहिए। जो श्रुतज्ञान का आवलम्बन नहीं लेता है वह आत्म स्वभाव में मोहित हो



जाता है तथा मैं विषयों से निवृत्त होकर मेरे द्वारा ही मेरे में स्थित होता हूँ। मैं बोधात्मक परमानन्द स्वरूप मेरे स्व स्वरूप को प्राप्त करता हूँ।

**समीक्षा** - इस श्लोक में आचार्य श्री ने आत्म ध्यान/आत्म ज्ञान आत्मानुभूति/आत्म उपलब्धि के उपाय को संक्षिप्त तथा सारगर्भित पद्धति से वर्णन किया है। जब तक इन्द्रियों की प्रवृत्ति रहेगी तब तक मन स्थिर नहीं हो सकता है और जब तक मन स्थिर नहीं होगा, तब तक आत्मध्यान नहीं होता है। इसी प्रकार जब तक राग द्वेष, मोह की प्रवृत्ति चंचल वृत्ति होगी तब तक भी ध्यान नहीं हो सकता। आचार्य नेमीचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्य संग्रह में कहा भी है -

**मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु।**
**थिरमिच्छहि जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए।। 48।।**

हे भव्यजनों यदि तुम नाना प्रकार के ध्यान अथवा विकल्प रहित ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट तथा अनिष्टरूप जो इन्द्रियों के विषय है उनमें राग द्वेष और मोह ही मत करो।

आचार्य श्री ने इस गाथा में ध्याता का स्वरूप तथा प्रकारान्तर से ध्यान के कारणों का आध्यात्मिक, रहस्यपूर्ण, संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत किया है। ध्यान के मुख्य अंग है 1.ध्यान 2. ध्याता 3. ध्यान के कारण 4.ध्येय 5.ध्यान के फल।

(1) ध्यान - उपयोग, चिन्ता, ज्ञान की स्थिरता ध्यान है।

(2) ध्याता-रत्नत्रय से युक्त साम्यावस्था को धारण करके ध्यान करने वाला ध्याता है।

(3) ध्यान के कारण- रत्नत्रय, वैराग्य, परिग्रह से शून्यता, मनेन्द्रिय के ऊपर विजय, समतादि ध्यान के कारण है।

(4) ध्येय - विश्व के प्रत्येक जड़ -चेतनात्मक,शुद्धाशुद्ध द्रव्य ध्येय होते हुए भी स्वनिर्मल परमात्मा ही अंतिम उत्कृष्ट ध्येय है।

(5) ध्यान के फल - संवर, निर्जरा एवं मोक्ष ध्यान के फल हैं।

''मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह'' समस्त मोह, राग, द्वेष से उत्पन्न हुए विकल्पों समूहों से रहित जो निज परमात्म स्वरूप की भावना से उत्पन्न हुआ एक

परमानन्द रूप सुखामृतरस से उत्पन्न हुई और उसी परमात्मा के सुख के आस्वाद में तत्पर अर्थात् मग्न हुई जो परम कला अर्थात परमसंवित्ति (आत्मस्वरूप का अनुभव) है, उसमें स्थिर होकर हे भव्य जीवो ! चित्त मे मोह, राग, द्वेष मत करो, ''इट्ठणिट्ठअट्ठेसु'' माला स्त्री, चंदन ताम्बूल आदि रूप इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में राग व सर्प विष, काटा, शत्रु तथा रोग आदि इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में द्वेष मत कर, थिर मिच्छइ जइ चित्तं यदि उसी परमात्मा के अनुभव में तुम निश्चल चित्त को चाहते हो। किसलिये स्थिर चित्त को चाहते हो। ''विचित्तझाणप्पसिद्धिए'' विचित्र अर्थात् नाना प्रकार का जो ध्यान है उसकी सिद्धि के लिए अथवा दूर हो गया है चित्त अर्थात् चित्त से उत्पन्न होने वाला शुभ-अशुभ विकल्पों का समूह दूर हो गया है, सो विचित्र ध्यान है, उस विचित्र ध्यान को सिद्धि के लिए।

अंकुर उत्पत्ति के लिए योग्य जल, वायु, पृथ्वी एवं सूर्य आदि की आवश्यकता पड़ती है परन्तु योग्य बीज के अभाव से बाह्य जल, वायु आदि के संयोग से भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता। उसी प्रकार ध्यान के लिए योग्य बाह्य देशादि की आवश्यकता है तो भी ध्यान के अन्तरंग एवं मुख्य कारण मन की एकाग्रता नहीं है तो ध्यान रूपी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है। अतः ध्यान का महत्वपूर्ण प्रधान साधन मन की साम्य-अवस्था है। मन की साम्य अवस्था के लिए राग-द्वेषात्मक भावात्मक तरंग का उपशमन अति आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। आचार्य पूज्यपाद-देवनन्दी ने समाधि शतक में साम्यावस्था एवं आत्मदर्शन के लिए रागद्वेषात्मक कल्लोल का अभाव होना मुख्य कारण कहा है।

**रागद्वेषादिकलोलैरलोलं यन्मनोजलम्।**
**स पश्यत्यात्मनस्तत्वंस तत्त्वं नेतरो जन। 35**

जिस पुरुष का मनरूपी जल राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मद, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य पुरुष उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

स्वच्छ स्थिर जल में देखने वाले का मुख दर्पण के सदृश्य प्रतिबिम्बित हो जाता है। परन्तु वायु के बहने से या कोई घन वस्तु उस जलाशय में निक्षेप (डालने) से जल में तरंगे उठती है, जिससे जल क्षुभित हो जाता है। क्षुभित जल में मुख स्पष्ट प्रतिबिम्बत नहीं होता है। यदि कदाचित् प्रतिबिम्ब भी होगा तो



प्रतिबिम्ब मुख के अनुरूप न होकर वक्र रूप अतदाकार अस्पष्ट दिखाई देगा। उसी प्रकार मनरूपी जल जब साम्यावस्था की प्राप्ति करके स्थिर रहता है तब ध्यान साधना, आत्मदर्शन होता है, परन्तु जब राग द्वेषात्मक प्रचण्ड वायुवेग से मन रूपी जल में संकल्प विकल्पात्मक आकर्षण विकर्षणात्मक लहरे कल्लोलित होती है उस समय मन रूपी जल क्षुभित हो जाता है। उस समय में एकाग्रता के अभाव से ध्यान, साधन आत्मदर्शन नहीं हो सकता है। इसीलिए मन की स्थिरता के लिए रागद्वेषात्मक आकर्षण-विकर्षणात्मक भावों का त्याग करना परम आवश्यक है ।

**उत्साहन्निश्चयाद्धोर्यात्सन्तोष निश्चयात्।**
**मुनेर्जपद त्यागात् षडिभिर्योग प्रसिध्यति।। (ज्ञाना.)**

उत्साह से, निश्चय से, धैर्य से, संतोष से, तत्व दर्शन से, देश त्याग से योग की सिद्धी हाती है।

कोई इस प्रकार कहता है -

**एतान्येवाहुः के चिच्चमनः स्थैयार्य शुद्धये।**
**तस्मिन् स्थिरी कृते साक्षात्स्वार्थ सिद्धि ध्रुव भवेत्।। 2**

कोई ऐसा कहता है कि ये यमादिक कहे हैं सो मन को स्थिर करने के लिए तथा मन की शुद्धता के लिए कहे हैं क्योंकि मन के स्थिर होने से साक्षात् प्रसिद्धि होती है।

**यमादिषु कृताभ्यासो निःसंगो निर्ममो मुनिः।**
**रागादि क्लेश निर्मुक्तं करोति स्ववश मनः।। 3**

जिसने यमादिक के अभ्यास किया है, परिग्रह और ममता से रहित है ऐसा मुनि ही अपने मन को रागादिक से निर्युक्त तथा अपने वश में करता है।

**अष्टांगानि योगस्य यान्युक्तान्यार्य सूरिभिः।**
**चित्त प्रसति मार्जेण बीजं स्युस्ताति उदय।। (4)**

योग के 8 अंग पूर्वाचार्यों ने कहे हैं। वे चित्त की प्रसन्नता के मार्ग से मुक्ति के लिए बीजभूत (कारण) होते हैं, अन्य प्रकार से नहीं होते। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने कहा है -हिंसादि पंच महापाप सेवन से, पंचेन्द्रियजनित विषय आसक्ति, भोग अनुभव से असत् अनैतिक आचार-विचार से, संसार-शरीर-भोगासक्ति से अविद्या,

अज्ञान से मन क्षुभित होकर, मलिन होकर ध्यान साधन नहीं हो सकता है। इसलिए ध्यान विशेषज्ञ आचार्य ध्यान साधन के कारण बताते हुए कहते हैं कि -

**वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रंथं वशचित्तता।**
**परिषह जयश्चेति पंचैते ध्यान हेतवः।।**

1. वैराग्य 2. तत्त्व का परिज्ञान 3. अन्तरंग बहिरंग ग्रंथि शून्यता 4. मन के ऊपर विजय 5. परिषह उपसर्ग कष्टादि को समता रूप में सहन करना ये पांच ध्यान के लिए कारण है।

**जं किंचिवि चितंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।**
**लद्धुणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं।। 55**

ध्येय पदार्थ में एकाग्रचित्त होकर जिस किसी पदार्थ को ध्याता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्ति सब प्रकार की इच्छाओं से रहित होता है उस समय उसके ध्यान निश्चय ध्यान होता है ऐसा आचार्य कहते है।

'तदा' उस काल में आहु कहते हैं तं तस्स णिच्छयं ज्ञाणं उसको, निश्चय ध्यान कहते हैं जब क्या होता है ? णिरहवित्ती हवे जदा साहु '' निस्पृह वृत्तिवाला साधु ध्याता होता है। क्या करता है ? जं किंचिवि चिंतंतो जिस किसी ध्येय वस्तु स्वरूप का विशेष चिन्तन करता है। पहले क्या करके ? लध्दूणय एयत्तं उस ध्येय में प्राप्त होकर। क्या प्राप्त होकर ? एकपने को अर्थात् एकाग्रचिन्ता निरोध को प्राप्त होकर (ध्येय पदार्थ में एकाग्रचिन्ता का निरोध करके यानि एकचित्त होकर जिस किसी ध्येय वस्तु का चिन्तन करता हुआ साधु जब निस्पृहवृत्ति वाला होता है। उस समय साधु के उस ध्यान को निश्चय ध्यान कहते हैं। विस्तार से वर्णन, गाथा में यत् किंचित् ध्येयम्(जिस किसी भी ध्येय पदार्थ को) इस पद से क्या कहा है ? प्रारम्भिक अवस्था की अपेक्षा से जो सविकल्प अवस्था है, उसमें विषय और कषायों को दूर करने के लिए तथा चित्त को स्थिर करने के लिए पंच परमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं। फिर जब अभ्यास से चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय है। निस्पृह शब्द से मिथ्यात्व, तीनों-वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चौदह अन्तरंग परिग्रहों से रहित तथा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भांड नामक दश बहिरंग परिग्रहों से रहित, ध्यान करने योग्य



पदार्थों में स्थिरता और निश्चलता को ध्यान का लक्षण कहा है। निश्चय शब्द से अभ्यास प्रारंभ करने वाले की अपेक्षा व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय ग्रहण करना चाहिए और ध्यान में निष्पन्न पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोगरूप विवक्षितैकदेश शुद्धनिश्चय ग्रहण करना चाहिए। विशेष निश्चय आगे कहे जाने वाला है।

**मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किं वि जेण होइ थिरो।**
**अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।। (56)**

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारों जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वहीं परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा या छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अन्तर हो। उसी प्रकार के संकल्पविकल्प, चिन्तन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन/चंचलता/क्षोभ हो जाता है इसलिए श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप में स्थिर होना चाहिए।

अतः आचार्य श्री ने कहा है कि -

**'मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि'।**

हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ-अंतरंग-बहिरंग रूप वचन को और शुभ अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ भी मत करो।

'जेण होई थिरो' जिन तीनों योगों के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन ? ''अप्पा' आत्मा कैसा होकर स्थिर होता है ? अप्पम्मि रओ स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्मतत्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरण रूप भेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न, सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन व तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। इणमेव पर हवे ज्झाणं यही तो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परमध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या - क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्मस्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटता रूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज शुद्ध आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है परमात्मा ध्यान के भावना की नाममाला में इस देश व्यक्ति रूप नय के व्याख्यान को यथा संभव सब जगह लगा लेना चाहिए। लाभ एकदेश शुद्ध निश्चय नय से अपेक्षित है।

वही पर ब्रह्म स्वरूप है, वहीं परम विष्णुरूप है, वही परम शिवरूप है, वही परम् बुद्धस्वरूप है, वही परम जिनस्वरूप है, वही परम निज-आत्मोपलब्धि रूप सिद्धस्वरूप है, वही निरंजनस्वरूप है, वही शुद्धात्मदर्शन है वह ही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुभ पारिणामिक भावरूप है, वही ध्यान भावनारूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वह ही परम पवित्र है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध वहि निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, वही आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म संवित्ति, आत्म-संवेदन है, वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है, वही परम समाधि है, वही परम-आनंद है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध पारिणामिक भावरूप है, वही नित्य आनंद है, वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्मा पदार्थ के अध्ययनरूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का मार्ग है। वही एकाग्रचिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वही परम योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप-वीर्यरूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही आध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट्-आवश्यक स्वरूप है, वही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है, वही वीतराग सामायिक है, वही परमशरणरूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है। वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप आराधना स्वरूप है, वही परमात्मा भावनारूप है, वही परम अद्वेत है, वही अमृतस्वरूप परमधर्मध्यान है, वही शुक्ल ध्यान है,



वही राग आदि विकल्प रहित ध्यान है, वही निष्फल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आल्हाद एक-सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्मतत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

**तवसुदवदवं चेदा ज्झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।**
**तम्हा तत्तियणिरदा तल्लद्धीए सदा होई।। (57) द्रव्यसंग्रह**

क्योंकि तप, श्रुत और व्रत का धारक जो आत्मा है वही ध्यान रूप रथ की धुरा को धारण करने वाला होता है। इस कारण से भव्य जनों ! तुम उस ध्यान की प्राप्ति के अर्थ निरंतर तप, श्रुत और व्रत इन तीनों में तत्पर हो।

## आपकी आत्म-अवधारणा के तीन हिस्से

केक की तीन परतों की तरह ही आपकी आत्म-अवधारणा के भी तीन हिस्से होते हैं। इन तीनों हिस्सों में से पहला है आत्म-आदर्श (Self-ideal) । यह उस आदर्श व्यक्ति की छवि है जिसकी तरह आप बनना चाहते हैं। यह आदर्श छवि आपके व्यवहार और अपने बारे में आपके विचारों पर गहरा असर डालता है।

आपका आत्म-आदर्श उन गुणों और लक्षणों का मिश्रण है, जिन्हें आप दूसरों में सबसे ज्यादा पसंद करते हैं। यह आपकी प्रबल आकांक्षाओं का योग है। यह आपका सपना है कि आदर्श व्यक्ति कैसा होना चाहिए।

असाधारण स्त्री-पुरुषों के बहुत स्पष्ट आत्म-आदर्श थे, जिनकी ओर वे लगातार बढ़ रहे थे। उन्होंने खुद के लिए ऊँचे मानदंड तय किए और उनके अनुरूप जीने की कोशिश की। आप भी ऐसा ही कर सकते हैं। आप किस तरह के व्यक्ति बनना चाहते हैं, इस बारे में आप जितने स्पष्ट रहेंगे, इस बात की उतनी ही ज्यादा संभावना है कि दिन-ब-दिन आप वैसे बनते चले जाएँगे। आप अपनी प्रबल आकांक्षाओं के शिखर तक उठेंगे। आप वह बन जाएँगे, जो आप सबसे ज़्यादा बनना चाहते हैं।

दुर्भाग्य, से असफल और दुखी स्त्री-पुरुषों के आदर्श बहुत अस्पष्ट होते हैं

या ज़्यादातर मामलों में तो होते ही नहीं है। वे कैसे बनना चाहते हैं, इस बारे में ज़रा भी नहीं सोचते। वे उन गुणों पर भी ध्यान नहीं देते, जिन्हें वे खुद में विकसित करना चाहते हैं। उनका विकास धीमा हो जाता है और अंततः ठहर जाता है। वे एक मानसिक दुष्चक्र में फँस जाते हैं और फिर वहीं बने रहते हैं। वे आत्म-सुधार की हर प्रेरणा को गँवा देते हैं।

जब कोई दूसरों में अखंडता , उद्देश्यपूर्णता, साहस और कर्मठता के गुणों का सम्मान करता है, तो वह अपने भीतर भी इन जीवनमूल्यों को आत्मसात करने लगता है।

जैसे-जैसे आप अपने मूलभूत जीवनमूल्यों को स्पष्ट करते हैं और उन्हें अपने हर काम में एकीकृत करने के लिए मेहनत करते हैं, आपका व्यक्तित्व बेहतर होता जाता है। और चूँकि आपका बाहरी जीवन आपके भीतरी जीवन का हर पहलू भी सुधरता है। इस बारे में हम ज़्यादा विस्तार से बाद में बात करेंगे।

आत्म-अवधारणा का दूसरा हिस्सा है आपकी आत्म छवि (Self-image)। आत्म-छवि का मतलब है कि आप हर दिन खुद को किस तरह देखते हैं । आप हर दिन अपने बारे में किस तरह सोचते हैं। आपकी आत्म-छवि को अक्सर आपका ''आंतरिक दर्पण'' कहा जाता है, जिसमें आप यह पता लगाने के लिए देखते हैं कि किसी ख़ास स्थिति में कैसा व्यवहार या प्रदर्शन करना है। आप हमेशा उस तस्वीर के अनुरूप व्यवहार करते हैं, जो आपने अपने बारे में खुद के भीतर स्थापित कर रखी है। इस कारण परिवर्तन आसान हो जाता है। अगर आप हर क्षेत्र में अपने भीतर स्थापित मानसिक तस्वीरों को बदल लें, तो आप अपने प्रदर्शन और व्यवहार को आसानी से बेहतर बना सकते हैं।

आत्म-छवि में परिवर्तन की यह प्रक्रिया आपके प्रदर्शन को सुधारने के सबसे तेज़ और विश्वसनीय तरीक़ों में से एक है । जैसे-जैसे आप खुद को ज्यादा योग्य और आत्मविश्वासी देखते और सोचते हैं, वैसे-वैसे आपका व्यवहार ज़्यादा केंद्रित और असरदार बन जाता है।

जब आप चेतन रूप से अपनी आत्म-छवि बदलते हैं, जैसा कहना आप इस अध्याय में बाद में सीखेंगे, तो आप पहले से ज़्यादा अच्छी तरह चलेंगे, बोलेंगे, काम करेंगे और महसूस करेंगे। आप अपनी मानसिक छवियाँ बदलकर



अपने व्यक्तित्व और परिणामों दोनों को बदल लेंगे।

आपकी आत्म-अवधारणा का तीसरा हिस्सा है आपका आत्मसम्मान (Self-esteem) । आत्मसम्मान का मतलब यह है कि आप खुद के बारे में कैसा महसूस करते हैं। यह आपके व्यक्तित्व का भावनात्मक अंग है और यह गुण उच्च प्रदर्शन की बुनियाद है। यह खुशी और व्यक्तित्व प्रभावकारिता की कुंजी है। यह किसी न्यूक्लियर पॉवर प्लांट के रिएक्टर कौर जैसा है। यह ऊर्जा, उत्साह, जीवंतता और आशावाद का स्रोत है। यह आपके व्यक्तित्व को शक्ति देता है और आपको सफल बनाता है। आपके आत्मसम्मान का स्तर दो बातों से तय होता है, जो एक ही सिक्के के दो पहलू है। पहला यह कि आप खुद को कितना मूल्यवान और सार्थक समझते हैं आप खुद को कितना पसंद करते हैं और खुद को कितना अच्छा मानते हैं। यह आत्मसम्मान का ''व्यक्तित्व आकलन'' वाला हिस्सा है। यह आपका ख़ुद का मूल्यांकन है, जिसका इस बात से कोई संबंध नहीं है कि उस पल आपकी जिंदगी में क्या चल रहा है।

पहला तत्त्व बाहरी चीज़ों पर निर्भर नहीं है। जैसे आत्मसम्मान वाले व्यक्ति के जीवन में असंख्य मुश्किलें और बाधाएँ होने के बावजूद वह अपना ऊँचा और सकारात्मक आकलन कर सकता है। दुर्भाग्य से, बहुत कम लोग विकास की इस अवस्था तक पहुँच पाते हैं, जहाँ वे बाहरी परिस्थितियों के बावजूद भीतरी मूल्य का एहसास कायम रख पाएँ।

आपके आत्मसम्मान के स्तर को तय करने वाला दूसरा तत्व है ''आत्म-क्षमता'' (self-efficacy) की भावना। आत्म -क्षमता का मतलब यह है कि आप जो भी काम करते हैं, उसमें आप ख़ुद को कितना योग्य और सक्षम मानते हैं। यह आत्मसम्मान का ''प्रदर्शन पर आधारित'' हिस्सा है। यही अधिकांश वास्तविक और स्थाई आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की बुनियाद है।

आपके आत्मसम्मान के ये दोनों हिस्से एक-दूसरे को बल देते हैं। जब आप ख़ुद के बारे में अच्छा महसूस करते हैं, तो आप बेहतर प्रदर्शन करते हैं। और जब आप अच्छा प्रदर्शन करते हैं, तो आप खुद के बारे में अच्छा महसूस करते हैं। दोनों ही अनिवार्य हैं। एक के बिना दूसरा क़ायम नहीं रह सकता।

आत्मसम्मान को जानने का सबसे अच्छा पैमाना यह है कि आप ख़ुद को कितना ज़्यादा पसंद करते हैं। आप खुद को जितना पसंद करते हैं, आप अपने चुने हुए हर काम को उतना ही बेहतर करते हैं। आप खुद को जितना ज़्यादा पसंद करते हैं, आपमें उतना ही ज़्यादा आत्मविश्वास होता है, आपका नज़रिया उतना ही ज़्यादा सकारात्मक होता है, आप उतने ही ज़्यादा स्वस्थ और ऊर्जावान होते हैं और कुल मिलाकर आप उतने ही ज़्यादा खुश होते हैं।

आप कैसा महसूस करते हैं, यह काफ़ी हद तक इस बात से तय होता है कि आप मन ही मन या ज़ोर से खुद से कैसे बात करते हैं। इसलिए, अपने आत्मसम्मान को इच्छानुसार बढ़ाने के लिए उत्साह और विश्वास से बार-बार दोहराएँ, ''मैं खुद को पसंद करता हूँ। मैं खुद को पसंद करता हूँ! मैं खुद को पसंद करता हूँ।।''मैं खुद से प्यार करता हूँ।'' पहली बार सुनने पर, यह थोड़ा अजीब लग सकता है, लेकिन है बहुत दमदार । प्रयोग के रूप में इस पन्ने से ऊपर देखें और ख़ुद से कहें, जैसे आप इसे दिल की गहराई में सच मानते हों, '' मैं ख़ुद को पसंद करता हूँ।'' कई बार दोहराएँ। इससे भी बेहतर यह रहेगा कि आप आईने में ख़ुद को देखकर कहें, ''मैं ख़ुद को पसंद करता हूँ। इस वाक्य को पाँच-छह बार कहने के बाद ऐसा हो ही नहीं सकता कि आप अपने बारे में सचमुच बेहतर महसूस न करें।

हम यह अपने बच्चों को सिखाते हैं। जब भी वे दुखी होते हैं या गड़बड़ कर देते हैं, तो हम उनसे यह कहलवाते हैं, ''मैं खुद को पसंद करता हूँ।'' जल्द ही वे मुस्करा देते हैं और ख़ुश हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि इस संदेश के प्रति जो जितना ज़्यादा खुला और ग्रहणशील होता है, उसके व्यक्तित्व पर इसका उतना ही ज़्यादा असर पड़ता है।

खुद को पंसद करना बड़ी स्वस्थ बात है। दरअसल, यह व्यक्तिगत प्रभावकारिता और दूसरो के साथ सुखद संबंधों की कुंजी है। आप खुद को जितना ज़्यादा पसंद करते हैं और अपना जितना ज्यादा सम्मान करते, अपने हर काम में आप उतना ही बेहतर प्रदर्शन करते हैं। आप उतने ही ज़्यादा शांत और सकारात्मक रहते हैं। अपनी योग्यताओं के बारे में आपको उतना ही ज़्यादा आत्मविश्वास होता है। आप कम ग़लतियाँ करते हैं। आपमें ज़्यादा ऊर्जा होती है



और आप ज़्यादा रचनात्मक होते हैं।

कुछ लोगों को यह विश्वास करना सिखाया गया है कि खुद को पंसद करना घमंड का लक्षण है या बुरी बात है। लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है। ''सुपरीरियॉरिटी कॉम्लेक्स' का मतलब है घमंडी या दंभपूर्ण ढंग से व्यवहार करना।'' इनफ़ीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स'' का मतलब है खुद को दोष देते हुए व्यवहार करना। इन दोनों में ही आत्मसम्मान की कमी झलकती है, क्योंकि इनमें से किसी में भी खुद को ज़्यादा पसंद नहीं किया जाता। वास्तविक आत्मसम्मान वाले लोग लगभग हर व्यक्ति के साथ आसानी से और अच्छी तरह तालमेल बैठा लेते हैं ।

## आत्मसम्मान के नियम

आत्मसम्मान और खुद को पसंद करने के दो नियम हैं। पहला नियम यह है कि आप ख़ुद को जितना पंसद करते हैं या ख़ुद को जितना प्रेम करते हैं, उतना किसी दूसरे को कभी नहीं कर सकते। आपके पास जो है ही नहीं, वह आप किसी को दे भी नहीं सकते।

दूसरा नियम यह है कि आपको यह उम्मीद कभी नहीं करनी चाहिए कि आप खुद को जितना पसंद या प्रेम करते हैं, उतना कोई दूसरा आपको कर सकता है।

खुद को पसंद करने और स्वीकार करने का स्तर आपके मानवीय संबंधों की गुणवत्ता पर लगा कंट्रोल वॉल्व है। यह हर इंसानी स्थिति में समस्या का समाधान है। आप अपने आत्मसम्मान को बढ़ाने और मज़बूत करने के लिए जो करते है, उससे आपके जीवन में संतुष्टि और ख़ुशी बढ़ती है।

अगर आपकी आत्म-अवधारणा आपके अवचेतन कम्प्यूटर का मास्टर प्रोग्राम है, तो यह प्रोग्राम आता कहाँ से है ? यह कैसे बनता है ? यह किन चिजों से बनता है ? और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आप खुद को बेहतर बनाने या अपने काम को ज़्यादा प्रभावी बनाने के लिए इसकी प्रोग्रामिंग दोबारा कैसे कर सकते हैं ?

## आत्म-अवधारणा का निर्माण

आप आत्म-अवधारणा के साथ पैदा नहीं होते। आज आप जो भी चीज़

जानते हैं और जिस चीज़ पर भी विश्वास करते हैं, उसे आपने सीखा है। बचपन से आज तक आपके साथ जो हुआ है, उससे आपने सीखा है। हर बच्चा शुद्ध क्षमता, एक ख़ास स्वभाव और निश्चित जन्मजात गुणों के साथ संसार में आता है, लेकिन उसमें आत्म-अवधारणा नहीं होती। आपका हर वर्तमान नज़रिया, व्यवहार, जीवनमूल्य,राय, विश्वास और डर आपने सीखा है। इसलिए, अगर आपकी आत्म-अवधारणा में कुछ ऐसे तत्व हैं, जो आपके उद्देश्यों को पूरा नहीं करते, तो आप उन्हें अनसीखा (Unlearn) भी कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए, मैंने हाल ही में बत्तीस साल की एक महिला के बारे में पढ़ा, जो कार दुर्घटना का शिकार हो गई और सिर पर चोट लग जाने के कारण उसकी याददाश्त चली गई। दुर्घटना के समय वह शादी-शुदा थी और उसके दो बच्चे थे, जिनकी उम्र आठ और दस साल थी। वह बेहद शर्मीली थी, हकलाती थी और दूसरों के सामने बहुत घबराती थी। उसकी आत्म-अवधारणा कमज़ोर थी और आत्मसम्मान का स्तर कम था। इस समस्या को बढ़ाने वाली बात यह थी कि वह महिला नौकरी नहीं करती थी और उसका सामाजिक दायरा सीमित था।

पूरी याददाश्त चली जाने के कारण जब वह अस्पताल में जागी, तो उसे अपने अतीत के जीवन के बारे में कुछ भी याद नहीं रहा। उसे अपने माता-पिता याद नहीं थे, न ही बच्चे और पति। उसका मस्तिष्क पूरी तरह ख़ाली था।

यह इतना असामान्य था कि बहुत से विशेषज्ञ, न्यूरोसर्जन और मनोवैज्ञानिक उससे बातचीत करने और उसकी उम्र जाँच करने आने लगे।

उसका मामला इतना ख़ास था कि वह काफ़ी मशहूर हो गई। जब वह शारीरिक रूप से ठीक हो गई, तो रेडिया और टेलीविज़न पर उसके इंटरव्यू लिए गए। वह अपनी स्थिति का अध्ययन करने लगी और अंततः उसने अनुभवों पर कई लेख और एक पुस्तक लिखी।

वह मेडिकल और प्रोफ़ेशनल समूहों के समाने लेक्चर देने लगी और यात्राएँ करने लगी। अंततः वह एमनेसिया या पूरी याददाश्त जाने के विषय की विशेषज्ञ बन गई।

चूँकि उसे अपने पुराने-अनुभवों, बचपन और लालन-पालन के बारे में कुछ भी याद नहीं था, इसलिए आकर्षण का केंद्र बनने और खुद को बहुत ख़ास



व्यक्ति समझने के कारण उसने एक बिल्कुल ही नया व्यक्तित्व विकसित कर लिया। वह सकारात्मक, आत्मविश्वासी ओर बहिर्मुखी बन गई। वह बहुत मिलनसार और दोस्ताना बन गई और उसने उत्कृष्ट हास्यबोध विकसित कर लिया। वह लोकप्रिय हो गई और बिल्कुल ही नए सामाजिक दायरे में लोगो से मिलने-जूलने लगी। नतीजा यह हुआ कि उसने एक बिल्कुल नई आत्म-अवधारणा विकसित कर ली, जो जीवन में पूर्ण सफलता, ख़ुशी और संतुष्टि के अनुरूप थी। उसने अपने मस्तिष्क में एक मानसिक प्रोग्राम की जगह दूसरा मानसिक प्रोग्राम रख लिया। आप भी ऐसा ही कर सकते हैं।

जब आप समझ लेते हैं कि आपकी आत्म-अवधारणा बनती कैसे है, तो आप ऐसे बदलाव कर सकेंगे, जो आपको वैसा व्यक्ति बना देंगे, जिसे आप पसंद करते हैं और जिसके जैसा आप बनना चाहते हैं। आप वैसा व्यक्ति बनने का तरीक़ा सीख लेंगे, जो आपके लिए सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण लक्ष्यों और सपनों को हासिल कर सकता है।

बच्चे इस दुनिया में बिना किसी आत्म-अवधारणा के आते हैं। बच्चों के साथ बचपन में जैसा व्यवहार किया जाता है, उससे वे सीखते हैं कि वे कौन हैं और कितने महत्वपूर्ण या मूल्यवान हैं(या नहीं है)। बच्चों को प्रेम और स्पर्श की ज़बरदस्त ज़रुरत होती है। उनके लिए प्रेम भावनात्मक ऑक्सीजन जैसा होता है। आप बचपन में बच्चों को बहुत ज़्यादा प्रेम और स्नेह दे ही नहीं सकते। बच्चों को प्रेम की उतनी ही ज़रुरत होती है, जितनी गुलाबों को बारिश की। उन्हें प्रेम की लगभग उतनी ही जरुरत होती है, जितनी कि खाने-पीने या सुरक्षा की।

व्यक्तित्व की बुनियाद शुरुआती तीन से पाँच वर्षों में पड़ जाती है। किसी वयस्क व्यक्ति की सेहत काफ़ी हद तक अटूट प्रेम की गुणवत्ता और मात्रा से तय होती है, जो उसे इस दौरान अपने माता-पिता और बाकी लोगों से मिलता है।

जो बच्चा प्रचुर प्रेम, स्नेह और प्रोत्साहन के परिवेश में पलता है,वह जल्द ही सकारात्मक और स्थिर व्यक्तित्व विकसित कर लेगा। जो बच्चा आलोचना और सज़ा के माहौल में पलता है, उसमें बड़े होकर डरने, शंकालु होने और अविश्वास करने की प्रवृत्ति होगी। साथ ही उसमें व्यक्तित्व की बहुत सी ऐसी समस्याएँ भी हो सकती है, जो बाद के जीवन में सामने आएँगी। कम आत्मसम्मान और नकारात्मक

मानसिक नज़रिए वाले वयस्कों को बचपन में वह प्रेम और सुरक्षा नहीं मिली, जिसकी उन्हें ज़रुरत थी।

## मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द

- आचार्य कनकनदी

(चाल: पायोजी मैंने...)

**जाना है मैंने मैं हूँ निश्चय से शुद्ध जीव। (आत्मधर्म)।**
**आगम अनुभव नय प्रमाण से मैं हूँ चेतन्य द्रव्य।। (स्थायी)**

**भले अनादि कर्म सम्बन्ध से बना हूँ अशुद्ध जीव।**
**तथापि मैं हूँ द्रव्यदृष्टि से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द।।(1)**

**शुद्ध-बुद्ध व आनन्द हेतु ही कर रहा हूँ मैं धर्म।**
**तप-त्याग व ध्यान-अध्ययन समस्त श्रमण धर्म।। (2)**

**जिससे शुद्ध-बुद्ध-आनन्द मिले वह ही यथार्थ धर्म।**
**जिससे शुद्ध-बुद्ध-आनन्द न मिले वह ही पक्का अधर्म।। (3)**

**राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद-ईर्ष्या-घृणा-तृष्णादि अशुद्ध।**
**पर निन्दा-अपमान-वैर-विरोध आदि कुभाव है अशुद्ध।। (4)**
**ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्व-पुरस्कार-तिरस्कारादि अशुद्ध।**
**अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा-आकर्षण-विकर्षण द्वन्द्व अशुद्ध। (5)**

**अशुद्ध भाव से रहित ज्ञान होता है यथार्थ से बोध।**
**जितने अंश में होता है बोध उतने अंश होता बुद्ध।।(6)**

**जितने अंश में होते शुद्ध-बुद्ध उतने अंश में आनन्द।**
**पूर्ण शुद्ध-बुद्ध से होता पूर्ण आनन्द यह परम आध्यात्म।। (7)**

**यह ही मेरा परम धर्म है यही मेरा स्व-धर्म।**
**यह ही मेरा परम लक्ष्य है 'कनक' चाहें आत्मधर्म।। (8)**

नन्दौड़ 09.08.2018 अपराह्न 04:15



## ज्ञानाभ्यास से मोक्ष

**णाणेण ज्झाणसिज्झी ज्झाणदो सव्व कम्म णिज्जरणं।**
**णिज्जरण फलं मोक्खं णाणब्भासं तदो कुज्जा।। 155।।**

**अर्थ :-** आत्मज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है तथा समस्त कर्मों की निर्जरा हो जाने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए भव्य जीवात्माओं को मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान का अभ्यास करना आवश्यक है।

## श्रुत की भावना से उपलब्धि

**कुसलस्स तवो णिवुणास्स संजमो समपरस्स वेरग्गो।**
**सुदभावणेण तत्तिय तम्हा सुदभावणं कुणह।। 156।।**

**अर्थ :-** जो भव्य मुनि आगम को अच्छी तरह से जानकर कुशल पूर्वक तप करता है, अर्थात् तप करने में कुशल हैं। संयम पालन करने में निपुण है अर्थात् संयम को अच्छी तरह से समझकर पालन करते हैं। जिसके समरसी भाव है अर्थात् समता भाव से वैराग्य की वृद्धि करता है अर्थात् विरागी हैं, विरक्त है। श्रुताभ्यास अर्थात् आगमज्ञान से तप, संयम, वैराग्य तीनों होते हैं।

बिना शास्त्र ज्ञान का मुनि बाह्य विचार विकल्पों में संचार करता है। उसके तप संयम समभाव होते हैं। इसलिए मुनि अपने आत्मकल्याण हेतु प्रथम आगम का अभ्यास अच्छी तरह करें। उससे ही सच्चा ज्ञान होता है और सच्चा ज्ञान से तप संयमादि द्वारा कर्मों की निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए बार-बार कहते हैं कि जिनागम का अभ्यास करो।

## मिथ्यात्व से अनंत काल भ्रमण

**कालमणंतं जीवो मिच्छत्तसरुवेण पंचसंसारे।**
**हिंडदि ण लहइ सम्मं संसारभमण पारंभो।।157।।**

**अर्थ :-** अनादि काल से मिथ्यात्व कर्म के उदय से यह जीव संसार में द्रव्य, क्षेत्र, काल,भाव रूप पंच परावर्तन परिभ्रमण कर रहा है। इस जीव को अनंत काल बीतने पर भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई।

आचार्य कहते हैं कि अब तो मिथ्यारूप निद्रा से जागृत हो जिनेन्द्र भगवान् की वाणी सुन। सम्यक्त्व की आंखे खोल और देख तुझे आत्मा का और विश्व के संसार भ्रमण चक्र का ज्ञान होगा।

सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने पर यह जीव संसार में भ्रमण नहीं करेगा। इसलिए सम्यग्दर्शन धारण करने का प्रयत्न करें।

## सम्यग्दर्शन के सद्भाव-अभाव का फल

**सम्मद्दंसणसुद्धं जाव दु लभदे हि ताव सुही।**
**सम्मद्दंसणसुद्धं जाव ण लभदे हि ताव दुही।। 158।।**

**अर्थ :-** इस जीव को जब से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है तभी से ही यह जीव महान सुखी हो जाता है। तथा जब तक इस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है तब तक यह जीव महान् दुःखी रहता है। अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन ही समस्त सुखों का कारण है।

## बहुत कहने से क्या लाभ ?

**किं बहुणा वयणेण दु सव्वं दुक्खेव सम्मत्त विणा।**
**सम्मत्तेण संजुत्तं सव्वं सोक्खेव जाणं खु।। 159।।**

**अर्थ :-** आचार्य कहते हैं कि वचनों के द्वारा बहुत कहने से क्या लाभ है, इतना ही समझ लेना चाहिये कि बिना सम्यग्दर्शन के संसार में चारों ओर दुःख ही दुःख है। एवं यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाय तो सर्वत्र सुख ही सुख है।

**भावार्थ :** सम्यग्दर्शन की महिमा, शक्ति, शुद्धि एक अलग ही श्रेष्ठ और पूज्य है क्योंकि -आत्म सुख का, मोक्षमार्ग का प्रकाशक सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना यह जीव संसार में अंधा होकर घूम रहा है। कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं है। वास्तव में सम्यग्दर्शन ही सुख है।

## सम्यक्त्व रहित ज्ञानाभ्यास संसार का कारण

**णिक्खेव णयप्पमाणं सद्दालंकार छंदलहियाणं।**
**णाडय पुराण कम्मं सम्मं विणा दीह संसार।। 160।।**



**अर्थ :-** यदि कोई जीव प्रमाण, नय, निक्षेप, छंद, शब्दालंकार, अर्थलंकार, नाटक, पुराण आदि अच्छी तरह जानता हो तथा अन्य कितने ही कार्यों में निपुण हो विद्वान हो तथापि सम्यग्दर्शन के अभाव में वह जीव दीर्घ संसारी ही समझना चाहिए।

## ममकार के त्याग बिना मुक्ति नहीं

**वसदि पडिमोवयरणो गण गच्छे समयसंघ जाइकुले।**
**सिस्स पडिसिस्स छत्ते सुयजाते कप्पडे पुच्छे।। 161।।**
**पिच्छे संत्थरणे इच्छासु लोहेण कुणइ ममयारं।**
**यावच्च अट्टरुद्धं ताव ण मुंचेदि ण हु सोक्खं ।। 162।।**

**अर्थ :-** साधु त्यागी मुनि जनों को जहां पर गुफा, धर्मशाला, मंदिर आदि रुकने के स्थान वसतिका मिलते हैं अथवा रुकते हैं इनमें, प्रतिमा, उपकरणों में आसक्ति, बहुत साधुओं का समूह अर्थात् गण आचार्य की परंपरा आम्नाय में चलने वाले साधुजन को गच्छ कहते हैं। इनमें शास्त्र पुराण, संघ ऋषि यति अनगार और मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाओं का समूह संघ में जाति कुल में, शिष्य प्रतिशिष्य विद्यार्थी छात्र में, पुत्र पौत्रादि में संस्थर-चटाई पाटा घास फलालादि इनकी इच्छाओं में लोभ से आसक्ति पूर्वक, ममकार-मैं-मैं, मेरा-मेरा,अच्छा-अच्छा ऐसे ममत्व भाव को रखता है, जब तक इनमें आर्त रौद्र ध्यान परिणाम रहते हैं, प्रवृत्ति करता है इनको जब तक भाव से और बाह्य से नहीं छोड़ता है तब तक इस जीव का कर्म हल्का नहीं होता है, अगले कर्म भी बांधता रहता है। ऐसे जीव को सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती है। मोक्ष का रास्ता भी नहीं मिलता है।

किसी भी प्रकार से पर वस्तु में, कार्य आदि में इस जीव का मन, भाव लगा रहता है, वह परभाव ही है,आत्मकल्याण का, कर्म निर्जरा का कार्य नहीं है। इसे समझकर सब प्रकार का ममत्व, प्रेम,आस्था, संकल्प, विकल्प रूप भावों को परिणामों को तथा बाह्य समस्त पदार्थों को छोड़ना ही हितकर है सुखकर है आत्म हितेशी सच्चा साधु का धर्म है।

## रत्नत्रय युक्त निर्मल आत्मा समय है

**रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खमग्गस्स।**
**संघो गुणसंघाओ समयो खलु णिम्मलो अप्पा।। 163।।**

**भावार्थ :-** निश्चयनय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही गण है। रत्नत्रय सहित आत्मा मोक्षमार्ग में गमन करना ही गच्छ है। आत्मिक गुणों का समूह संघ है और अपना अनेक सुगुण वाला पवित्र आत्मा ही आगम है।

इसलिए आत्मा के गण गच्छ संघ और समय को निश्चय रूप जानकर श्रद्धान ज्ञान शुद्ध आचरण को धारण करना चाहिये । यही मोक्ष मार्ग का मार्ग, आत्मा का सुख और आत्म शुद्ध सिद्ध मोक्ष का पद है। साधु का सत्य कर्तव्य यही है।

## जिनलिंग मुक्ति का हेतु

**जिणलिंग धरो जोई विराय सम्मत्त संजुदो णाणी।**
**परमोवेक्खाइरियो सिवगइ पहणायगो होई।। 164।।**

**अर्थ :-** जिस आत्म उत्सुक भव्य ने मुनि दीक्षा अर्थात् जिनलिंग को धारण किया है, नग्न-निर्ग्रंथ दिगम्बर अवस्था को पाया है, जो आत्मज्ञान से परिपूर्ण है, परम वैराग्य युक्त है, जिसका सम्यग्दर्शन अत्यंत शुद्ध है और रागद्वेष से सर्वथा रहित है, बाह्य संसार विषय में उपेक्षा भाव है और वीतराग भावों में एक रूप है ऐसे आचार्य मुनि मोक्ष पथ के सच्चे नायक है, प्रधान है, अन्यथा नहीं।

## रयणसार ग्रंथ का महात्म्य

**सम्मं णाणं वेरग्ग तवो भावं णिरीहवित्ति चारित्तं।**
**गुण सील सहावं उप्पज्जइ रयणसारमिणं।। 165।।**

**अर्थ :-** रत्नत्रय का वर्णन जिसमें किया गया ऐसा यह रयणसार अथवा रत्नत्रयसार नाम का ग्रंथ सम्यग्दर्शन को प्राप्त कराता है। सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करता है तथा सम्यक्चारित्र को भी प्राप्त कराता है तथा वैराग्य को उत्पन्न करता और वैराग्य की वृद्धि करता है, शुद्ध तपश्चरण को बढ़ाता है, तथा सर्व प्रकार की इच्छाओं से रहित ऐसे वीतराग चारित्र में दृढ़ निश्चल रहता है। उत्तम क्षमा आदि गुणों की ओर भावनाओं की वृद्धि में तत्पर है। ऐसा साधु स्वयं रत्नत्रयसार रूप ग्रंथ



है अर्थात् साधु ही रत्नत्रय रूप ग्रंथ है।

शुरु करने के लिए ''शून्य आधारित सोच'' का प्रयोग करें। कल्पना करें कि आप अपनी जिंदगी की हर स्थिति की दोबारा नई शुरुआत कर सकते हैं। एक तरह से आप तस्वीर का फ्रेम थामकर अपने जीवन और संबंधों के अलग-अलग हिस्सों को देखते हुए यह सवाल पूछते है :''अगर मुझे अपने पुराने अनुभवों और समूचे संगृहीत ज्ञान के साथ आज यह निर्णय लेना हो, तो मैं क्या करूँगा ?''

अपने जवाबों के साथ समझौता करने से इंकार करें। खुद के साथ पूरी तरह ईमानदार रहें। हर क्षेत्र में अपनी आदर्श स्थिति को परिभाषित करें। उन तमाम कारणों को ख़ुद पर हावी न होने दें कि यह आपके लिए संभव क्यों नहीं है। सभी महान् उपलब्धियाँ आपके इस निर्णय से शुरु होती हैं कि आप दरअसल क्या चाहते हैं ? जाहिर है, इसके बाद आपको उसे हासिल करने के लिए पूरी तरह समर्पित होना होगा।

### सफलता के सात तत्व

आप जो भी चीज़ चाहते हों या जिस भी चीज़ को अपनी ख़ुशी के लिए महत्वपूर्ण मानते हों, उसे सात श्रेणियों में से किसी एक में रखा जा सकता है। सफलता के ये सात तत्त्व सफलता और ख़ुशी के बारे में लिखी व खोजी गई हर चीज के तालमेल में है। ये तत्व सभी सफल स्त्री-पुरुषों के जीवन और उपलब्धियों में नजर आते हैं। इनमें वह हर चीज़ शामिल है, जिसे आप चाह सकते हैं।

आपका आदर्श जीवन इन सात श्रेणियों का मिश्रण है। आप इनका ऐसा तालमेल बैठा लें, जो आपको इस पल सबसे ज़्यादा सुखद लगता हो। इन सात श्रेणियों में से एक या ज़्यादा के संदर्भ में अपनी सफलता और ख़ुशी की परिभाषा तय कर लें। इससे आप एक स्पष्ट लक्ष्य बना लेते हैं, जिस पर आप निशाना साधेंगे। इसके बाद आप यह मूल्यांकन कर सकते हैं कि आप कितना अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं। तब आपको यह पता चल जाएगा कि अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए आपको किन क्षेत्रों में बदलाव लाने की ज़रुरत है।

आपको अपने आदर्श भविष्य के सपने से शुरु करना होगा। अपनी

आंतरिक शक्तियों का दोहन करने के लिए शुरुआत में आप नज़रें उठाकर अपने जीवन को ठीक उसी तरह ''देखें,'' जैसा आप इसे बनाना चाहते हैं- हर दृष्टि से आदर्श। आपका पहला काम ब्लूप्रिंट बनाना है। आपको एक स्पष्ट तस्वीर बनानी होगी कि आप कहाँ पहुँचना चाहते हैं और वहाँ पहुँचने के बाद आपका जीवन कैसा दिखेगा। यह तस्वीर एक संगठक सिद्धांत, मार्गदर्शक और मूल्यांकन का आधार बन जाएगी। तब आप इसके आधार पर हर उस काम की तुलना और मूल्यांकन कर सकते हैं, जो आप इसे साकार करने के लिए करते हैं।

## मानसिक शांति

सफलता की सात श्रेणियों में पहली और सबसे महत्वपूर्ण है : मानसिक शांति। यह सर्वोच्च मानवीय हित है। इसके बिना बाक़ी किसी चीज़ का ज़्यादा महत्त्व नहीं है। यही वजह है कि आप जिंदगी भर इसकी कामना करते हैं। आपमें आंतरिक शांति कितनी है, उसी से आम तौर पर आप यह मूल्यांकन करते हैं कि आप जीवन में कैसा प्रदर्शन कर रहे हैं।

मानसिक शांति आपका आंतरिक दिशासूचक (Compass) है। जब आप अपने सर्वोच्च जीवन मूल्यों और विश्वासों के अनुरूप जीते हैं - जब आप जीवन में आदर्श संतुलन की अवस्था में होते हैं तब आप मानसिक शांति का आनन्द लेते हैं। लेकिन अगर किसी कारण आप अपने जीवनमूल्यों के साथ समझोता करते हैं या अपने आंतरिक मार्गदर्शन के खिलाफ जाते हैं, तो आपकी मानसिक शांति नष्ट हो जाती है।

मानसिक शांति या सुव्यवस्था सभी मानवीय समूहों के सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए अनिवार्य हैं। इसमें आपके मित्रों तथा परिवारजनों के साथ आपके संबंध शामिल हैं और वे कम्पनियाँ और संगठन भी, जहाँ आप काम करते हैं। सद्भावपूर्ण संबंधों से समूचा मानव व्यवहार समृद्ध होता है। सारा शिष्टाचार, नैतिक सिद्धांत और कूटनीति हर व्यक्ति की इसी इच्छा पर आधारित है कि वह अपनी मानसिक शांति सुनिश्चित करने के लिए दूसरों की मानसिक शांति भंग न करे। कंपनियों में मानसिक शांति को सहकर्मियों की आपसी सद्भावना के संदर्भ में नापा जा सकता है। उत्पादक और सफल कंपनियाँ वे होती है, जिनके कर्मचारी



ख़ुद के बारे में अच्छा महसूस करते हैं। वे कार्यस्थल में सुरक्षित और ख़ुश महसूस करते हैं। हो सकता है कि वे बहुत व्यस्त हों और तुफ़ानी गतिविधियों में जुटे हों, लेकिन भीतर से वे शांत रहते हैं।

मानसिक शांति के बारे में अद्भुत सच्चाई यह है कि यह आपकी सहज नैसर्गिक अवस्था है। ख़ुशी आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह आपकी संपत्ति है। यह कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जिसका अनुभव आपको कभी-कभार ही हो। मानसिक शांति आपके अस्तित्व का केंद्र है। यह हर चीज़ का आनन्द लेने की मूलभूत शर्त है।

आंतरिक शांति हासिल करना आपके जीवन का बुनियादी सिद्धांत होना चाहिए। यह आपका सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए और बाकी सारे लक्ष्य इसके अधीन होने चाहिए। सच तो यह है कि आप इंसान के रूप में उसी हद तक सफल हैं, जिस हद तक आप अपनी खुशी, संतुष्टि, अच्छेपन के एहसास - संक्षेप में, मानसिक शांति को हासिल कर सकते हैं।

जब मैंने ख़ुशी पाने का निश्चित लक्ष्य बनाया, तो इसकी वजह से पहले पहले मेरे जीवन में काफ़ी दुविधा और तनाव पैदा हुआ। मेरी धार्मिक पृष्ठभूमि ने मुझमें यह विचार कूट-कूट कर भर दिया था कि व्यक्तिगत ख़ुशी सार्थक लक्ष्य नहीं हैं, इसलिए यह मेरे चुनावों और व्यवहार का वैध कारण भी नहीं है।

मुझे बताया गया था कि व्यक्तिगत ख़ुशी तो दूसरों को ख़ुशी देने से मिलती है। अगर मुझे कोई ख़ुशी मिलती है तो मैं बस ख़ुशकिस्मत हूँ। और अगर मुझे ख़ुशी नहीं मिलती, तो यह मेरी बदक़िस्मती है। मुझे बताया गया कि ख़ुशी का निश्चित लक्ष्य बनाने का विचार स्वार्थपूर्ण है और दूसरों की परवाह न करने वाला नज़रिया है।

मेरे जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ तब आया, जब मैंने दो चीज़ें सीखीं। पहली यह कि अगर मैं अपने लिए ख़ुशी हासिल करने का संकल्प नहीं करूँगा, तो कोई दूसरा भी यह कष्ट नहीं करेगा। अगर जीवन में मेरा लक्ष्य दूसरों को ही खुशी देना है, तौ मैं हमेशा दूसरों की भावनाओं के रहमो-करम पर रहूँगा। और मैंने यह भी पाया कि अपने जीवन को दूसरों की ख़ुशी पर केंद्रित करने की कोशिश कुंठा और निराशा के अंतहीन अभ्यास के सिवा कुछ नहीं है, क्योंकि यह संभव ही नहीं है।

दूसरी बात, मुझे यह पता चली कि मैं वह चीज़ नहीं दे सकता, जो मेरे पास न हो। अगर मैं ख़ुद दुखी हूँ, तो किसी दूसरे को कभी सुख नहीं दे सकता। जैसा अब्राहम लिंकन ने एक बार कहा था, ''आप खुद ग़रीब बनकर गरीबों की मदद नहीं कर सकते।'' मैंने पाया कि मैं दूसरों को तब तक खुशी नहीं दे सकता, जब तक कि पहले मैं खुद ख़ुश न बन जाऊँ।

मानसिक शांति हर सफलता के लिए इतनी महत्वपूर्ण है कि इसका कठोर विश्लेषण करना जरुरी है। यह कहाँ से आती है ? यह आपको किन परिस्थितियों में हासिल होती है ? आप इसे ज़्यादा कैसे पा सकते हैं ?

सरल शब्दों में कहें, तो आपको ख़ुशी और मानसिक शांति का एहसास तब होता है, जब आप डर, क्रोध, शंका, अपराधबोध, द्वेष और चिंता की विनाशकारी भावनाओं से पूरी तरह मुक्त होते हैं नकारात्मक भावनाओं के न रहने पर आप स्वाभाविक रूप से, बिना किसी कोशिश के मानसिक शांति का आनंद लेते हैं। ख़ुशी की कुंजी यह है कि जीवन में नकारात्मकता या तनाव पैदा करने वाले हिस्सों को योजनाबद्ध तरीक़े से ख़त्म या कम कर लिया जाए।

जब कई साल पहले यह विचार मेरे मन में आया, तो मैं भौंचक्का रह गया। कल्पना करें। सुखी, उपयोगी जीवन जीने का तरीक़ा सरल है! इसके लिए तो मुझे बस मानसिक शांति हासिल करनी है। और यह तब मिलेगी, जब मैं खुद को दुःखी करने वाले नकारात्मक लोगों, स्थितियों और भावनाओं को सुनियोजित तरीक़े से ख़त्म कर दूँ।

वाह! तो क्या जीवन में खुशी पाना इतना आसान है ? यहीं पर पेच है। आपकी ख़ुशी में ख़लल वाली नकारात्मकता को ख़त्म करने की राह में सबसे बड़ी बाधा यह है कि आपको नकारात्मक लोगों और स्थितियों से लगाव होता है। आपका तार्किक मस्तिष्क बहुत से चतुराई भरे कारण सोच लेता है कि आपको अपनी वर्तमान स्थिति में ही क्यों रहना चाहिए। आपके हित में काम करने के बजाय समस्याओं का समाधान सुझाने के बजाय आपका अद्भुत मस्तिष्क आपके ख़िलाफ़ काम करता है और आपको उसी दलदल में रोककर रखने के लिए मेहनत करता है।



इस पुस्तक में बाद में मैं आपको ऐसे बहुत से तरीक़े बताऊँगा, जिनका प्रयोग करके आप अपनी नकारात्मक भावनाओं को नियंत्रित और अंततः ख़त्म कर सकते हैं। मैं आपको ऐसी सशक्त तकनीकें सिखाऊँगा, जिनका इस्तेमाल करके आप चंद पलों में ही क्रोध और चिंता से मुक्ति पा सकते हैं। मैं आपको बताऊँगा कि आप अपनी भावनाओं को पूरी तरह नियंत्रित कैसे कर सकते है और ज़्यादातर समय उन्हें सकारात्मक कैसे रख सकते हैं।

बहरहाल, इस पल आपका काम ''पर्वतशिखर सोच'' (mountaintop thinking) का अभ्यास करना है। अपने विचारों का रुख भविष्य की तरफ़ करें और अपने आदर्श जीवन की कल्पना करें। तत्वों का कौन सा मिश्रण आपको पूर्णतः सुखी बनाएगा ? इस पल यह चिंता न करें कि आपके लिए क्या संभव है और क्या नहीं है। अपने मस्तिष्क को सीमाओं से मुक्त कर दें और पूरी तरह स्वार्थी बन जाएँ। ठीक-ठीक परिभाषित करें कि अपनी मनचाही मानसिक शांति का आनंद लेने के लिए आपका जीवन कैसा होना चाहिए।

आप क्या करेंगे ? आप कहाँ रहेंगे ? आपके साथ कौन रहेगा ? आप अपना समय कैसे बिताएँगे, दिन-रात? याद रखें, आप उस लक्ष्य पर निशाना नहीं लगा सकते, जिसे आप देख न सकते हों। लेकिन अगर आप स्पष्टता से किसी चीज़ की कल्पना कर सकते हैं,तो इस बात की काफ़ी संभावना है कि आप उसे हासिल भी कर सकते हैं।

अगर आप बिज़नेस में हैं, तो यह आदर्श कल्पना करें कि आपका काम हर संदर्भ में पूरी तरह उत्कृष्ट होने पर कैसा दिखेगा। अपने कार्यस्थल के परिवेश में सद्भाव और सहयोग के ज़्यादा ऊँचे स्तर हासिल करने के लिए आप कौन सी चीज़े ज़्यादा या कम करेंगे ?

अगर आप और आपके प्रियजन पूर्ण शांति और सुख की अवस्था में रहें तो आपका पारिवारिक जीवन कैसा दिखेगा ? दूसरों और ख़ुद को ख़ुश रखने के लिए आप क्या-क्या करेंगे ?

जब आप मानसिक शांति को लक्ष्य बना लेते हैं और अपने हर काम के बारे में इस संदर्भ में सोचते हैं कि यह उस लक्ष्य की प्राप्ति में मदद करता है या

बाधा डालता है, तब शायद आपसे कभी ग़लती नहीं होगी। आप हमेशा सही करेंगे और कहेंगे। आप ज़्यादा ऊँचे सिद्धांतों के हिसाब से काम करेंगे। आप ख़ुद के बारे में अद्भुत महसूस करेंगे। मानसिक शांति ही कुंजी है।

### शुद्ध-धर्म/(स्व-धर्म) का स्वरूप व फल

## शुद्ध-बुद्ध-आनन्द( आध्यात्मिक शान्ति)

### (सुधर्मी व कुधर्मी के स्वरूप व फल)

**- आचार्य कनकनन्दी**

**(चालः तुम दिल की... छोटी-छोटी गैया...)**

**शुद्ध-बुद्ध-आनन्द में से, शुद्ध-बुद्ध से आनन्द महान्।**
**आनन्द हेतु ही शुद्ध-बुद्ध है, शुद्ध-बुद्ध बिन न आनन्द।। (1)**
**धर्म-अधर्म व आकाश-काल, तथाहि परमाणु तक होते हैं शुद्ध।**
**किन्तु बुद्धत्व के अभाव होने से, पाँचों शुद्ध द्रव्य में नहीं आनन्द। (2)**

**आनन्द है जीवों का परम लक्ष्य, क्योंकि आनन्द है जीवों का स्वभाव।**
**किन्तु अशुद्ध व कुज्ञान के कारण, जीव न पाते आध्यात्मिक आनन्द। (3)**

**राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद, तथाहि ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि अशुद्ध।**
**इससे जीव होते हैं अशुद्ध बुद्ध, इससे जीवन पाते हैं ज्ञानानन्द।। (4)**

**अशुद्ध जीव ही चाहते ख्याति-पूजा-लाभ, वर्चस्व से ले करते वाद-विवाद।**
**परनिन्दा-अपमान, वैर-विरोध, संकल्प-विकल्प द्वन्द्व-विध्वंस।। (5)**

**चक्रवर्ती भी ज्ञानानन्द हेतु ही, त्याग करते है सांसारिक वैभव।**
**ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग से, शुद्ध बनकर पाते बुद्धत्व आनन्द।। (6)**

**यह अवस्था ही परमात्म अवस्था, यह अवस्था ही सच्चिदानन्दावस्था।**
**यह अवस्था ही सत्य-शिव-सुन्दर, यह ही शुद्ध-बुद्ध-आनन्दावस्था (7)**

**सहजानन्द या नित्यानन्द स्वरूप, परमानन्द या सदानन्द स्वरूप।**
**अनन्त सुख स्वरूप या निजानन्द, अनन्त आत्मोत्थ बोधानन्द।। (8)**



**इसे प्राप्त करने हेतु ही सकल धर्म, कहा है ''धर्मः सर्वसुखाकरो''।**
**धर्म स्वरूप या धर्म का फल ही, अभ्युदय से ले निःश्रेयस सुख।। (9)**

**जिससे न आध्यात्मिक सुख मिले, वह धर्म भी होता कुधर्म।**
**स्व-पर दुःखकारी समस्त धर्म-कर्म, स्व-धर्म या सुधर्म नहीं है अधर्म/विधर्म (10)**
**केवल ढोंग-पाखण्ड या दिखावा नहीं होता है आध्यात्मिक धर्म।**
**केवल बाह्य तप-त्याग-ज्ञान, शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बिन मिथ्या धर्म।। (11)**

**ऐसा धर्म जो पालन करते, वे होते हैं रागी-द्वेषी व मोही।**
**कामी या स्वार्थी-अन्धविश्वासी, भेड़-भेड़ियाचाल वाले कुज्ञानी।। (12)**

**ऐसे ही कुधर्मी होते हैं अधिक, भले नाम रूप हो पृथक्-पृथक्।**
**धार्मिक होते (पाते) हैं शुद्ध-बुद्ध आनन्द, इस हेतु ही 'कनक' साधना रत (13)**

नन्दौड़ 10.08.2018 अपराह्न
(यह कविता ''ब्रायन ट्रेसी'' की कृति ''अधिकतम सफलता'' से भी प्रेरित है। )

**पापाद् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।**
**तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम्।। (8) आत्मानुशासन**

पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात सब जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है- इसे सब ही जानते हैं। इसलिये जो भव्य प्राणी सुख की अभिलाषा करता है उसे पाप को छोड़कर निरन्तर धर्म का आचरण करना चाहिये।

**यदि पापनिरोधोऽन्य सम्पदा किं प्रयोजनं।**
**अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्य, सम्पदा किं प्रयोजनं। (27)** रत्नकरण्ड श्रा.

यदि पाप का निरोध है तो दूसरी सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ? और यदि पाप का आस्रव है तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है ?

## शुद्धोपयोग का फल अक्षय अनंत सुख

**अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।**
**अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं।। (13) प्र. सार**

The happiness of those who are famous for thier pure

consciousness or serenity is transcendental, born from the self, supersensous, incomparable, infinite and indestructible.

आगे आचार्य शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों को निश्चय नय से त्यागने योग्य जान करके शुद्धोपयोग के अधिकार को प्रारम्भ करते हुए तथा शुद्ध आत्मा की भावना को स्वीकार करते हुए अपने स्वभाव में रहने के इच्छुक जीव का उत्साह बढ़ाने के लिये शुद्धोपयोग का फल प्रकाश करते हैं अथवा दूसरी पातनिका या सूचना यह है कि यद्यपि अग्र में आचार्य शुद्धोपयोग का फल ज्ञान और सुख संक्षेप या विस्तार से कहेंगे तथापि यहां भी इस पीठिका में सूचित करते हैं अथवा तीसरी पातनिका यह है कि पहले शुद्धोपयोग का फल निर्वाण बताये थे अब यहां निर्वाण का फल अनंत सुख होता है ऐसा कहते हैं। इस तरह तीन पातनिकाओं के भाव को मन में धरकर आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं।

(शुद्धवओगप्प सिद्धाणं) शुद्धोपयोग में प्रसिद्धों को अर्थात् वीतराग परम सामायिक शब्द से कहने योग्य शुद्धोपयोग के द्वारा जो अरहंत और सिद्ध हो गए हैं उन परमात्माओं को (अइसयं) अतिशयरूप अर्थात् अनादि काल के संसार में चले आए इन्द्रियों के सुखों से भी अपूर्व अद्भुत परम आल्हाद रूप होने से आश्चर्यकारी,(आदसमुत्थ) आत्मा से उत्पन्न अर्थात् रागद्वेषादि विकल्प रहित अपने शुद्धात्मा के अनुभव से पैदा होने वाला, (विसयातीद) विषयों से शून्य अर्थात् इन्द्रिय विषय रहित परमात्मतत्व के विरोधी पांच इन्द्रियों से रहित (अणोवमं) उपमा-सहित अर्थात् दृष्टांत रहित परमानन्दमय एक लक्षण को रखने वाला, (अणंतं) अनंत अर्थात् अनन्त भविष्यत काल में विनाश रहित अथवा अप्रमाण (तथा) (अव्वुछिण्णं) विच्छिन्नरहित अर्थात् असाता का उदय न होने से निरन्तर रहने वाला (सुहं) आनन्द रहता है। यही सुख उपादेय है, इसी की निरन्तर भावना करनी योग्य है।

**समीक्षा** - अशुभोपयोग से पाप का बंध तो शुभोपयोग से पुण्य का बंध होता है परन्तु आध्यात्म दृष्टि से दोनों बंध स्वरूप है और बंध संसार का कारण है। इसलिए शुभ, अशुभ भाव से रहित आत्मा का जो स्वस्वरूप है उसी रूप जब जीव परिणमन करता है तब सम्पूर्ण शुभ, अशुभ बंधन को तोड़कर जीव परम स्वातंत्र्य मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वमी ने कहा भी है -



**तत्राप्यद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।**
**शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम्।। (240)**

पूर्व श्लोक में जिन तीन को शुभ, पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख से दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ को छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अन्त में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

**यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।**
**स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्रव।। (246)**

जिस वीतराग के पुण्य और पाप दोनों फलदान के बिना स्वयं अविपाक निर्जरा स्वरूप से निर्जीण होते हैं वह योगी कहा जाता है और उसके कर्मों का मोक्ष होता हैं, किन्तु आस्रव नहीं होता है।

**धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।**
**उत्तमु पभणहिं णाणि जिय अण्णें जेण ण सोक्खु।।** परमात्म प्रकाश

हे जीव! धर्म, अर्थ और काम, मोक्ष इन सब पुरुषार्थों में से मोक्ष को उत्तम, ज्ञानी पुरुष कहते हैं, क्योंकि अन्य धर्म, अर्थ कामादि पदार्थों में परम सुख नहीं है।

**जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहँ सयलहं सोइ।**
**तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहिं पर-लोइ।। (4)**

हे जीव! जो इन सबों से मोक्ष उत्तम ही नहीं होता तो श्री जिनवर देव धर्म अर्थ काम इन तीनों को छोड़कर मोक्ष में क्यों जाते ? इसलिए जाते हैं कि मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है।

**उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।**
**तो किं इच्छहिं बंधणहिं बद्धा पसुय वि सोई।। (5)**

जो मोक्ष उत्तम सुख को न देवे तो उत्तम नहीं होवे और जो मोक्ष उत्तम ही नहीं होवे तो बंधनों से बंधे पशु भी उस मोक्ष की ही इच्छा क्यों करे ?

जो उत्तम अविनाशी सुख को नहीं देवे तो मोक्ष उत्तम भी नहीं हो सकता, उत्तम सुख देता है, इसलिए मोक्ष सबसे उत्तम है। जो मोक्ष में परमानंद नहीं होता तो हे जीव सिद्ध परमेष्ठी भी सदा काल उसी मोक्ष को क्यों सेवन करते ? कभी भी न सेवते।

तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है, एक सुख का कारण मोक्ष ही है इस कारण तू नियम से एक मोक्ष ही चिंतवन कर जिसे कि महामुनि भी चिंतवन करते है।

**हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर-विंद वि भव्व।**
**परम-णिरंजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिं सव्व।। (8)**

नारायण वा इन्द्र, रुद्र अन्य ज्ञानी पुरुष श्री तीर्थंकर परमदेव मुनीश्वरों के समुह तथा अन्य भी भव्य जीव परम निरंजन में मन रखकर सब ही मोक्ष को ही ध्यावते हैं। यह मन विषय कषायों में जो जाता है, उसको पीछे लौटाकर अपने स्वस्वरूप में स्थिर अर्थात् निर्वाण को साधने वाले होते हैं ।

**दंसणु णाणु अणंत-सुहु समउ ण तुट्टइ जासु।**
**सो पर सासउ-मोक्ख-फल विज्जउ अत्थि ण तासु।। (11)**

जिस मोक्ष पर्याय के धारक शुद्धात्मा के केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत-सुख और अनंतवीर्य इन अनंतचतुष्टयों को आदि लेकर अनंत गुणों का समूह एक समयमात्र भी नाश नहीं होता अर्थात् हमेशा अनंत गुण पाये जाते हैं उस शुद्धात्मा के वही निश्चिय से हमेशा रहने वाला मोक्ष का फल है, इसके सिवाय मोक्ष फल नहीं है और इससे अधिक श्रेष्ठ पद दूसरी वस्तु कोई नहीं है।

**भाउ-विसुद्धउ अप्पणउ धम्मु भणेविणु लेहु।**
**चउ-गइ दुक्खहँ जो धरइ जीउ पंडतउ एहु।। (68)**

मिथ्यात्व रागादि से रहित शुद्ध-परिणाम है, वही अपना है और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं, सो शुद्ध भाव को ही धर्म समझकर अंगीकार करो। जो आत्म धर्म चारो गतियों के दुःखों से संसार में पड़े हुए जीव को निकालकर आनन्द स्थानों में रखता है।

वेदव्यास ने नारायण श्री कृष्ण के मुखारविन्द से इस तथ्य का प्रतिफल निम्न प्रकार किया है।

**निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।**
**द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदः संज्ञैगच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।। (5)**

जिसने मान-मोह का त्याग किया है, जिसने आसक्ति से होने वाले दोषों को



दूर किया है, जो आत्मा में नित्य निमग्न है, जिसके विषय शांत हो गये हैं, जो सुख दुःखरूपी द्वंद्वों से मुक्त है, वह ज्ञानी अविनाशी पद को पाता है।

## शुद्धोपयोगी का स्वरूप

**सुवदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।**
**समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति।। (14)**

आगे जिस शुद्धोपयोग के द्वारा पहले कहा हुआ आनन्द प्रगट होता है उस शुद्धोपयोग में परिणमन करने वाले पुरुष का लक्षण प्रगट करते हैं -

(सुविदिदपदत्थसुत्तो) भले प्रकार पदार्थ और सूत्रों को जानने वाला, अर्थात् संशय, विमोह, विभ्रम रहित होकर जिसने अपने शुद्धात्मा आदि पदार्थों को तथा उनके बताने वाले सूत्रों को जाना है और उनकी रुचि प्राप्त की है, (संजमतवसंजुदो) संयम और तप-संयुक्त है अर्थात् जो बाह्य में द्रव्येन्द्रियों से उपयोग हटाते हुए और पृथ्वी आदि छह कायों की रक्षा करते हुए तथा अंतरंग में अपने शुद्ध आत्मा के अनुभव के बल से अपने स्वरूप में संयम रूप ठहरे हुए हैं तथा बाह्य व अंतरंग बारह प्रकार तप के बल से काम, क्रोध आदि शत्रुओं से जिसका प्रताप खंड़ित नहीं होता है और जो अपने शुद्ध आत्मा में तप रहे हैं। जो (विगदरागो) वीतराग है अर्थात् शुद्ध आत्मा की भावना के बल से सर्व रागादि दोषों से रहित है (समसुहदुक्खो) सुख-दुःख में समान हैं अर्थात् विकार रहित और विकल्प रहित समाधि से उत्पन्न तथा परमानन्द सुखरस में लवलीन ऐसा निर्विकार स्वसंवेदन रूप जो परम चतुराई उसमें स्थिरभूत होकर इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों में हर्ष-विषाद को त्याग देने से समता भाव के धारी हैं ऐसे गुणों को रखने वाला (समणो) परममुनि (सुद्धोपओगो) शुद्धोपयोग स्वरूप (भणिओ) कहा गया है (त्ति) ऐसा अभिप्राय है।

**समीक्षा** - 13 नम्बर सूत्र में कुन्दकुन्दस्वामी ने शुद्धोपयोग का जो फल आत्मबोध, अतिशय, अक्षय सुख बताया है उस सुख को प्राप्त करने का माध्यम जो शुद्धोपयोग है उसका वर्णन इस गाथा में किया गया है शुद्ध जीव का जो शुद्ध स्वरूप रागद्वेष से रहित है उसको ही शुद्धोपयोग कहते हैं। जैसे अशुद्ध स्वर्ण से जो अलंकार बनाया जाता है वह अलंकार अशुद्ध रहता हैं किंचित शुद्ध स्वर्ण से

जो अलंकार बनाया जाता है, वह किंचित शुद्ध रहता है, पूर्ण शुद्ध सुवर्ण से जो अलंकार बनाया जाता है वह पूर्ण शुद्ध रहता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व सहित जीव को जो उपयोग होता है वह विशेषता अशुभ होता है, सम्यग्दर्शन सहित धर्मानुराग रूप जो उपयोग होता है वह शुभोपयोग होता है और रागद्वेष से रहित निर्मल आत्मा का उपयोग शुद्धोपयोग होता है। शुद्धोपयोग का प्रारम्भ श्रेणी आरोहण करने वाले मुनि को सातिशय सप्तम गुणस्थान से होता है और यह शुद्धोपयोग उत्तरोत्तर शनेःशनेः बढ़ता हुआ बारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है। इसके आगे यह शुद्धोपयोग 13-14 वें गुणस्थान में भी रहता है और सिद्ध अवस्था में भी रहता है। शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बारे में वर्णन करते हुए देवसेन आचार्य ने भी कहा है -

**सेवो सुद्धो भावो तस्सुवलंभोय होइ गुणठाणे।**
**पणदहपमादरहिए सयलवि चारित्तजुत्तस्स।। (6)** भाव सं.

इन तीनों प्रकार के भावों में शुद्ध भाव ही सेव्य है, धारण योग्य है तथा उस शुद्ध भाव की प्राप्ति सकल चारित्र को धारण करने वाले महामुनियों के पन्द्रह प्रमादों से रहित ऐसे सातवें अप्रमत गुणस्थान में होती है।

परमात्मा प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है -

**बिण्णि वि दोस हवंति तसु जो सम-भाउ करेइ।**
**बंधु जि णिहणइ अप्पणउ अणु जगु गहिलु करेइ।। (44)**

जो साधु राग द्वेष के त्याग रूप समभाव को करता है, उसे तपोधन के दो दोष होते हैं। एक तो अपने बंध को नष्ट करता है, दूसरे जगत् के प्राणियों को बावला-पागल बना देता है।

**अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो सम-भाउ करेइ।**
**वियुल हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।। (45)**

जो समभाव को करता है, उस तपोधन के दूसरा भी दोष है। क्योंकि पर (परमात्मा) के अधीन होता है, और अपने अधीन भी शुत्रु (मोहिदि) को छोड़ देता है।

**अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो समभाउ करेइ।**
**वियलु हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।। (46)**



जो तपस्वी महामुनि समभाव को करता है, उसके दूसरा भी दोष होता है, जो कि शरीर रहित हो के अथवा बुद्धि धन वगैरह से भ्रष्ट होकर अकेला लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर चढ़ता है।

**जा णिसि सयलहँ देहियहँ जोग्गिउ तहिं जग्गेइ।**
**जहिं पुणु जग्गइ सयलु जगुसा णिसि मणिवि सुवेइ।।**

जो सब संसारी जीवों की रात है, उस रात में परम तपस्वी जागता है और जिसमें सब संसारी जीव जाग रहे हैं, उस दशा को योगी रात मानकर योगनिद्रा में सोता है।

**भणइ भणावह णवि थुणई णिंदह णाणि ण कोई ।**
**सिद्धिहिं कारणु भाउ समु जाणँतउ पर सोइ।। (48)**

निर्विकल्प ध्यानी पुरुष न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है, न गुरु होकर किसी को पढ़ाता है, न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निंदा करता हे, मोक्ष का कारण एक समभाव को निश्चय से जानता हुआ केवल आत्म स्वरूप में अचल हो रहा है अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता।

## शुद्धोपयोगी का फल-अनन्त ज्ञान

**उवओगविसुद्धो जो विगदावरणांतरायमोहरओ।**
**भूदो सयमेवादा जादि पारं णेयभूदाणं।। (15)**

He who has manifested pure consciousness and is free from(knowledge-and conation) obscuring, obstructive and deluding karmic dust, has become self-sufficient; and fully comprehends the objcts of knowledge.

आगे अब यह कहते हैं कि शुद्धोपयोग के लाभ होने के पीछे केवल ज्ञान होता है अथवा दूसरी पातनिका यह है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव संबोधन करते है कि, हे शिव कुमार महाराज। कोई भी निकट भव्य जीव जिसकी रुचि संक्षेप में जानने की है पीठिका के व्याख्यान को ही सुनकर आत्म-कार्य-करने लगता है। दूसरा कोई जीव जिसकी रुचि विस्तार से जानने की है इस बात को विचार करके कि शुद्धोपयोग के द्वारा सर्वज्ञपना होता है और तब अनंतसुख आदि प्रगट होते हैं

फिर अपने आत्मा का उद्धार करता है, इसलिए अब विस्तार से व्याख्यान करते है -

(जो उवओगविसुद्धो) जो उपयोग करके विशुद्ध है अर्थात् जो शुद्धोपयोग परिणामों में रहता हुआ शुद्ध भावधारी हो जाता है सो (आदा) आत्मा (सयमेव) स्वयं अपने आप ही अपने पुरुषार्थ से (विगदावरणांतराय-मोह-रओ-भूदो) आवरण, अंतराय और मोह की रज से छूटकर अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण अंतराय तथा मोहनीय इन चार घातिया कर्मों के बंधनों से बिल्कुल अलग होकर (णेयभूदाणं) ज्ञेय पदार्थों के (पारं) अंत को (जादि) प्राप्त होता है अर्थात् सर्व पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है।

इसका विस्तार यह है कि जो कोई मोह-रहित शुद्ध आत्मा के अनुभव-लक्षणमय शुद्धोपयोग से अथवा आगम भाषा के द्वारा पृथक्त्ववितर्कविचार नाम के पहले शुक्लध्यान से पहले सब मोह को नाशकर के फिर पीछे रागादि विकल्पों की उपाधि से शून्य स्वसंवेदन लक्षणमय एकत्ववितर्क अवीचार नामक दूसरे शुक्लध्यान के द्वारा क्षीणकषाय गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त ठहरकर उसी गुणस्थान के अंत समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ नाश करता है, वह तीन जगत् तीन काल की समस्त वस्तुओं के भीतर रहे हुए अनन्त स्वभावों को एक साथ प्रकाशने वाले केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि शुद्धोपयोग से सर्वज्ञ हो जाता है।

**समीक्षा** - प्रत्येक जीव द्रव्यदृष्टि से शक्तितः अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यादि अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है। जैसे आकाश में सूर्य होते हुए भी घने बादल के कारण सूर्य-रश्मि धरती पर नहीं पहुँचती है उसी प्रकार ज्ञावरणादि कर्मों रूपी बादल से आवृत्त होने के कारण अनंतज्ञानादि गुण छिप जाते हैं तथापि वे पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होते है। जैसे-बादल विलीन होने पर सूर्य की किरण धरती पर पहुँचती है वैसे ज्ञानावरण कर्म क्षय होने पर अनंतज्ञानादि प्रगट हो जाते हैं। जैसे-दर्पण के ऊपर घन धूलि के आवृत होने पर उस दर्पण की स्वच्छता आवृत्त हो जाती है एवं प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई नहीं देता उसी प्रकार ज्ञान रूपी दर्पण के ऊपर ज्ञानावरणादि कर्म रूपी धूली के आवृत्त होने पर ज्ञान की स्वच्छता प्रगट नहीं होती है। जिससे उस ज्ञान रूपी दर्पण में ज्ञेयों के प्रतिबिम्ब स्पष्ट



प्रतिभासित नहीं होते हैं परन्तु जैसे धूली को पूर्ण रूप से हटाकर दर्पण को स्वच्छ कर दिया जाता है तब उस स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिम्ब स्वच्छ प्रतिभासित होता है उसी प्रकार जब ज्ञानावरणादि रूप धूली पूर्णरूप से निवृत्त हो जाती है जिससे ज्ञानरूपी दर्पण स्वच्छ हो जाता है- जिसके कारण समस्त लोक-अलोक रूपी ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं। केवलज्ञानोत्पति का कारण बताते हुए आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है -

**मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्। (1)**

मोह का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है।

**तज्जयति परं ज्योति समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।**
**दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।। (1) पुं.सि.**

जिससे सम्पूर्ण अनंतपर्यायों से सहित समस्त पदार्थों की माला अर्थात् समूह दर्पण के तल भाग के समान झलकती है, वह उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवल ज्ञानरूपी प्रकाश जयवंत हो।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में मोहक्षय की प्रक्रिया एवं केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है -

**णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो।**
**खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं।। (62)**

जिस निर्ग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीणकषाय नाम का बाहरवें गुणस्थानवर्ती कहा है।

जिस छद्मस्थ की वीतरागता के विरोध मोहनीयकर्म के द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकारों का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों भेदों का सर्वथाबंध, उदय, उदीरणा एवं सत्त्व की अपेक्षा क्षय हो जाता है वह बारहवें गुणस्थान वाला माना जाता है इसलिए आगम में इसका नाम क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ ऐसा बताया है। यहाँ 'छद्मस्थ' शब्द अन्त्य दीपक है और 'वीतराग' शब्द नाम, स्थापना और द्रव्यरूप वीतराग की निवृत्ति के लिए है। तथा यहां पर पांच भावों में से मोहनीय के सर्वथा अभाव की अपेक्षा से एक क्षायिक भाव ही माना गया है।

**तेहरवें गुणस्थान-**

**केवलणाणदिवायरकिरण-कलावप्पणासियण्णाणो।**
**णवकेवलद्धग्गम सुजणियपरमप्पववएसो।। (63)**
**असहायणाण दंसण सहिओ इदि केवलि हु जोगेण।**
**जुत्तोति सजोगिजिणो, अणाइणिहणारिसेउत्तो।। (64)**

जिसका केवल ज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग,वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रिय, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञानदर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग युक्त रहने के कारण संयोग, तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण 'जिन कहा जाता है ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा हैं।

बारहवें गुणस्थान का विनाश होते ही जिसके तीन घाति कर्म और अघाति कर्मों की 16 प्रकृति, इस तरह कुल मिलाकर 63 कर्म प्रकृतियों के नष्ट होने से अनन्तचतुष्टय अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य तथा नव केवललब्धि प्रकट हो चुकी है किन्तु साथ ही जो योग से भी युक्त है, उस अरिहन्त परमात्मा को तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

**केवलणाणं साई अपज्जवसियं ति दाइयं सुत्ते।**
**तेत्तियमित्तोत्तूणा केइ विसेसं ण इच्छंति।। (34) स.सू.**

केललज्ञान सादि अविनश्वर है यह सूत्र में दर्शाया गया है, इतने मात्र से कुछ विशेष को नहीं मानते हैं।

**जे संघयणाईया भवत्थकेवलि विसेसपज्जाया।**
**ते सिज्झमाणसमये ण होंति विगयं तओ होइ।। (35)**

जो तेरहवें गुणस्थानवर्ती भवस्थ केवली वज्रवृषभनाराचसंहनन, केवलदर्शन केवलज्ञान आदि से सम्पन्न है, जिनके आत्मप्रदेशों का एक क्षेत्रवगाह रूप सम्बन्ध है तथा अघातिया कर्मों का नाशकर जो सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने वाले हैं, उनके शरीरादि आत्म प्रदेशों का एवं केलवज्ञान, दर्शनादि का सम्बन्ध छूट जाता है और सिद्ध अवस्था रूप नवीन सम्बन्ध होता है, इसलिए उन्हें पर्यवसित कहा जाता है।



**सिद्धत्तणेण य पुणो उप्पण्णो एस अत्थपज्जाओ।**
**केवलभावं तु पडुच्च केवल दाइयं सुत्ते।। (36)**

यह केवलज्ञान रूप अर्थपर्याय सिद्धपने में उत्पन्न होती है। केवलभाव की अपेक्षा से यह कभी नष्ट नहीं होती। इस भाव को लेकर ही सूत्र में 'केवल' को शाश्वत बताया गया है। एक बार उत्पन्न होने के बाद वह कभी नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार किसी प्रकार का आवरण भी उस पर नहीं आता। वास्तव में यह कथन व्यवहार दृष्टि से है, परमार्थ से तो वह अनादि, अनन्त है। जीव के स्वाभाविक गुण उसमें सदा, सर्वदा विद्यमान ही रहते हैं। इसलिये केवलज्ञान,केवलदर्शन आदि शाश्वत ही हैं।

## शुद्धोपयोग का फल पूर्ण स्वतंत्रता

**तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो।**
**भूदो सयमेवादा हवदि सयंभू त्ति णिद्दिट्ठो।। (16)**

आगे कहते हैं कि शुद्धोपयोग से उत्पन्न जो शुद्ध आत्मा का लाभ है उसके होने में भिन्न कारक की आवश्यकता नहीं है किन्तु अपने आत्मा ही के आधीन है।

(तह) तथा (सो आदा) वह आत्मा (सयमेव) स्वयं ही (लद्धसहावो भूदो) स्वभाव का लाभ करते हुए अर्थात् निश्चय रत्नत्रय लक्षणमय शुद्धोपयोग के प्रसाद से जैसे आत्मा सर्व ज्ञाता हो जाता है वैसा वह शुद्ध आत्मा के स्वभाव का लाभ करता हुआ (सव्वण्हु) सर्वज्ञ (सव्वलोयपदिमहिदो) सर्वलोक का पति तथा पूजनीय (हवदि) हो जाता है इसलिये वह (सयंभू त्ति) स्वयंभू इस नाम से(णिद्दिट्ठो) कहा गया है।

भाव यह है कि निश्चय से कर्त्ता कर्म आदि छः कारक आत्मा में ही है। अभिन्न कारक की अपेक्षा यह आत्मा चिदानन्दमई एक चैतन्य स्वभाव के द्वारा स्वतन्त्रता रखने से स्वयं ही अपने भाव का कर्त्ता है तथा नित्य आनन्दमय एक स्वभाव से स्वयं अपने स्वभाव को प्राप्त होता है इसलिये यह आत्मा स्वयं ही कर्म है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव से यह आत्मा आप ही साधकतम है अर्थात् अपने भाव से ही आपका स्वरूप झलकता है इसलिये यह आत्मा आप ही करण हैं। विकार

रहित परमानन्दमयी एक परिणतिरूप लक्षण को रखने वाला शुद्धात्मभाव रूप क्रिया के द्वारा अपने आप को अपना स्वभाव समर्पण करने के कारण यह आत्मा आप ही संप्रदान स्वरूप है। तैसे ही पूर्व में रहने वाले मति श्रुत आदि ज्ञान के विकल्पों के नाश होने पर भी अखंडित एक चैतन्य के प्रकाश के द्वारा अपने अविनाशी स्वभाव से ही यह आत्मा आपका (स्वयं का) प्रकाश करता है इसलिये यह आत्मा आप ही अपादान है तथा यह निश्चय शुद्ध चैतन्य आदि गुण स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से आप ही स्वयं अधिकरण होता है। इस तरह अभेदषट्कारक से स्वयं ही परिणमन करता हुआ यह आत्मा परमात्मास्वभाव तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति में भिन्न कारक की अपेक्षा नहीं रखता है। इसलिए आप ही स्वयंभू कहलाता है।

**समीक्षा** - जैसे बीज में शक्ति रूप से वृक्ष निहित है उसी प्रकार प्रत्येक जीव में भी शक्ति रूप में परमात्मा निहित है। जब योग्य बीज को जलवायु सूर्यकिरण आदि बाह्य निमित्त मिलते हैं तब वह सुप्तरूप वृक्ष जागृत होता है और शनैःशनै वृद्धि को प्राप्त करता हुआ विशाल वृक्षरूप में परिणमन कर लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा सुप्त रूप में गुप्त रूप में रहता है और योग्य अंतरंग बहिरंग साधनों से वह आत्मा ही परमात्मा रूप से परिणमित होकर प्रकट हो जाता है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है -

**योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।**
**द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।। (2)**

जिस तरह सुवर्णरूप पाषाण योग्य बाह्य कारण, योग्य उपादानरूप कारण के सम्बन्ध से पाषाण (पत्थर) सुवर्ण हो जाता है, उसी तरह द्रव्यादि चतुष्टयरूप-सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल और स्वभावरूप-सुयोग्य सम्पूर्ण सामग्री के विद्यमान होने पर निर्मल चैतन्य स्वरूप आत्मा की उपलब्धि हो जाती है।

गीता में नारायण कृष्ण ने भी कहा है -

**योऽन्तःसुखोऽन्तरामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।**
**स योगी ब्रह्मनिर्वाण ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।। (24)**

जिसे आंतरिक आनन्द है, जिसके हृदय में शांति है, जिसे निश्चित रूप से अंतर्ज्ञान हुआ है वह ब्रह्मरूप हुआ योगी ब्रह्म निर्वाण पाता है।



**लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषः।**
**छिन्नद्वैधा यतात्मान सर्वभूतहिते रताः।।(25)**

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी शंकाए शांत हो गई है, जिन्होंने मन पर अधिकार कर लिए हैं, और जो प्राणी मात्र के हित में ही लगे रहते हैं, ऐसे ऋषि ब्रह्म निर्वाण पाते हैं।

**कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।**
**अभितो ब्रह्मनिर्वाण वर्तते विदितात्मनाम्।। (26)**

जो अपने को पहचानते हैं, जिन्होंने काम क्रोध को जीता है और जिन्होंने मन को वश किया है, ऐसे यतियों को सर्वत्र ब्रह्म निर्वाण ही है।

**स्पर्शान्कृत्वा वहिर्बाह्याश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः।**
**प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।। (27)**
**यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।**
**विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः।। (28)**

बाह्य विषय-भोगों का बहिष्कार करके, दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थिर करके, नासिका द्वारा आने-जाने वाले प्राण और अपान वायु की गति को एक समान रखकर,इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित होकर जो मुनि मोक्षपरायण रहता है, वह सदा मुक्त ही है।

महात्मा बुद्ध ने भी अपने धर्मोपदेश में इसी भाव को प्रकट करने वाली गाथाएं कही थी जिनका संकलन धम्मपद में किया गया है जो निम्न प्रकार है -

**निट्ठङ् गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो।**
**अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुस्सयो।। (18)**

जिसने अर्हत्व पा लिया है, जो राग आदि के त्रास से निर्भिक है जो तृष्णा-रहित और निर्मल है, जिसने भव के शल्यों को काट दिया, वह उसका अंतिम देह है।

**सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।**
**सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभीञ्ञय कमुद्दिसेय्यं।। (20)**

मैं (राग आदि) सभी को परास्त करने वाला हूँ, सभी बातों का जानकार हूँ, सभी धर्मों (इन्द्रिय तृष्णा आदि) में अलिप्त हूँ, सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा के नाश

से मुक्त हूँ (विमल ज्ञान को) अपना ही जानकर मैं अब किसको अपना गुरु बतलाऊँ ?

## मेरा आत्मविश्लेषण-स्वरूप संबोधन हेतु

आचार्य कनकनंदी

(चाल :- भातुकली...)

**कितना प्यारा भाव है मेरा,समता-शान्ति चाहने/(पाने, सहने) वाला।**
**संकीर्ण-कट्टर रहित वाला, उदार पावन सहित वाला।। (1)**
**कितना न्यारा लक्ष्य है मेरा, आत्मा की उपलब्धि परम वाला।**
**ख्याति-पूजा-लाभ रहित वाला, शुद्ध-बुद्ध आनन्द वाला।। (2)**
**कितना सच्चा ज्ञान है मेरा, सनय सत्यग्राही अनेकान्त वाला।**
**हठाग्रह-दुराग्रह रहित वाला, अपूर्वार्थ सहित अनुभव वाला।। (3)**
**धन्य है मेरी अन्तरंग प्रज्ञा, बिना पढ़े सुने जानने की प्रज्ञा।**
**स्वप्न-शकुन-अंगस्फुरण आदि से, बिना देखे भी जानने की प्रज्ञा।। (4)**
**धन्य है ! मेरी सत्य (ज्ञान) जिज्ञासा, जिससे आजीवन विद्यार्थी प्रतिज्ञा।**
**जिससे होते हैं अपूर्वार्थ ज्ञान, तथाहि अपूर्व अच्छे परिणाम।।। (5)**
**कितना महान् है सत्य मेरा, व्यवहार सत्य से परम सत्य वाला।**
**मेरा शुद्धात्मा मेरा परम सत्य, सत्य में गर्भित है लोकालोक/**
**(पूर्णविश्व)।। (6)**

**कितना विशाल मेरा आत्मविश्वास, उपरोक्त सभी में होता विश्वास।**
**अन्ध श्रद्धा मिथ्यात्व से परे श्रद्धान, आगम अनुभव-प्रज्ञा-सम्पन्न।। (7)**
**कितना पावन है चारित्र मेरा, उक्त गुण हेतु प्रयत्नवाला।**
**राग-द्वेष मोह को हरने वाला, शुद्धात्मा प्राप्ति हेतु आचरण वाला।। (8)**

**कितनी पावन युक्त क्षमा मेरी, अक्षमा भावना से रहित वाली।**
**सर्वजीव प्रति क्षमा सह वाली, मोह-क्षोभ रहित समता वाली।। (9)**

**कितना निस्पृह त्याग है मेरा, त्याग से लौकिक लाभ रिक्त वाला।**
**अनात्म-विभाव को त्यागने वाला, स्व आत्म तत्त्व को पाने वाला।। (10)**



**वैराग्य युक्त तपस्या है मेरी, सांसारिक इच्छा से रहित वाली।**
**आत्मिक शुद्धि को करने वाली, ध्यान-अध्ययन सहित वाली।। (11)**
**पवित्र भावना ही मेरी प्रभावना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र आराधना।**
**पंचविध स्वाध्याय-ध्यान करना, स्व-पर-विश्वकल्याण भावना/**
**करना।। (12)**
**उक्त सभी हेतु पुरुषार्थ करना, उक्त हेतु ही मैं करूँ साधना।**
**एकान्त-निस्पृह-मौन साधना, द्रव्य क्षेत्र काल-भावानुसार करना।। (13)**

**अनुशासन से स्वतन्त्र करना, प्रतिस्पर्द्धा नकल भी नहीं करना।**
**समता-शान्ति से आत्मविशुद्धि, इस हेतु शोध बोध लेखन करना।। (14)**

**अनुभव से अनुभव को बढ़ाते जाना, शान्ति-समतामय सफलता पाना।**
**उक्त सभी को स्व उपलब्धि मानना, 'कनक' स्वयं को स्वयं में पाना।। (15)**
**नन्दौड़, दि. 10-08-2018 रात्रि 11.12**

(यह कविता ''ब्रायन ट्रेसी'' की कृति ''अधिकतम सफलता'' से भी प्रेरित है)

## सार्थक लक्ष्य और आदर्श

सफलता का पाँचवाँ तत्व सार्थक (Worthy) लक्ष्य और आदर्श हैं। मैन्स सर्व फॉर मीनिंग के लेखक डॉ. विक्टर ई फ्रैंकल के अनुसार जीव में अर्थ और उद्देश्य की आवश्यकता शायद आपकी सबसे गहरी अचेतन प्रेरणा है। सचमुच खुश रहने के लिए आपको दिशा के स्पष्ट एहसास की जरुरत है। आपको खुद से ज्यादा बड़ी और महत्वपूर्ण चीज़ के प्रति समर्पित होने की जरुरत है। आपको यह महसूस करने की जरुरत है कि आपकी जिंदगी किसी मजबूत बुनियाद पर खड़ी है और आप दुनिया में अपना मूल्यवान् योगदान दे रहे हैं।

खुशी ''को किसी सार्थक आदर्श की क्रमशः प्राप्ति'' के रूप में परिभाषित किया जाता है। आप सिर्फ तभी खुश रह सकते हैं, जब आप किसी महत्वपूर्ण चीज़ की दिशा में क़दम दर क़दम काम कर रहे हों।

ज़रा इस बारे में सोचें कि आपको किस तरह की गतिविधियों और उपलब्धियों में सबसे ज़्यादा आनन्द आता है। जब आप अतीत में सबसे ज़्यादा

खुश थे, तब आप क्या कर रहे थे ? किन कामों से आपको जीवन में अर्थ और उद्देश्य का सबसे ज़्यादा एहसास होता है।

## आत्म-ज्ञान और आत्म-जागरुकता

सफलता का छठा तत्व है आत्म-ज्ञान और आत्म-जागरुकता। पूरे इतिहास में आत्म-ज्ञान और आंतरिक ख़ुशी का बाहरी सफलता से चोली-दामन का साथ रहा है। ''मनुष्य, ख़ुद को जानो'' वाक्य प्राचीन ग्रीस तक जाता है। अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए आपको यह जानने की ज़रुरत है कि आप कौन हैं और आप जिस तरह सोचते और महसूस करते हैं वैसा क्यों करते हैं । आपको उन शक्तियों और प्रभावों को समझने की जरुरत है, जिन्होंने बचपन से लेकर आज तक आपके चरित्र को आकार दिया है। आपको यह जानने की ज़रुरत है कि आप अपने आस-पास के लोगों और स्थितियों के सामने जिस तरह से प्रतिक्रिया करते हैं उसका कारण क्या है। ख़ुद को समझने और स्वीकार करने के बाद ही आप अपने जीवन के बाकी क्षेत्रों में आगे बढ़ सकते हैं ।

## व्यक्तिगत संतुष्टि

सफलता का सातवाँ और अंतिम तत्व है व्यक्तिगत संतुष्टि का एहसास। यह एहसास इस भावना से पैदा होता है कि आप पूरी तरह वह बन रहे हैं, जो बनने में आप सक्षम हैं । इसका मतलब यह निश्चित ज्ञान है कि आप इंसान के रूप में अपनी पूर्ण संभावना को साकार करने की दिशा में बढ़ रहे हैं। मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो ने इसे ''आत्म-वास्तविकीकरण'' (Self-actulization) कहा था। उन्होंने कहा था कि यह हमारे समाज के सबसे स्वस्थ, सुखी और सफल लोगों का मूलभूत लक्षण है।

इस पुस्तक का एक प्रमुख फ़ायदा यह है कि इसकी मदद से आप अपने खुद के मनोवैज्ञानिक बन सकते हैं। आप सीखेंगे कि हर तरह की परिस्थिति में आप सकारात्मक, आशावादी और ख़ुश मानसिक नज़रिया कैसे हासिल कर सकते हैं और उसे क़ायम रख सकते हैं। आप सीखेंगे कि पूर्णतः एकीकृत, सक्रिय और परिपक्व व्यक्तित्व कैसे विकसित किया जाए।

सफलता के सात तत्वों को परिभाषित करने से आपको निशाना लगाने के



लिए लक्ष्य (targets) मिलेंगे। जब आप अपने आदर्श जीवन को परिभाषित कर लेते हैं, जब आपके पास यह तय करने का साहस होता है कि आप ठीक-ठीक क्या चाहते हैं तभी आप सफलता पाने के लिए अपनी छिपी शक्तियों का ताला खोलने की प्रक्रिया शुरु कर सकते हैं। आगे के अध्यायों में आप विचार और कर्म का आज़माया हुआ एक ऐसा सिस्टम सीखेंगे, जिसका प्रयोग करके आप हर उस लक्ष्य को हासिल कर सकते हैं, जो आज आपने अपने लिए तय किया है। लेकिन आप अंत में कहाँ पहुँचना चाहते हैं, यह जानना पहला और सबसे महत्वपूर्ण क़दम है।

# खुद से सवाल, चुनौती और भरोसा दिलाते हैं सफलता

दुनिया में कुछ ही लोग सफल क्यों हैं ? यह सवाल सबके दिमाग में आता है। सफलता कैसे प्राप्त की जाए इसके बारे में हर कोई राय दे देता है। इसके बावजूद सफल होने वाले लोगों की संख्या बहुत कम है। वजह है कि दुनिया में बहुत कम लोगों के कहने और करने में अंतर नहीं है यानी वे जो सोचते हैं, बात करते हैं उस पर काम भी करते हैं। आप अपनी छोटी-छोटी आदतों पर ध्यान दें और आप पाएंगे कि आपने जिंदगी में एक बड़ा बदलाव कर लिया है।

## खुद से सवाल करना सीखें

सफल लोगों ने खुद से सवाल करने की कला को अपनाया है। यह आदत बहुत सारे भ्रम, गलत तौर-तरीके को कम कर देती है। खुद से सवाल करने पर हम बहुत सारे अनावश्यक कार्य बंद कर देते हैं। हम लक्ष्य के प्रति ज्यादा सजग हो जाते हैं। आपकी अपने प्रति जवाबदेही बढ़ जाती है। हम स्वयं के व्यवहार की जिम्मेदारी लेने लगते हैं। दिन में कई बार खुद से सवाल करें।

## खुद पर भरोसा करें

दुनिया में सबसे मुश्किल काम है - खुद पर विश्वास करना। यदि हम सब खुद पर विश्वास रखें कि हम कोई भी परिणाम ला सकते हैं तो फिर कोई भी कार्य करने के लिए हिम्मत जुटा पाएंगे। इससे लोग भी आप पर भरोसा करेंगे। अब्दुल कलाम, स्टीव जॉब्स, महात्मा गांधी, मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला, अब्राहम लिंकन

ये सब महान व्यक्तित्व खुद पर विश्वास करने की आदत के श्रेष्ठ उदाहरण है।

### खुद को चुनौती दें

यदि अपनी क्षमताओं को जानना है तो अपने आपको चुनौती दें। चुनौती देने के लिए तीन कदम उठाएं-

**नया सीखते रहना :** अनवरत प्रयास करें। कुछ न कुछ नया सीखते रहें, फिर चाहे वह प्रोफेशनल जीवन में हो या व्यक्तिगत जीवन में। नए कोर्स, नई स्किल्स, नई तकनीक, नई आदतों की मदद से आप हमेशा रोमांचित रहेंगे।

**अपने प्रदर्शन को चुनौती दें :** आपने जो प्रदर्शन किया है, उस पर सवाल करें कि इसमें और क्या सुधार किया जा सकता है। क्या मैं इसे पहले से बेहतर कर सकता हूँ ? इससे हमें पहले से अच्छा करने में रुचि रहेगी और चुनौती भी महसूस कर पाएंगे।

**डर लगे, वह काम करना :** जिंदगी में कई तरह के डर होते हैं। उनको चुनौती देने का तरीका यही है कि एक-एक कर उन पर काम किया जाए। यह कदम बढ़ाने के बाद आप पाएंगे कि आपका डर ही आपकी ताकत हैं। जब आप किसी काम को एक बार सही तरह से पूरा कर लेते हैं तो डर निकल जाता है।

## आप क्यों नहीं बन सकते सुपर परफार्मर

जितना आप प्राप्त करते हैं, उसके साथ आप जो छोड़ते हैं, उस पर भी सफलता निर्भर है। क्या उस तरह से जीना शुरु कर सकते हैं, जैसा कि दूसरे लोग नही कर सकते। इस तरह आपका जीवन दूसरों से अलग बन सकता है। सफल लोगों को पता होता है कि रोज हमें सीमित ऊर्जा मिलती है। इस ऊर्जा का सही इस्तेमाल करके भविष्य की मजबूत नीवं रख सकते हैं। जानते हैं कि जीवन में सर्वाधिक सफलता कैसे प्राप्त करें

### अनिश्चितता का भय

जीवन में कुछ भी निश्चित नहीं है। अगर आप कोई बड़ा निर्णय लेते हैं तो इसका अर्थ हैं कि आप पहचान गए हैं कि निश्चितता भ्रम है। अनिश्चितता के भय को मन से निकालना होगा, तभी जीवन के उच्चतम स्तर तक पहुंच सकते हैं।



### भावनाओं की अनदेखी

आपकी भावनाएं एकाएक नहीं आती है। ये संदेशवाहक होती है। जीवन में कुछ पाना चाहते हैं तो अपनी भावनाओं को गौर करना चाहिए और पता करना चाहिए कि वे आपसे क्या चाहती है। अपनी भावनाओं को संभालना चाहिए।

### समस्याओं का बचाव

अगर कोई व्यक्ति किसी समस्या को सुलझाने के लिए सलाह देता है तो क्या आप उस सलाह पर विचार करते हैं या कहते हैं कि तुम मुझे नहीं समझ सकते। समस्याओं का बचाव करने से बचना चाहिए और अपनी क्षमताओं को सही तरह से जानना-समझना चाहिए।

### असुविधा से बचना

जिन बुरी आदतों की वजह से सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन नहीं कर पा रहे हैं, वे इसलिए मौजूद हैं क्योंकि आप असुविधा से बचना चाहते हैं। ज्यादातर लोग आरामदायक जीवन जीना पसंद करते हैं और बाद में परिणामों को लेकर परेशान रहते हैं।

### आपके बहाने

आप जीवन में या तो बहाने बनाते हैं या जो सामने हैं, उसे ईमानदारी से स्वीकार करके बदलाव करते हैं। बहानों के कारण आप कुछ देर के लिए खुश हो सकते हैं, पर स्थायी खुशी सफलता से ही मिलेगी। इसलिए बहाने छोड़कर मेहनत शुरु करें।

### बाधाओं को न पहचानना

जो भी चीज जीवन में आगे बढ़ने से रोक रही है, वह सफलता में बाधक है। फिर चाहे आपका वर्क प्रेशर हों, घरेलू समस्या हो, सामाजिक जिम्मेदारियां हो...आपको अपनी बाधाओं को पहचानना चाहिए और उन्हें समाप्त करने की दिशा में काम करना चाहिए।

### पीड़ित की मानसिकता

जीवन को यह परिभाषित करता है कि आप परिस्थितियों पर कैसे प्रतिक्रिया

देते हैं। अगर अपनी मुश्किलों का रोना रोते रहेंगे तो भविष्य में भी इनसे मुक्ति नहीं पा सकेंगे। पीड़ित की मानसिकता से दूर रहें और जिदंगी को बदलने की ठानें।

### पसंद किए जाने की चाह

दुनिया में ऐसा कोई नहीं है, जिसे सब पसंद करते हों। हो सकता है कि आपको कोई पसंद करता हो, कोई आपसे नफरत करता हो। सबको खुश नहीं कर सकते। इसलिए जो पसंद है, वह काम कीजिए। दूसरे क्या सोचेंगे, इसकी परवाह न करें।

### खुद सारे काम करना

अगर आप जीवन में हर काम, हर जिम्मेदारी खुद उठाएंगे तो परेशान हो जाएंगे। दुनिया के सबसे ज्यादा सफल लोग काम को बांटना जानते हैं। वे सही लोगों को हायर करते हैं। जिन कामों में वे एक्सपर्ट नहीं होते हैं, उन्हें पूरा करने के लिए उनके पास मजबूत टीम होती है। अगर आप सारे काम खुद करने लगेंगे तो आपकी एनर्जी खराब होगी और आपकी ताकत कम होती जाएगी।

### प्रतिरोध महसूस करना

जब भी कम्फर्ट जोन से बाहर आने की कोशिश करते हैं तो प्रतिरोध महसूस होता हैं। ऐसे में खुद को समझने की कोशिश करनी चाहिए। कई बार कुछ कुछ चीजों के कारण आपको संकोच होता है और आप कदम उठाने से कतराते हैं। संकल्प लेना सीखें और उन्हें निभाएं।

### फेल होने का डर

फेल होने के डर से आपके बढ़ते हुए कदम रुक जाते हैं और आप बदलाव नहीं कर पाते हैं। फेलियर कभी फाइनल नहीं होता है। यह हमेशा सीखने का एक अवसर होता है। जीवन में हर काम करने के बाद ही पता लगता है कि आपके लिए क्या सही हैं और क्या गलत। विफलताओं का भी सम्मान करना सीखें।

### क्विक फिक्स और शॉर्टकट्स

अगर आप कुछ बड़ा करना चाहते हैं तो याद रखें कि यह रातोंरात संभव



नहीं होगा। असल बदलाव धीरे-धीरे होते हैं। एक बार करें। किसी चीज में 100 फिसदी बदलाव करने के बजाय इस पर फोकस करें कि किस तरह से आप रोज 1 प्रतिशत बेहतर कर सकते हैं। समय के साथ आपके प्रयास जुड़ जाएंगे।

## स्वयं को मनाऊँ बड़े चाव से अन्य को मनाऊँ मैं दया भाव से

**आचार्य कनकनंदी**

**(चाल :- यमुना किनारे...सायोनारा...)**

**स्वयं को मनाऊँ मैं बड़े चाव से, अन्य को मनाऊँ मैं दया भाव से।**
**स्वयं को मनाना मेरा परम धर्म, अन्य को मनाना मेरा व्यवहार धर्म।। (1)**

**स्वयं को मनाना तो स्वावलम्बन, पर को मनाना होता परावलम्बन।**
**स्वयं का कर्त्ता-धर्त्ता/(भोक्ता) होता स्वभाव, स्वभाव रूप परिणमन है स्वतंत्र भाव।। (2)**
**अतएव मैं स्वयं को मानूँ-मनाऊँ, स्वयं को भी जानूँ-जताता रहूँ।**
**स्व-परिणमन मैं स्व-परिणाम से करूँ,स्वयं का उद्धार मैं पहले करूँ।।(3)**

**'गुणपर्ययवत् द्रव्यं' होने से, 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त' होने से।**
**'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणः''होने से,''तद् भावः परिणाम'' होता स्वयं में।। (4)**

**अतएव मैं स्वयं को स्वयं के द्वारा, स्व में ही परिणमन करूँ स्वभाव द्वारा।**
**इससे ही हर जीव का होता परिणमन,अन्य सभी होते बाह्य निमित्त कारण।। (5)**
**ऐसा ही हर जीव का होता परिणमन, अन्य सभी होते बाह्य निमित्त कारण।**
**आत्महित सहित परहित में बनूँ कारण, कर्त्ता न बनूँ न बनूँ बाधक कारण।। (6)**
**अन्य के कर्त्ता में होते राग-द्वेष-मोह, ईर्ष्या-घृणा तृष्णा व वाद-विवाद।**

**संकल्प-विकल्प-संक्लेश-द्वन्द्व होते, जिससे आत्मविकास में विघ्न होते।। (7)**

**अनन्त तीर्थंकर हुए हैं अभी तक, एक निगोदिया देह के जीव न पाये मोक्ष।।**
**आत्म पतन कारक पर-कर्त्ता-भोक्ता न बनूँ, उत्तम स्वात्मचिन्तक 'कनक'**
**सदा बनूँ।। (8)**

नन्दौड़ 08.09.2018 रात्रि 09:06

**आदा कम्म मलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।**
**तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो।। 21।। प्र.सा.**

''संसार' नामक जो यह आत्मा का तथा विध (उस प्रकार परिणाम है) वही द्रव्यकर्म के चिपकने (बंध) हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है ? इस उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है, क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्ता से ही वह भाव कर्म है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा, क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ सम्बन्ध आत्मा का जो पूर्व द्रव्यकर्म है उसको वहाँ हेतुरूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम होने से वह उपचार से द्रव्यकर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

**जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परणमंति।**
**पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।।**
**ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।**
**अण्णोण्णं णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि।।**

यद्यपि जीव के रागद्वेषी परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता। किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

**एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण।**
**पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावगं।। 82।। (समयसार)**

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका



व्याख्यान किया गया है।

व्यवहारनय से भिन्न षट्कार के अनुसार जीव के रागद्वेष का निमित्त पाकर कर्म परमाणु द्रव्यकर्मरूप में परिणमन करता है। द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म उत्पन्न होते हैं। परंतु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव परिणाम के हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम के हेतु जीव नहीं है' पंचास्तिकाय में कहा है :-

**निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''**

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्ता है। निश्चय से जीव पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहारनय से कर्त्ता है।

## स्व-हित करणीय

**परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।**
**अपकुर्वन्परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्। (32)**

O Witless one! thou art serving this visible show that is not thyself; thou shouldst now renounce dowing good to others and take to dowing good to thine owî self!

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया है अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि परद्रव्य है, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित हैं। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते हैं।

**समीक्षा** - इस श्लोक में आचार्य श्री ने लौकिक उदाहरण देकर वह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन-सम्पत्ति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी

आचार्य गुरुदेव भव्य को संबोधित करते हुये कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व-उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुये हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो । जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुमने भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लग गये हुये हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का अभिमान ढो रहे हो, गधा अपने पीठ पर चन्दन की लकड़ी का भार केवल ढोता रहता है परन्तु चन्दन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है। इसी प्रकार जीव, शरीर, सम्पत्ति कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनन्द अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बड़प्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बड़ा मान लेते हैं। गुलाम जिस प्रकार मालिक के अधीन होकर उसके निर्देश के अनुसाद दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है। उसी प्रकार मोहीजीव शरीर, कुटुंब ,धन, संपत्ति तथा राग द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से उत्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव-दीन हीन असहाय गरीब मान लेते है। इसलिए आचार्य श्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरों के लिए इतना रोया इतना आंसु बहाया कि यदि उस आँसु को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार तुम दूसरों के गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दूसरे भी तुम्हारे अनन्त बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया। उसका अनंतवा भाग भी स्वोपकार में लगाओंगे तो तुम तीनलोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाओगे। इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य देव ने कहा है ''आदहिदं कादव्वं'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए कहा भी है-

**पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराई जणणीणं।**
**अण्णण्णाण महाजस सायरस्सलिलादु अहियरं।।। 18।।** अ.पा.



हे महाशय के धारक मुनि ! तुने अनन्त जन्मों में अन्य-अन्य माताओं के स्तन का इतना दूध पिया है जो समुद्र के जल से भी अत्यन्त अधिक है अनन्तगुणित है।

**तुह मरणे दुवरेणं अण्णाणं अणेय जणणीणं।**
**रुण्णाण पायणीरं सायरसलिलादु अहियवरं।। 19।।**

जे जीव! तेरा मरण होने पर दुःख से रोती हुई अन्य-अन्य अनेक माताओं का अश्रुजल समुद्र के जल से अत्यन्त अधिक है।

**भवसायरे अणंते छिण्णुज्झियके सणहरणालट्ठी।**
**पुंजेइ जइ को वि जार हवदि य गिरिसमधिया रासी।। 20।।**

हे जीव! तूने अनन्त संसार सागर में जिन केश, नख, नाभिनाल और हड्डियों को काटने के पश्चात छोड़ा है यदि कोई यक्ष उन्हें इकट्ठा करे तो उनकी राशि पर्वत से भी अधिक हो जाये।

**मादुपिदुसजणसंवंधिणो य सव्वे वि उत्तणो अण्णे।**
**इह तोग बंधक ते ण य परलोगं समं णेंक्षि।। (720)**

माता-पिता और स्वजन सम्बन्धी लोग ये सभी आत्मा से भिन्न हैं। वे इस लोक में तो बांधव है किन्तु परलोक में तेरे साथ नहीं जाते हैं।

**अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाह ओत्ति मण्णंतो।**
**अत्ताणं ण दु सोवदि संसारमहण्णवे बुडुं।। (703)**

वह जो मर गया, मेरा स्वामी है वैसा मानता हुआ अन्य जीव अन्य का शोक करता है किन्तु संसार-रूपी महासमुद्र मे डूबे हुए अपने आत्मा का शोक नहीं करता है।

**अण्णं इसं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं।**
**णाणं दंसणमादात्ति एवं चिंतेह अण्णतं।। (704)**

वह शरीर आदि भी अन्य है पुनः जो बाह्य द्रव्य हैं वे तो अन्य हैं ही। आत्मा ज्ञानदर्शन''स्वरूप है इस तरह अन्यत्व का चिन्तन करों।

**अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।**
**अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा में नन्दणं वणं ।। 36।।**

''मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट - शालमलि वृक्ष है, काम दुधा-धेनु है और नन्दन वन है।''

**अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।**
**अप्पा मित्तममित्तं च दुपट्ठिय -सुपट्ठिओ।। 37।।**

''आत्मा ही अपने सुख-दुख का कर्त्ता है और विकर्त्ता भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही शत्रु है।''

## मोक्ष के ज्ञाता

**गुरूपदेशाभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।**
**जानाति यःस जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।**

जैन धर्म में तो अरिहन्त भी गुरु है तो सिद्ध भी गुरु है आचार्य, उपाध्याय साधु भी गुरु है। उन्हें पंच गुरु या पंच परमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई है हो रही है और होगी उसके मूल कारण गुरु ही हैं। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्झेंडर (सिकन्दर) महान् बना गुरु अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य द्विग्वजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मागाँधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले भी राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविधा, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कलाकौशल गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

**'गुरु बिना सर्वे भवन्ति-पशुभिःसनिभ'** गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश है। पशुओं के कोई गुरु नहीं होते हैं इसलिए पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इस ही प्रकार मनुष्य समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत हो जाता।

**'गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवघड़ डोंगर घाट'**

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा ? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरुह, भयंकर जंगलवाट के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।



## आत्मा का गुरु आत्मा

**स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभष्टिज्ञापकत्वतः।।**
**स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः। (34)**

Because of its internal longing for the attainment of the highest ideal, because its understanding of that ideal, and because of its engaging itself in the realisation of its ideal, because of these the soul is its own preeptor !

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! मोक्ष सुख अनुभव विषय में गुरु कौन है ? गुरु कहते हैं, जो शिष्य निश्चय से सतत् कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के अनुसार उपाय बताते हैं तथा जो अपर्वतमान है उन्हें पर्वतन करते है उन्हें निश्चय से गुरु कहते हैं । इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं आत्मा स्व-मोक्षसुख की अभिलाषा करता है अर्थात् मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसी सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व-आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासा करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख के उपाय को आत्मविषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्षसुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है। तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्षसुख उपाय में यह दुरात्मा अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अपवर्त्तमान-आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

**समीक्षा-** यहाँ पर आचार्य श्री ने निश्चयनय से गुरु-शिष्य के बारे में संक्षिप्त सारगर्भित प्रकाश डाला है। व्यवहारनय से आचार्य-उपाध्याय-साधु गुरु होने पर भी निश्चय नय से आत्मकल्याण में प्रवर्तमान स्वयं ही स्वयं का गुरु है। क्योंकि भले गुरु हितमार्ग का उपदेश करता है, परन्तु प्रवृत्त तो होता है स्वयं जीव! स्वयं आचार्य श्री आगे इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे इसलिए, यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहा हूँ तथापि आचार्य अकंलक देव कृत स्वरूप सम्बोधन से कुछ विषय उद्धृत कर रहा हूँ। यथाः

**''इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमोक्षी, तयोः फलम्।**
**आत्मा स्वीकुरुते तत्तकारणेः स्वयमेव तु'' ।। 9।।**

कर्मबन्ध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बन्ध तत्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान चारित्र, द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता हैं। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बन्ध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता हैं।

**स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।**
**स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।**

यह आत्मा स्वयं अपने रागद्वेष मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मों का बन्ध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं करके अच्छे या बुरे फल को भोगा करता है, चारों गतियों में जन्म मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है। तथा निबन्ध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर आत्म का श्रद्धालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता है, यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मो से मुक्त होने के मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छूटकर, जन्म मरण का सदा के लिये विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी जन्म मरण का सदा के लिये विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी यह आत्मा स्वयं कर्ता, भोक्ता, भ्रमणकर्ता और मुक्त होता है।

**कर्ता यः कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।**
**बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषा, मुक्तत्वमेव हि।। 20।।**

जीवको संसारं में घुमाने वाला, उसको सुख दुःख देने वाला और कर्मों से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। यह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, रागद्वेष, मोह,ममतादि भावों से शरीर, परिवार,धन मकान आदि को अपना कर कर्मबन्ध किया करता है तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म (शरीर) का भेद विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अन्तरंग बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

उसके संसार भ्रमण तथा संसार छूटने में अन्य कोई सहायक नहीं होता।



यह सभी सांसारिक पारमार्थिक आध्यात्मिक कार्य जीव अकेला ही करता है।

## कार्य के लिए बाह्य कारण

**नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।**
**निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्।। (35)**

Those not get qualified for the acquistion of truth cannot becocme the knowers of truth : the knowers of truth cannot become devoid of it, external teachers are useful llke eyther which is but helpful in the motion (of moving things)

**''स्वाभाविक हि निष्पतौ, क्रियागुणमपेक्ष्यते।**
**न व्यापारशतेनापि-शुकवत्पाठयते वकः''।।**

यहां शिष्य प्रश्न करता है कि यदि आत्मा का गुरु आत्मा ही है तब परम्परा गुरु से शिष्य कैसे शिक्षा प्राप्त करता है? मुमुक्ष के द्वारा धर्माचार्य की सेवा आदि भी नहीं होगी। इसका समाधान आचार्य श्री निम्न प्रकार करते हैं -

हे भद्र ! तत्त्वज्ञान प्राप्त करने में अयोग्य जो अभव्य हैं वह हजारों धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव वह स्वभाव ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया-निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैंकड़ों क्रियाओ से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोते को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार जो अंतरंग में - विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वहीं अभिव्यक्ति रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रशमयोगी उस व्रजपात से भी चलायमान नहीं होते हैं जिसके भय से पथिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और विश्व-ध्वनित हो जाता है। क्योंकि वह योगी मोह रूपी घना अंधकार को नष्ट करके सम्यग्दृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे भयंकर व्रजपात से भी जो चलायमान नहीं होते हैं ये अन्य छोटे-छोटे उपद्रवों से कैसे चलायमान होगे ? कहने का तात्पर्य यह है कि वज्ररूपी बाह्य निमित्त से क्षायिक सम्यग्दृष्टि महायोगी चलायमान नहीं होते हैं। परन्तु बाह्य अपेक्षा की आवश्यकता होती है, ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र है और शिष्य की योग्यता

अन्तरंग मुख्य कारण है क्योंकि वही साक्षात् साधक है। इसके लिए उदाहरण है गति परिणत जीव, पुद्गल के लिए जिस प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त होता है।

**समीक्षा** - यह वर्णन आध्यात्मिक दृष्टि से होने के कारण गुरु रूपी निमित्त को ज्ञान प्राप्ति में उदासीन कारण बताया गया है । परन्तु गति के लिए धर्मास्तिकाय जिस प्रकार केवल उदासीन कारण है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति में गुरु उदासीन कारण नहीं है। यदि ऐसा होता तो तीर्थंकर क्यों उपदेश करते। गणधर भी उपदेश क्यों सुनते ? आचार्य भी ग्रन्थ क्यों लिखते? बिना देशना-लब्धि सम्यक्दर्शन क्यों नहीं होता ? यह सब होते हुए भी अयोग्य शिष्य को अपनी कमी को बताने के लिए गुरु के अकर्तापन को जताने के लिए यह सब कहा गया है। नहीं तो गुरु शिष्य, गुरुकुल, विद्यालय,ग्रन्थ आदि की आवश्यकता क्यों होती।

## परम आध्यात्मिक साम्यवाद
## मुझ से कोई न छोटा न कोई महान्

**(चाल :- यमुना किनारे...)**

**श्रद्धा-प्रज्ञा से मुझे हो रहा है ज्ञान, मुझ से न कोई छोटा कोई न महान्**
**''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' से हुआ यह ज्ञान,, 'सद् द्रव्यलक्षणं' से हर जीव है समान।। (1)**

**''अहमेक्को खलु सुद्धो'' तीर्थंकरों (सर्वज्ञों) ने कहा, ''तत्त्वमसि'' महावाक्य वेदांत ने कहा।**
**'गुणपर्ययवद् द्रव्य' से हर जीव में सम गुण, ''उदार पुरुषाणां वसुधैव कुटुम्बक्।। (2)**

**निगोदिया से सिद्ध तक सभी हैं जीव, सभी हैं समान गुण सर्वज्ञ वचन।**
**व्यक्त व शक्ति अपेक्षा से भले विभिन्न, यथा बीज-वृक्ष में शक्ति-व्यक्त के सम।। (3)**

**अनन्त भव्य जीव अभी तक बने हैं भगवान्, संसारी जीव ही मुक्त बनते आगम कथन।**



**'भेदादणु' से यथा स्कन्ध से बनते अणु, ''सिद्धि स्वात्मोपलब्धि'' से संसारी बनते-सिद्ध।। (4)**

**सिद्ध में अनंतानंत गुण होते प्रगट, अनंत ज्ञान-दर्शन सुखवीर्यादि अनन्त गुण।**
**कर्म के कारण जीवों में होती है विभिन्नता, कर्मों से रहित जीवों में होती है समानता।। (5)**

**ऐसी दृष्टि होने पर होती है सुदृष्टि, सुदृष्टि जीवों को ही होती है सुबोधी।**
**ऐसे जीवों में ही होती है समता, ऐसे जीवों में ही होती उपरोक्त सुदशा।। (6)**

**यह है आध्यात्मिक परम समता, आर्थिक-राजनैतिक समता से महानता,।**
**मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ से सहित, ऐसे परम आध्यात्मिक को 'कनक' मानता श्रेष्ठ।। (7)**

नन्दौड़ 11.8.2018 रात्रि 8.53

जैसा भावै सो वैसा हो जावै' अविनाशी अनंत अतींद्रिय सुख का निरंतर लाभ आत्मा की शुद्ध अवस्था में होता है। उस अवस्था की प्राप्ति का उपाय यद्यपि साक्षात् शुद्धोपयोग में तन्मय होकर निर्विकल्प समाधि में वर्तन करना है। तथापि परम्परा से उसका उपाय अरहंत और सिद्ध आदि परमेष्ठी उनको नमस्कार करना, पूजन करना, स्तुति करना आदि है।

## जो अरिहंत के माध्यम से स्वयं को जानता है उसका मोह नाश होता है

**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**
**सो जाणदि अप्पाणं मोही खलु जदि तस्स लयं।। (80)**

He, who knows the Arihanta with respect to substantiality, quality and modification, realizes himself, and his delusion, in fact,dwindles into distuction.

आगे 'चत्तापावारम्भ' इत्यादि सूत्र से जो कहा जा चुका है कि शुद्धोपयोग के बिना मोह आदि का नाश नहीं होता है और मोहादि के नाश के बिना शुद्धात्मा का लाभ नहीं होता है, उस ही शुद्धात्मा के लाभ के लिए अब उपाय बताते हैं ।

(जो) कोई (अरहंत) अरहंत भगवान को (दव्वत्तगुणत्तपज्जत्तेहिं) द्रव्यपने, गुणपने, तथा पर्यायपने से (जाणदि) जानता है (सो) वह पुरुष (अप्पाण जाणदि) अर्हंतके ज्ञान के पीछे अपने आत्मा को जानता है। उस आत्म ज्ञान के प्रताप से (तस्समोहा) उस पुरुष का दर्शन मोह (खलु लयं जादि) निश्चय क्षय हो जाता है।

इसका विस्तार यह है कि अर्हंत आत्मा के केवल ज्ञान आदि विशेषगुण हैं। अस्तित्व आदि सामान्य गुण हैं परम औदारिक शरीर के आकार जो आत्मा के प्रदेशों का होना सो व्यंजन पर्याय है। अगुरुलघु गुण द्वारा षट् प्रकार वृद्धि हानि से वर्तन करने वाली अर्थपर्याय है। इस तरह लक्षणधारी गुण और पर्यायों के आधाररूप, अमूर्तिक, असंख्यात प्रदेशी, शुद्ध चैतन्यमई अन्वयरूप अर्थात् नित्यस्वरूप अरहंत द्रव्य है। इस तरह द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप अरहंत परमात्मा को पहले जानकर फिर निश्चयनय से उसी द्रव्यगुण पर्याय को आगम का सारभूत जो आध्यात्मिक भाषा है उसके द्वारा शुद्ध आत्मा की भावना के संमुख होकर अर्थात् विकल्प सहित स्वसंवेदन ज्ञान में परिणमन करते हुए तैसे ही आगम की भाषा से अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नाम के परिणामविशेषों के बल से जो विशेष भाव दर्शन मोह के अभाव करने में समर्थ है, अपने आत्मा से जोड़ता है। उसके बाद निर्विकल्प स्वरूप की प्राप्ति के लिए जैसे पर्याय रूप से मोती के दाने, गुण रूप से सफेदी आदि अभेद नय से एक हार रूप ही मालूम होते हैं तैसे ही पूर्व में कहे हुए द्रव्यगुण पर्याय अभेद-नय से आत्मा ही है, इस तरह भावना करते करते दर्शन मोह का अन्धकार नष्ट हो जाता है।

जो वास्तव में अरहंत को द्रव्य रूप से गुण रूप से और पर्याय रूप से जानता है वह वास्तव में अपने आत्मा को जानता है क्योंकि दोनों (अरहंत और अपनी आत्मा) में निश्चय से अन्तर नहीं है। अरहंत का रूप भी अंतिम ताप को प्राप्त सोने के स्वरूप की भांति परिस्पष्ट(शुद्ध) आत्मा का रूप ही है इस कारण से उनका (अरहंत का) ज्ञान होने पर सर्व आत्मा का ज्ञान होता है। वहाँ (अरहंत में) अन्वय रूप द्रव्य है, अन्वय का विशेषण गुण है, और अन्वय के व्यतिरेक (भिन्न-भिन्न, क्रम से होने वाली) पर्यायें हैं। वहां सर्वतः विशुद्ध भगवान् अरहन्त में (जीव) तीनों प्रकार युक्त समय को भी (द्रव्य गुण पर्याय मय निज आत्मा को



भी) अपने मन से देख लेता है। जो यह चेतन है, यह अन्वय है, वह द्रव्य है, जो अन्वय के आश्रय रहने वाला चैतन्य है, यह विशेषण है, वह गुण है और जो एक समय मात्र मर्यादित काल परिमाण के कारण से परस्पर भिन्न-भिन्न अन्वय के व्यतिरेक है वे पर्यायें हैं जो कि चिद्विवर्तन की (आत्मा के परिणमन की) ग्रन्थियाँ (गाठे) हैं । इस प्रकार अरहंत के द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप है।

अब (1) इस प्रकार त्रैकालिक को भी (त्तिकाल इसी स्वभाव को धारण करने वाली अपनी आत्मा को भी) एक काल में समझ लेने वाले, (2) झूलते हुए हार में मोतियों की तरह(जैसे मोतियों) को झूलते हुए हार के अन्तर्गत माना जाता है उसी प्रकार चिद्विवर्तों को (चैतन्य पर्यायों को) चेतन में ही अन्तर्गत करके तथा विशेषण विशेष्यता की वासना का अन्तर्धान होने से, हार में सफेदी की तरह (जैसे सफेदी को हार में अन्तर्हित किया जाता है, उसी प्रकार) चैतन्य को चेतन में ही अन्तर्हित करके केवल हार की तरह(जैसे मोती व सफेदी आदि के विकल्प को छोड़कर मात्र हार को जानता है, उसी प्रकार) केवल आत्मा को जानने वाले, (3) उसके उत्तर क्षण मे कर्ता-कर्म क्रिया का विभाग नाश को प्राप्त हो जाने से निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होने वाले, (4) उत्तम मणि की भांति अकम्परूप से प्रवर्त रहा है निर्मल प्रकाश जिसका, ऐसे उस जीव के अवश्य ही निराश्रयता के कारण से मोहांधकार नष्ट हो जाता है। यदि ऐसा है तो मेरे द्वारा मोह की सेना को जीतने के लिये उपाय प्राप्त कर लिया गया।

**समीक्षा** – जीव एक द्रव्य है। जीव द्रव्य होने के कारण उसमें गुण भी है और पर्याय भी है। शुद्ध जीव का स्वरूप एक समान होते हुए भी संसारी जीव की अवस्थायें कर्म सापेक्ष होने से विभिन्न प्रकार की है। गुणस्थान की अपेक्षा मध्यम प्रतिपत्ति से इसके 14 भेद हैं। संक्षिप्त रूप से अन्य प्रकार से देखने पर इसके 3 भेद भी हैं, यथा -

**बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।**
**अपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत्।। (14) समाधि तंत्र**

**सर्वप्राणियों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा इस तरह तीन प्रकार हैं। परमात्मा के उन तीन भेदों में से अन्तरात्म के उपाय द्वारा परमात्मा को अंगीकार करें अपनावें और बहिरात्मा को छोड़ें।**

छहढाला में भी कहा है -

**बहिरातम अन्तरआतम परमातम जीव त्रिधा है।**
**देह जीव को एक गिनै बहिरातम तत्त्व मुधा है।।**
**उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तरआतमज्ञानी।**
**द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी।।**
**मध्यम अन्तर आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।**
**जघन कहे अविरत समदृष्टि तीनों शिवमगचारी।।**
**सकल निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।**
**श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक-निहारी।।**
**ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महन्ता।**
**ते है निकल अमल परमातम, भौगै शर्म अनन्ता।।**
**बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।**
**परमातम को ध्याय निरन्तर, ज्यो नित आनंद पूजै।।**

अरिहंत भगवान् भी चैतन्य द्रव्य है उनके अनंत ज्ञानादि अनंत गुण हैं एवं 13वें गुणस्थानवर्ती शुद्धावस्थारूप पर्याय भी है। जो व्यक्ति अरिहंत भगवान् को द्रव्यदृष्टि, गुणदृष्टि एवं पर्यायदृष्टि से अवलोकन करते हुए स्वयं के स्वरूप का अवलोकन करता है वह स्वस्वरूप को भी जान लेता है। इसलिए आचार्य स्वामी पूज्यपाद ने कहा है-

**'श्री मुखालोकन देव श्री मुखावलोकनं भवेत्'**

अर्थात् जो भगवान् के श्री मुख का दर्शन करता है वह श्री अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी का दर्शन करता है। इसीलिए जिन दर्शन निज दर्शन है।

भक्त जब भगवान् के पास जाता है तब भगवान् के स्वरूप दर्पण से अपने स्वरूप का दर्शन करता है। जब वह दिव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण दृष्टि से भी कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान् अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि भगवान् पर्याय दृष्टि से अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख वीर्य के अक्षय भण्डार हैं एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुःखादि को भोगने वाला



है। अंग्रेजी में एक नीति वाक्य है -

There is no difference between God and us.
But there is so difference between God and us.

अर्थात् दिव्य दृष्टि से भगवान् और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृटि (पर्याय दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अन्तर है। भक्त भगवान् के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरूप भगवान् स्वरूप होते हुए भी जो मैं अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान् के पास से उनमें वहीं शिक्षा प्राप्त करूं जिस मार्ग पर चलते हुए भगवान् ने इस परमोत्कृष्ट नित्यानन्द अवस्था को प्राप्त किया है। इसीलिए भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है -

**दासोऽहं रटता प्रभो! आया जब तुम पास।**
**'द' दर्शन हट गयो, सोऽहं रहो प्रकाश।।**
**सोऽहं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार।**
**दीप 'अहं' मय हो गयो अविनाशी अविकार।।**

जब भक्त भगवान् के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक) एवं भगवान् को प्रभु (पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्वस्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है तदनन्तर जब वह पूज्य के गुणों को अनुकरण करके आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यही पूजा का परमोत्कृष्ट फल हैं। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है - **'वंदे तद्गुण लब्धये'** अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी भगवान् को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

वीरसेन स्वामी ने कहा है कि जो अरहंत की प्रतिमा के भी दर्शन करता है उनका मोहनीय कर्म क्षय होता है जिससे जिनबिंब दर्शन से सम्यग्दर्शन की उपलब्धि कहा है। जैसे अंकुर की मूल पर्याय बीज है और भविष्यत् पर्याय वृक्ष है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की भूत पर्याय मिथ्यात्वावस्था है और भविष्यत् पर्याय भगवान् अवस्था है। भव्यभावी भगवान् है तो भगवान् भूत भव्य है जैसे बालक भावी प्रौढ़ मानव है और प्रौढ़ मानव भूत बालक है। इसलिए जो आत्मा है वही

परमात्मा है। समाधितंत्र में पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है -

**यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः**

**अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।। (31)**

अन्तरात्मा विचारता है कि जो परमशुद्ध है वह ही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वह परमात्मा है, इस कारण मेरे द्वारा मुझसे मैं ही उपासना ध्यान करने योग्य हूँ, कोई अन्य पदार्थ उपासना करने योग्य नहीं है ऐसी परिस्थिति-व्यवस्था है।

**भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।**

**वत्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।। (97)**

अपने आत्मा से भिन्न अरहंत, सिद्ध भगवान् की उपासना आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाता है । जैसे-दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती हैं।

**उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।**

**मथित्वात्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः।। (98)**

अथवा अपना आत्मा अपने आत्मस्वरूप को ही आराधना-चिन्तवन करके परमात्मा हो जाता है जैसे अपने आप को ही रगड़कर बांस का पेड स्वयं ही अग्नि हो जाता है।

**जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।**

**तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।। (26) प.प्र.**

जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप कार्यसमयसार उपाधि रहित भावकर्म-द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मल से रहित केवल ज्ञानादि अनंत गुणरूप सिद्ध परमेष्ठी देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है, वैसा ही सब लक्षणों सहित परब्रह्म, शुद्ध,बुद्ध, स्वभाव परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है, इसलिए हे प्रभाकर भट्ट, तूँ सिद्ध भगवान् में और अपने में भेद मत कर।

**जे दिट्ठे तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व कियाइँ।**

**सो परू जाणाहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।। (27)**

जिस आत्मा को सदा आनंद रूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल



नेत्रों का देखने से शीघ्र ही निर्वाण को रोकने वाले पूर्व जीवोपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से जो पहले शुभ अशुभ कार्य कमाये थे वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी! तू क्यों नहीं जानता।

**देहादेवलि जा वसइ देउ अणाइ-अणंतु।**

**केवल-णाण-फुरंत-तणु लो परमप्पु णिभंतु।। (33)**

जो व्यवहारनयकर देवालय में बसता है, निश्चियनयकर देह से भिन्न है, देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है, महापवित्र है, आराधने योग्य है, पूज्य है, देह आराधने योग्य नहीं है, जो परमात्मा आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर अनादि अनंत है, तथा देह आदि अंतकर सहित है, जो आत्मा निश्चयनयकर लोक अलोक को प्रकाशने वाले केवल ज्ञान स्वरूप है, अर्थात् केवल ज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है और देह जड है, वही परमात्मा निःसंदेह है, उसमें कुछ संशय नहीं समझना।

**बुज्झंतहँ परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोई।**

**जीवा सयल वि बंभु परु जेण वियाणइ सोइ।। 94**

**हे जीव, परमार्थ को समझने वालो के कोई जीव, बड़ा छोटा नहीं है, सभी जीव परमब्रह्म स्वरूप है, क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि जीव सबको एक जानता है।**

**जो भत्तउ-रयण-त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।**

**अच्छउ कहिं वि कुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ।। (95)**

जो मुनि रत्नत्रय की आराधना करने वाला है, उसके यह लक्षण जानना कि किसी शरीर में जीव रहे, वह ज्ञानी उस जीव का भेद नहीं करता अर्थात् देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद करता है, परन्तु ज्ञान दृष्टि से सबको समान देखता है।

**जीवहँ तिहुयण संठियहँ मूढा भेउ करंति।**

**केवल-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति।। (96)**

**तीन भुवन में रहने वाले जीवों का मुर्ख ही भेद करते हैं और ज्ञानी जीव केवल ज्ञान से प्रकट सब जीवों को समान जाानते हैं।**

**जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण विमुक्क।**

**जीव-पएसहिं सयल सम सयल वि सगुणहिँ एक्का।। (97)**

सभी जीव ज्ञानमयी है,और अपने-अपने प्रदेशों से सब समान है, सब जीव अपने केवल ज्ञानादि गुणों से समान हैं।

**जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।**
**तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु।। (98)**

जीवों का लक्षण जिनेन्द्रदेव ने दर्शन और ज्ञान कहा है, इसीलिए उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे शिष्य! तू सबको समान जान।

**बंभहँ भुवणि बसंताहँ जे णवि जीवइँ भेउ करंति।**
**ते परमप्प-पयासयर जोइय विमलु मुणंति।। (99)**

इस लोक में रहने वाले जीवों का भेद नहीं करते हैं, वे परमात्मा के प्रकाश करने वाले योगी, अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं।

**देह-विभेयहँ जो कुणइँ जीवइँ भेउ विचित्तु।**
**सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसणु णाणु चरित्तु।। (102)**

जो शरीर के भेद से जीवों का नानारूप भेद करता है, वह उन जीवों का दर्शन ज्ञान चरित्र लक्षण नहीं जानता, अर्थात् उसको गुणों की परीक्षा पहचान नहीं है।

**जेण सरुविं झाइयह अप्पा एहु अणंतु।**
**तेण सरुविं परिणवइ जह-फलिहउ-मणि मंतु।। (173)**

यह प्रत्यक्षरूप अविनाशी आत्मा जिस स्वरूप से ध्याया जाता है, उसी स्वरूप परिणमता है, जैसे एक स्फटिक मणि और गरुड़ी मंत्र है।

**एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्म-विसेसँ जायउ जप्पा।**
**जामइँ जाणइ अप्पँ तामई सो जि देउ परमप्पा।। (174)**

यह प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदन ज्ञान कर प्रत्यक्ष जो आत्मा वही शुद्धनिश्चयनयकर अनंत चतुष्टस्वरूप क्षुधादि अठारह दोष रहित निर्दोष परमात्मा है, वह व्यवहारनयकर अनादि कर्मबंध के विशेष से पराधीन हुआ दूसरे का जाप करता है, परन्तु जिस समय वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कर अपने को जानता है, उस समय यह आत्मा ही परमात्मा देव है।

**जो परमप्पा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।**



**जा हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु।। (175)**

जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, वह मैं ही हूँ, जो कि अविनाशी देवस्वरूप हूँ जो मैं वही उत्कृष्ट परमात्मा है। निस्सन्देह तू भावना कर।

**जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंतहँ सारु।**
**इउ जाणेविण जोइयहो छंडहु मायाचारु।। (21)**

जो जिन भगवान् है वही आत्मा है- यहीं सिद्धान्त का सार समझो, इसे समझकर हे योगीजनो! मायाचार को छोड़ो।

**जो परमप्पा सो जि हउँ जो हउँ सो परमप्पु।**
**इउ जाणेविणु जोइया अण्णु म करहु वियप्पु।। (22)**

जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है, वह समझकर हे योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।

**जा तइलोयहँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु।**
**णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ एहउ जाणि विभंतु।। (28)**

जो तीन लोकों के ध्येय भगवान् है, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है- यह कथन निश्चयनय से है। इसमें भ्रान्ति न करनी चाहिए।

**जं वडमज्झहँ बीउ फुडु बीयहं वडु वि हु जाणु।**
**तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय पहाणु।। (74)**

जैसे बड के वृक्ष में बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़ वृक्ष रहता है। इसी तरह देह में भी उस देव को विराजमान समझो, जो तीनों लोकों में मुख्य है।

**जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहए भाउ णिभंतु।**
**मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु तंतु ण मंतु।। (75)**

जो जिनदेव है वह मैं हूँ। इसकी भ्रान्ति रहित होकर भावना कर। हे योगिन्! मोक्ष का कारण कोई अन्य मंत्र तंत्र नहीं है।

## रागद्वेष मोह त्याग से शुद्धात्मोपलब्धि

**जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं।**
**जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं।। (81)**

The soul being free from delusion and having grasped well the reality of the self, realizes the pure self, if it abandons attachment and aversion.

आगे कहते हैं कि इस जगत में प्रमाद को उत्पन्न करने वाला चरित्र मोहनाम का चोर है, ऐसा मानकर आप्त श्री अरहन्त भगवान् के स्वरूप के ज्ञान से जो शुद्धात्मा रूपी चिन्तामणि रत्न प्राप्त हुआ है उसकी रक्षा के लिए ज्ञानी जीव जागता रहता है।

(ववगदमोहो जीवो) शुद्धात्म तत्व की रुचि के रोधक दर्शन मोह को जिसने दूर कर दिया है ऐसा सम्यग्दृष्टि आत्मा (अप्पणो तच्चं सम्मं उवलद्धो) अपने ही शुद्ध आत्मा के परमानन्दमयी एक स्वभाव रूप तत्व को संशय आदि से रहित भले प्रकार जानता हुआ (जदि रागदोसे जहदि) यदि शुद्धात्मा के अनुभव रूपी लक्षण को धरने वाले वीतराग चारित्र के बाधक चरित्र मोहरूपी रागद्वेषों को छोड़ देता है। (सो सुद्ध अप्पाणं लहदि) तब वह निश्चय अभेद रत्नत्रय में परिणमन करने वाला आत्मा शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव रूप आत्मा को प्राप्त कर लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

**शंका** - ज्ञान कण्ठिका में (उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुबभवं दुक्खं) ऐसा कहा था यहां 'जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्ध' ऐसा कहा है दोनों में ही एक मोक्ष की बात है, इनमें विशेष क्या है ?

**समाधान** - वहां तो शुभ या अशुभ उपयोग को निश्चय से समान जानकर फिर शुभ से रहित शुद्धोपयोग रूप निज आत्म स्वरूप में ठहरकर मोक्ष पाता है, इस कारण से शुभ अशुभ सम्बन्धी मूढ़ता हटाने के लिए ज्ञानकंठिका को कहा है। यहा तो द्रव्य, गुण, पर्यायों के द्वारा आप्त अरहंत के स्वरूप को जानकर पीछे अपने शुद्ध आत्मा के स्वरूप में ठहरकर मोक्ष प्राप्त करता है। इस कारण से यहाँ आप्त और मूढ़ता के निराकरण के लिए ज्ञान कंठिका को कहा है इतना ही विशेष है।

**समीक्षा** - शुद्ध स्वरूप-अबंध स्वरूप/स्वतंत्र स्वरूप/ अमिश्र स्वरूप होता है इसलिए जब जीव मोहात्मक, रागात्मक एवं द्वेषात्मक बंधनों से रहित होता है तब वह शुद्ध हो जाता है। जब वह शुद्ध हो जाता है तब वह स्वस्वरूप को



समग्रता से, पूर्णरूप से प्राप्त कर लेता है। यह ही स्वात्म उपलब्धि है। जिस प्रकार अधिक परमाणु जब परस्पर बंध जाते हैं, तब स्कंधावस्था की उत्पत्ति होती है और यह स्कंधावस्था पुद्गल की अशुद्ध अवस्था होती है और जब परमाणु स्वतंत्र हो जाता है और स्वतंत्र रहता है तब वह शुद्ध होता है। इसी प्रकार जीव को भी जानना चाहिये। जीव को पूर्ण स्वतंत्र अवस्था चौदहवें गुणस्थान के अंत में अर्थात् सिद्ध अवस्था में मिलती है तथापि इस गाथा में, आचार्य श्री ने मोह, राग और द्वेष से रहित जीव को शुद्ध कहा है। इसका कारण यह है कि मोह ही जीव को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से परतंत्र करने में कारण है। मोह से रहित अन्य कर्म जीव के शुद्ध स्वभाव को उतना नहीं घातते हैं, जितना मोहनीय कर्म घात करता है इसीलिए भावात्मक दृष्टि से मोहक्षय ही मोक्ष है। राजवार्तिक में आचार्य अकलंक देव स्वामी ने कहा भी है-

**तत्क्षयहेतुः केवलोत्पत्तिरिति हेतु लक्षणविभक्तिनिर्देशः (2)** तत्क्षयः केवलज्ञानोत्पत्तेर्हेतुरिति कृत्वा तदभिसंबन्धाद्योतिकता हेतुलक्षणया विभक्तया निर्देशः क्रियते।

मोहनीय कर्म का क्षय ही मुख्यतया केवल ज्ञान की उत्पत्ति में कारण है, यह बात बताने के लिए पंचमी विभक्त से मोहक्षय की हेतुता का द्योतन किया है। अर्थात् मोहनीय कर्म का क्षय ज्ञानावरणीयादि के क्षय का कारण है।

## पूर्वोक्त विधान से सर्व अरिहंत कर्म क्षय करते हैं।

**सव्वे वि य अरहंता विधाणेण खविद कम्मसा।**
**किच्चा तथोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं।। (82)**

If is in this way that seven all the Arahantas have destroyed portions of Karme, preaching the same they attined Nirvana my obeisance to them.

आगे आचार्य अपने मन में यह निश्चय करके वैसा ही कहते हैं कि पहले द्रव्य गुण पर्यायों के द्वारा आप्त अरहंत के स्वरूप को जानकर पीछे उसी रूप अपने आत्मा में ठहरकर सर्व ही अरहंत हुए मोक्ष गये हैं -

(तेह विहाणेण) इसी विधान से जैसा पहले कहा है कि पूर्व में द्रव्य, गुण, पर्यायों के द्वारा अरहन्तों के स्वरूप को अपने आत्मा में ठहराकर अर्थात्

पुनःपुनः आत्मध्यान करके (खविदकम्मंसा) कर्मों के भेदों को क्षय करके (सव्वे वि य अरहंता) सर्व ही अरहंत हुए (तहोवदेस किच्चा) फिर वैसा ही उपदेश करके कि अहो भव्य जीवों ! यह निश्चय रत्नत्रमयी शुद्धात्मा की प्राप्ति रूप लक्षण को धरने वाला मोक्ष मार्ग है, दूसरा नहीं है, (ते णिव्वादा) वे भगवान् निवृत्त हो गये अर्थात् अक्षय अनंत सुख से तृप्त सिद्ध हो गये (तेसिं णमो) उनको नमस्कार हो। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस तरह मोक्ष मार्ग का निश्चय करके अपने शुद्ध आत्मा के अनुभव स्वरूप मोक्ष मार्ग और उसके उपदेशक अरहंतों को इन दोनों के स्वरूप को इच्छा करते हुए 'नमोस्तु तेभ्य' इस पद से नमस्कार करते हैं यह अभिप्राय है।

आगे कहते हैं कि जो पुरुष रत्नत्रय के आराधना करने वाले हैं, वे ही दान, पूजा, गुणानुवाद, प्रशंसा तथा नमस्कार के योग्य होते हैं और कोई नहीं।

(दंसणसुद्धा) अपने शुद्ध आत्मा की रुचिरूप सम्यग्दर्शन को साधने वाले, तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोष रहित तत्त्वार्थ का श्रद्धानरूप लक्षण के धारी सम्यग्दर्शन से जो शुद्ध हैं (णाणपहाणा) उपमा रहित स्वसंवेदन ज्ञान के साधक वीतराग सर्वज्ञ से कहे हुए परमागम के अभ्यास रूप लक्षण के धारी ज्ञान में जो समर्थ हैं तथा (समग्गचरियत्था) विकार रहित निश्चल आत्मानुभूति के लक्षण रूप निश्चय चारित्र के साधन वाले आचार आदि शास्त्र में कहे हुए मूलगुण और उत्तरगुण की क्रिया रूप चरित्र से जो पूर्ण है अर्थात् पूर्ण चरित्र के पालने वाले (पूरिसा) जो जीव हैं वे (पूजासक्काररिहा) द्रव्य व भावरूप पूजा व गुणों को प्रशंसा रूप सत्कार के योग्य है, (दाणस्य य हि) तथा दान के योग्य है। (णमोतेसिं) उन पूर्व में कहे हुए रत्नत्रय के धारियों को नमस्कार हो क्योंकि वे ही नमस्कार के योग्य हैं।

आचार्य श्री ने इसके पहले की गाथा में सव्वे आप्त को नमस्कार करके यहां सच्चे गुरु को नमस्कार किया है। इस गाथा में बता दिया है कि जो साधु निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय के धारी है उन्हीं को अष्ट द्रव्य से भाव सहित पूजना चाहिए, तथा उन्हीं की प्रशंसा करनी चाहिए। उन्हीं का पूर्ण आदर करना चाहिए तथा उन्हीं को दान देना चाहिए व उन्हीं को नमस्कार करना चाहिए। प्रयोजन यह है कि उच्च आदर्श ही हमारा हितकारी हो सकता है। उन्हीं का भाव व आचरण हम उपासकों



को उन रूप वर्तन करने की योग्यता की प्राप्ति के लिए प्रेरणा करता है। निर्ग्रन्थ साधु ही मोक्षमार्ग पर चलते हुए भक्त जनों को साक्षात् मोक्ष का मार्ग दिखाने वाले होते हैं। जैन गृहस्थों का मुख्य कर्त्तव्य है कि ऐसे साधुओं की सेवा करें व साधु पद धारने की चेष्ट में उत्साही रहे।

**समीक्षा -** आचार्य श्री ने इस गाथा में शुद्ध आत्मोपलब्धि करने का उपाय तथा उस अवस्था को प्राप्त करने का उपाय बताने वाले अरिहंत को नमस्कार किया है। प्रत्येक जीव अनादिकाल से कर्म बंधन से बद्ध रहता है इसलिए जो भी मुक्त हुए हैं वे भी कर्म बंधन को काटकर ही मुक्त हुए हैं। इसलिए सम्पूर्ण सिद्ध जीव कर्म बंधनों को नष्ट करके ही सिद्ध होते हैं और भी कोई उपाय मुक्त होने का है ही नहीं। यह आत्म उपलब्धि रूप सिद्धि समस्त सांसारिक आदि से रहित है। यह सिद्धि केवल श्रद्धा का ज्ञान या तपस्या या वरदान या भक्ति या कर्म से नहीं मिल सकती है परन्तु रत्नत्रय की साधना से तथा उसकी पूर्णता से संपूर्ण कर्म को नष्ट करने पर ही मिलती है। प्रकारांतर से इसी सिद्धान्त का वर्णन विभिन्न आचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है -

**मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।**
**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तत्दुणलब्धये।।** आ उमास्वामी

जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों के भेदने वाले हैं, और विश्वतत्त्व के ज्ञाता है, उनकी मैं उनके समान गुणों की प्राप्ति के लिए सदा वन्दना करता हूँ।

**आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।**
**भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।। (5)** स्वामी समन्तभ्रद

नियम से आप्त को दोष रहित, सर्वज्ञ और आगम का स्वामी होना चाहिए। क्योंकि अन्य प्रकार से आप्तपना नहीं हो सकता ।

उपरोक्त सिद्धान्त से समस्त एकान्त मतों का खण्डन हो जाता है जो केवल दर्शन से या ज्ञान से या चरित्र या दर्शन ज्ञान से, दर्शन चारित्र से, ज्ञान चारित्र से या तीनों के बिना मोक्ष चाहते हैं वे कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते है। इसीलिए मोक्ष का मार्ग है- सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

## स्व-आत्मश्रद्धान बिना ज्ञान व धर्मकर्म संसार कारण

आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- आत्मशक्ति से ओतप्रोत...क्या मिलिए...)

सम्यग्दर्शन या आत्मश्रद्धान बिन सभी धर्मकर्म है व्यर्थ।
देवशास्त्र-गुरु-श्रद्धान द्वारा तत्त्वार्थश्रद्धान है प्रमुख।। (1)

इससे ही होता ज्ञान सुज्ञान, अन्यथा ज्ञान मिथ्या है।
आचरण भी होता मिथ्याचरण, जिससे बढ़े संसार है।। (2)

सम्यक् दर्शन यथार्थ श्रद्धान, जो वस्तु जैसे-वैसे श्रद्धान।
इसे ही कहते हैं सत्यार्थ रुचि, अथवा आत्मप्रतिती या आत्मविश्वास।
पंचलब्धि पाकर जब जीव करे, मोह का उपशम या क्षयोपशम।
अथवा क्षय करते तब होता, सम्यग्दर्शन अनन्तानुबन्धी का भी उपशम। (4)

तब आत्म में होता प्रगट सम्यक्दर्शन, जो आत्मा का प्रमुख गुण।
अनन्तशक्ति सम्पन्न यह गुण जिससे, तत्त्वार्थों का होता श्रद्धान।। (5)

षट् द्रव्य व सप्त तत्त्व तथाहि नव पदार्थ सहित देव शास्त्र गुरु।
इनसे सहित स्व-शुद्धात्मा का भी होता श्रद्धान ऐसा गुणमहान्।। (6)

इनमें से प्रमुख स्व-शुद्धात्म का श्रद्धान होना है अनिवार्य।
स्व-शुद्ध श्रद्धान हेतु ही षट् द्रव्यादि का श्रद्धान उपादेय।। (7)

स्वयं में स्व-शुद्धात्मा के श्रद्धान बिन द्रव्यादि के श्रद्धान असंभव।
जो स्वयं का श्रद्धान नहीं कर पाते, अन्य का श्रद्धान कैसे/(नहीं) सम्भव।। (8)

जो दीपक स्वयं अप्रकाशी है वह कैसे देगा अन्य को प्रकाश।
जो होता स्वयं अज्ञानी वह कैसे देगा अन्य को ज्ञान।। (9)

आत्मश्रद्धान से होता जीवों को मैं हूँ निश्चय से शुद्ध जीव।
अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यादि सम्पन्न कर्मबन्ध से अशुद्ध जीव।। (10)



ऐसे श्रद्धान से उन्हें होता है सप्ततत्त्व-नव पदार्थ का श्रद्धान।
जिससे उन का ज्ञान भी हो जाता कुज्ञान से सम्यक ज्ञान।। (11)

जिससे वे होते चतुर्थगुणस्थानी जीव, यहाँ से जैनत्व प्रारम्भ।
उत्तरोत्तर आत्मविशुद्धि से बनते हैं श्रावक से लेकर श्रमण।।(12)

श्रमण बनकर ध्यान-अध्ययन व तप त्याग से करते आत्मविशुद्धि।
जिससे गुणस्थान आरोहण द्वारा बनते हैं अरिहंत-सिद्ध ।। (13)

सम्यग्दर्शन है बीज समान जिससे बनता वृक्ष से फल तक।
बीज के बिना यथा न वृक्ष व फल तथाहि सम्यग्दर्शन बिन न धर्म (मोक्ष) (14)

''दंसण मूल धम्मो'' कहा सम्यग्ज्ञान से दर्शन व चारित्र उपकृत ।
तीनों की पूर्णता से मोक्ष मिले 'कनक सूरी' करते रत्नत्रय।। (15)

नन्दौड़ 12.08.2018 रात्रि 08:44

## सम्यग्दर्शन के भेद

**समत्तरयणसारं मोक्खमहारुक्खमूलमिदि भणियं।**
**तं जाणिज्जइ णिच्छयववहारसरुवदो भेदं।।4।।**

**अर्थ :-** सम्यग्दर्शन ही तीन रत्नों में प्रमुख रत्न है, यह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी वृक्ष का मूल जड़ है। इसी सम्यग्दर्शन के निश्चय सम्यग्दर्शन एवं व्यवहार सम्यग्दर्शन ऐसे दो भेद हैं।

**भावार्थ :-** जीवों के परिणामों में जो विशुद्धता प्राप्त होती है वह बाह्य और आभ्यंतर कारणों के निमित्त से विशुद्धतात्मा प्राप्त होती है। उससे आत्मा की प्रतीति अर्थात् आत्मा की अभिरुचि होती है और आत्मिक गुणों की श्रद्धा होना यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। तथा आत्मा के स्वरूप को प्रकट-व्यक्त कराने वाले देव शास्त्र गुरु और धर्म का श्रद्धान होना यह व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

आत्मा अनंत गुणों का पिण्ड है, उन गुणों में सम्यग्दर्शन भी आत्मा का गुण है, वह सम्यग्दर्शन आत्मा को अपनी आत्मा के स्वभाव में स्थिर कराता है और उससे आत्मा अपने स्वरूप में परिणमन करता है, अपने आत्मगुणों में अभिरुचि

करता है व पर पदार्थों को अपने से भिन्न समझकर उनको अपनाता नहीं है, यही सम्यग्दर्शन है।

## सम्यग्दृष्टि कैसा होता है ?

**भयविसणमलविवज्जिय, संसार सरीरभोग णिव्वण्णो।**
**अट्ठगुणंगसमग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।। 5।।**

**अर्थ :-** सात प्रकार के भयों से रहित, सात व्यसनों से रहित, पच्चीस शंकादि दोषों से रहित, तथा संसार शरीर और भोगों में विरक्त भाव को रखकर एवं निःशंकादिक आठ गुणों सहित होकर, पंचपरमेष्ठी में दृढ़ श्रद्धा भक्ति भावना रखना विशुद्ध सम्यग्दर्शन है।

## सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता

**णियसुद्दप्पणुरत्तो बहिरप्पावच्छवजिओ णाणी।**
**जिणमुणिधम्मं मण्णइ गइदुक्खीहोइ सद्दिट्ठी।। 6।।**

**अर्थ :-** जो ज्ञानी भव्यात्मा पुरुष अपनी आत्मा के शुद्ध स्वभाव में अनुरक्त-तन्मय होता है और पर पदार्थ जन्य पुद्गलों की शुभाशुभ पर्यायों से विरक्त होता है और श्री जिनेन्द्र भगवान्, निर्ग्रंथ (नग्न) मुनि गुरु तथा जिनधर्म को श्रद्धाभाव से भक्तिपूर्वक मानता है वह संसार के समस्त प्रकार के दुःखों से रहित सम्यग्दृष्टि है।

**भावार्थ :-**शुद्ध बुद्ध ज्ञायक एक स्वभावी परम वीतराग रूप आत्मा के स्वभाव में तन्मय होकर देव शास्त्र गुरु धर्म की प्रतीति कर वीतराग परिणति में स्थिर होने की भावना सो सम्यग्दर्शन है।

## 44 दोष रहित सम्यग्दृष्टि

**मयमूढमणायदणं संकाइवसण भयमईयारं।**
**जेसिं चउदालेदी ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।। 7।।**

**अर्थ :-** जिनके आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सात प्रकार के भय और पांच प्रकार के अतिचार इस प्रकार



चवालीस दूषण नहीं है वे सम्यग्दृष्टि है।

## 77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक

**उहयगुणवसण भयमलवेरहग्गाइचारभत्तिविग्घं वा।**
**एदे सत्तत्तरिया दंसणसावयगुणा भणिया।। 8।।**

**अर्थ :-** उभय गुण अर्थात् श्रावक के आठ मूलगुण और बारह व्रत (उत्तम गुण) सप्तव्यसन, सातभय, आठमद, आठ शंकादि दोष, तीन मूढ़ता, छह अनायतन इन दोषों से रहित तथा वैराग्य उत्पन्न करने वाली भावनाएं और मूल गुणों में और उत्तर गुणों में लगने वाले अतिचार अथवा सम्यक्त्व के पांच अतिचार रहित भक्ति व विघ्न रहित इन सबको मिलाकार सतहत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण होते हैं इस प्रकार भगवान् ने कहा है ।

## मुक्ति सुख के पात्र कौन ?

**देवगुरूपमयभत्ता संसार सरीर भोग परिचित्ता।**
**रयणत्तयसंजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।। 9।।**

**अर्थ :-** जो भव्य मनुष्य देव शास्त्र और गुरु के भक्त हैं और जिन्होंने संसार शरीर और भोगों से मुख मोड़ लिया है अर्थात् त्याग कर दिया है, तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र से संयुक्त है ऐसे वे मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होते हैं।

## सम्यग्दर्शन के बिना दीर्घ संसार

**दाणं पूया सीलं उपवासं बहुविहंपि खवणंपि।**
**सम्मजुदं मोक्खसुहं सम्मविणा दीहसंसारं।। 10।।**

**अर्थ :-** चतुर्विध संघ मुनि आर्यिका पिंच्छी कमंडलुधारी त्यागी व व्रतधारी श्रावक श्राविकाओं के लिए आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान व अभयदान वस्तिकादान देना। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, दिगम्बर साधु और जिनवाणी शास्त्र की पूजा करना। एक देश या सकल देश निरतिचार ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना। अष्टमी चतुर्दशी प्रौषध के साथ उपवास करना अथवा अन्य भी एक दो तीन आदि उपवास करना और भी अनेक धर्मानुष्ठान के उपवास करना। इस प्रकार सम्यक्त्व सहित

करने पर मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। अर्थात् सम्यक्त्व के बिना सब दीर्घ संसार के लिए कारण है।

## रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

**सम्मविणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ णियमेण।**
**तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किट्ठमिदि जिणुदिट्ठं।।47।।**

**अर्थ :-** सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम पूर्वक नहीं होते हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय में सम्यक्त्वगुण प्रशंसनीय है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

## अहो ! सबसे बड़ा कष्ट मिथ्यात्व

**तणुकुट्ठी कुलभंगंकुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।**
**दाणाइ सुगुण भंगंसुगइभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं।। 48।।**

**अर्थ :-** जिस प्रकार कोढ़ी रोगवाला मनुष्य कुष्ठ रोग शरीर के कारण अपने कुल को नष्ट करता है ठीक उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य दान पूजा चारित्र और धर्मायतनों का विध्वंस करता है, इसलिये मिथ्यात्व बहुत ही कष्टप्रद दुःखदायक है।

मिथ्यात्व से समस्त आत्मीय गुण नष्ट हो जाते हैं और सच्चे देव शास्त्र गुरु तथा धर्माचरणों से विपरीत भाव व क्रिया बनते हैं। अर्थात् मिथ्यात्व का सेवन करना महा दुःखों का ही कारण है।

**भावार्थ :-** मिथ्यात्व से शुभ भाव, शुभ क्रिया, शुभगति, सुकुल, सदुण, धर्माचरण, स्वर्ग मोक्ष आदि सभी दूर होते हैं।

## सम्यग्दृष्टि ही धर्मज्ञ है

**देवगुरुधम्मगुण चारित्तं तवायार मोक्खगइ भेयं।**
**जिणवयणसुदिट्ठिविणा दीसइ किह जाणए सम्मं।। 49।।**

**अर्थ :-** मनुष्य सम्यग्दर्शन के बिना देव गुरु धर्म क्षमादि गुण चारित्र तप मोक्षमार्ग तथा श्री जिनेन्द्र भगवान् के वचन को सही रूप से यथार्थरूप से नहीं जान सकते हैं।



**भावार्थ :-** वास्तव में जिनके सम्यग्दर्शन नहीं है उनके देव, शास्त्र, गुरु, धर्म, उत्तम क्षमादि गुण,सामायिक छेदोपस्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसांप्राय यथाख्यात चारित्र को, तपाचार को और मोक्षमार्ग को भी नहीं जानते हैं।

## मिथ्यादृष्टि की पहचान

**एक्कु खणं ण विचिंतइ मोक्खणिमित्तं णियप्पासाहावं।**
**अणिसं विचित्तपावं बहुलालावं मणे विचिंतेइ।। 50।।**

**अर्थ :-** मोही अज्ञानी संसारी प्राणी मिथ्यादृष्टि जीव एक क्षण मात्र भी अपने लिए मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्ष सिद्धि के लिए अपने आत्म स्वरूप का विचार चिंतवन मनन नहीं करता है, परन्तु दिन रात आरंभ परिग्रह आदि परवस्तु के पाप कार्यों का बारबार विचार व चिंता करता है।

## साम्य भाव का घातक

**मिच्छामइमय मोहा सवमत्तो बोलए जहा भुल्लो।**
**तेणं ण जाणइ अप्पाणं सम्म भावाणं।। 51।।**

**अर्थ :-** मिथ्यामति मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्याबुद्धि के अभिमान से मदोन्नत होकर मदिरापान करने वाली मार्ग भ्रष्ट भुल्लड मनुष्य के समान यद्वा तद्वा मिथ्या प्रलाप करते हैं, और वे मोह के उदय से अपनी आत्मा को नहीं जानते हैं। तब अपने आत्मा के समता भाव को कैसे जानेंगे ? अर्थात् सर्वथा नहीं जानेंगे।

## कर्मक्षय का हेतु सम्यक्त्व

**मिहरो महंधयारं मरुदो मेहं महावणं दाहो।**
**वज्जो गिरिं जहाविय सिंज्जइ सम्मे तहा कम्मं।। 52।।**

**अर्थ :-** जिस प्रकार सूर्य अंधकार को तत्काल नष्ट करता है। वायु मेघ के समूह को नाश कर देती है। दावानल वन को जला देता है। वज्र पर्वतों का भेदन(चूर्ण) कर देता है। उसी प्रकार एक सम्यक्त्व भी समस्त कर्मों का नाश कर देने में समर्थ है।

## सम्यग्दर्शन रूपी रत्न दीपक

**मिच्छंधयाररहियं थियमज्झं मिव सम्मरयणदीव कलावं।**
**जो पजलइ स दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुदिट्ठं।। 53।।**

**अर्थ :-** जो धर्मात्मा अपने हृदय मंदिर में सम्यक्त्व रत्न रूपी दीपक प्रज्ज्वलित करता है उसको त्रिलोक के समस्त पदार्थ स्वयमेव प्रतिभासित होते हैं।

## मात्र बाह्य लिंग कर्म क्षय का हेतु नहीं

**कम्मु ण खवेइ जो हु परबह्म ण जाणे सम्मउम्मुक्को।**
**अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंग घेत्तूण किं करई।। 87।।**

**अर्थ :-** जो जीव परब्रह्म को परमात्मा को नहीं जानता है, सम्यग्दर्शन से रहित है, वह तो ना ग्रहस्थ धर्म में है, ना साधु मार्ग में साधु अवस्था में है। केवल नग्नत्व लिंग को धारण कर क्या करेगा, क्या पायेगा ? कर्मो का नाश तो सम्यक्त्व पूर्वक जिनलिंग को धारण करने से होता है।

## आत्मज्ञान बिना बाह्य लिंग क्या कर सकता है ?

**अप्पाणं पिण पिच्छइ ण मुणइ णवि सद्दहइ ण भावेइ।**
**बहुदुक्खभारमूलं लिंग घित्तूण किं करई।। 88।।**

**अर्थ :-** जो अपनी आत्मा को देख नहीं पाता, नहीं जानता, आत्मा का श्रद्धान नहीं करता, अपने आत्मगुणों के प्रति भावों को नहीं लगाता, आत्म स्वरूप की रुचि नहीं है, आत्मा आत्मपरिणत नहीं होता है वह साधु-बहुत ही दुःखी अवस्था को प्राप्त होता है।

## आत्मा की भावना बिन दुःख ही है

**जाव ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो तावं।**
**तेण अणंत सुहाणं अप्पाणं भावए जोई।। 89।।**

**अर्थ :-** जब तक अपनी आत्म का सत्यस्वरूप नहीं जाना जाता, तब तक आत्मा को कर्मजन्य दुःख का भार है।

जब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव आत्मा को जान



लेता है,शुद्ध भावों को प्राप्त होता है, उसी समय अनंत सुख की प्राप्ति स्वयंमेव होती जाती है। इसलिए मुनिगण शुद्धस्वरूप अपने आत्मस्वभाव का ही ध्यान करते हैं। अपने शुद्ध आत्म स्वरूप में तन्मय रहते हैं । और मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेते हैं ।

## सम्यक्त्व से निर्वाण प्राप्ति

**णियतच्चुबलद्धि विणा सम्मत्तु बलद्धि णत्थि णियमेण।**
**सम्मत्तुबलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठ।। 90।।**

**अर्थ :-** अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं है और सम्यक्त्व के बिना मोक्ष की प्राप्ति सर्वथा नहीं है। यह श्री जिनेन्द्र भगवान् का सुदृढ़ निश्चित सिद्धान्त है ।

## परमात्मा ध्यान का कारण

**पवयणसारब्भासं परमप्पज्झाण कारणं जाण।**
**कम्मक्खवणणिमित्तं कम्मक्खवणेहि मोक्खसोक्खं हि।। 91।।**

**अर्थ :-** भगवान् जिनेन्द्र देव प्रणीत प्रवचनसार का अभ्यास, परमात्मा का ध्यान के सिद्धि के लिए कारण बनता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति का उपाय आत्म ध्यान ही है और ध्यान के लिए आगम शास्त्र का अभ्यास भी परब्रह्म परमात्मा के ध्यान का कारण बनता है। विशुद्ध आत्मा के स्वरूप का ध्यान ही कर्मो का नाश करने में समर्थ है और इसी से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

## मिथ्यात्व सहित मुक्ति नहीं

**तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिच्छ भावसंजुत्तो।**
**सव्वण्णुवएसे सो णिव्वाणसुखं ण गच्छेई।। 103।।**

**अर्थ :-** जो मिथ्यात्व कर्म के उदय से मिथ्या भावों को धारण करता है और मिथ्या भावों के उदय में अत्यंत तीव्र रूप से तपश्चरण भी करता है, इससे केवल मात्र शरीर को ही कष्ट देता है, परन्तु निर्वाण पद को नहीं पाता है मोक्ष नहीं जा सकता है।

इस मिथ्या तपस्या का फल संसार के अल्प सुख के लिए प्राप्त होता है फिर भी इस मिथ्या फल के उदय से मिथ्या कार्य ही किया करता है।

क्योंकि निज आत्मा के सम्यग्दर्शन युक्त तपश्चरण नहीं है। मिथ्यात्व सहित तपश्चरण कर्म बंध से संसार भ्रमण के लिए कारण है और सम्यक्त्व सहित तपश्चरण कर्म निर्जरा का कारण होने से निर्वाण पद को प्राप्त होता है अर्थात् सिद्ध स्थान पर गमन करता है। यह समस्त उपदेश सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान् का है।

## रागी को आत्मा का दर्शन नहीं

**रायादिमलजुदाणं णियप्परुवं णि दिस्सए किं पि।**
**समला दरिसे रुवं ण दिस्सए जहा तहा णेयं।। 104।।**

**अर्थ :-** जिस प्रकार मलिन दर्पण में अपना यथार्थ शरीर का रूप दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार जिनका आत्मा मिथ्यारूप रागद्वेष आदि दोषों से मलिन है, उस मलिन आत्मा में आत्मा का यथार्थ स्व-रूप कुछ भी दिखाई नहीं देता है।

## अज्ञानी का तप

**णवि जाणइ जिणसिद्धसरुवं तिविहेण तह णियप्पाणं।**
**जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंडइ दीहसंसारे।। 124।।**

**अर्थ :-** जो मुनि न तो अरहंत देव का स्वरूप जानता है और न भगवान् सिद्ध परमेष्ठि का स्वरूप जानता है। तथा वह परमात्मा अंतरआत्मा और बहिरात्मा इन तीन भेदों को भी नहीं जानता है। फिर निजात्मा को कैसे जान पायेगा ? नहीं जानता है। ऐसे साधु तीव्र तपश्चरण करते हैं वे द्रव्यलिंगी है। उनका जन्म मरण नहीं छूटता है, वे संसार से मुक्त नहीं होते हैं बल्कि संसार में दीर्घ काल तक भ्रमण करते हैं।

**भावार्थ :-** पंचपरमेष्ठी का स्वरूप और आत्मा के स्वरूप को जानना और श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पंचपरमेष्ठी और आत्मा का स्वरूप नहीं जानता उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है। सम्यग्दर्शन के बिना तपश्चरण संसार में दीर्घकाल तक भ्रमण करता है।

## निश्चय व्यवहार जाने बिना सब मिथ्या

**णिच्छयववहारसरुवं जो रयणत्तय ण जाणइ सो।**



**जं कीरइ तं मिच्छारुवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं।। 125।।**

**अर्थ :-** जो भी हो निश्चय नय और व्यवहार नय रूप रत्नत्रय को नहीं जानता है, वह जो कुछ कितना भी तपश्चरण आदि करे तो भी वह सब मिथ्यारूप होता है, मोक्ष मार्ग में कर्म निर्जरा रूप से काम में नहीं आता है। क्योंकि रत्नत्रय ही मोक्ष का कारण है। अगर निश्चय व्यवहार रूप से न जानकर तपस्या अनुष्ठान करता है तो मोक्ष मार्ग में प्रापक नहीं है उसको मिथ्यातप कहना चाहिए और ऐसे मिथ्यातप को करने वाला मिथ्यात्वी समझना चाहिए। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

## भव बीज

**किं जाणिऊण सयलं तच्चं किच्चा तवं च किं बहुलं।**
**सम्मविसोहि विहीणं णाणं त्तवं जाण भवबीय।। 126।।**

**अर्थ :-** आचार्य कहते हैं कि शुद्ध सम्यग्दर्शन के बिना समस्त तत्वों को जान लेने से क्या लाभ है ? तथा बिना शुद्ध सम्यग्दर्शन घोर तपश्चरण करने से भी क्या लाभ है ? क्योंकि शुद्ध सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान तप दोनों ही संसार के कारण समझना चाहिये।

## संसार में वृद्धि

**वय गुण सील परिसहजयं च चरियं च तवं सडावसयं।**
**ज्झाणाझयणं सव्वं सम्मविणा जाण भववीयं।। 127।।**

**अर्थ :-** मुनिजन तथा श्रावक देशव्रती भी जब तक सम्यग्दर्शन के अभाव में व्रत पालन करना, गुप्ति समिति पालन करना, शीलव्रत पालन करना, परिषहों को जीतने का प्रयास-श्रम करना, चारित्र का पालन करना, घोर तपश्चरण करना, छह आवश्यकों का पालन करना, ध्यान अध्ययन करना ये सब संसार के कारण भूत बीज ही है ऐसा समझना।

ये सब क्रियायें करना तो अत्यंत आवश्यक है, इनके करने से कर्मों की निर्जरा होती है, मूक्ति फल मिलता है परन्तु वह सम्यग्दर्शन सहित हो, इसे हमे जानकर श्रद्धान के साथ सब क्रियायें कार्यकारी बनती हैं। यही इसका

तात्पर्य है।

## परलोक कैसे सुधरेगा ?

**खाई पूया लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।**
**इच्छइ जइ परलोंय तेहिं किं तव परलोयं।। 128।।**

**अर्थ :-** आचार्य बड़े प्रेम से कहते हैं कि हे वत्स योगी! हे मुनिराज! यदि तू अपने परलोक को सुधारने की इच्छा करता है तो फिर अपनी ख्याति-प्रसिद्धि, सम्मान, पूजा, लाभ आदि इनकी क्यों इच्छा करता है ? मान आदर सत्कार इनकी इच्छा रखने से अपना क्या लाभ है ? वास्तव में हानि है। जो परलोक-मोक्षस्थान को पहुंचना है, तो ये सभी लाभकारी नहीं होकर हानि करने वाले हैं। लोक विरुद्ध और निश्चय मोक्ष मार्ग और मोक्ष के विरुद्ध है। इससे हे मुनि! इन बातों से तेरा परलोक सुधार कभी नहीं हो सकेगा। मुक्ति स्थान अभी बहुत दूर है। और तूं यहीं पर अटक रहा है। सावधान होकर आगे गमन कर। इससे अधिक क्या कहे।

## अपनी शुद्ध आत्मा में रुचि

**कम्माइ विहाव सहावगुणं जो भाविऊण भावेण।**
**णियसुद्धप्पा सच्चइ तस्स य णियमेण होइ णिव्वाणं।। 129।।**

**अर्थ :-** जो मुनिराज कर्म के उदय से होने वाले आत्मा के वैभाविक गुणों का (रागद्वेष मोह मद मत्सर कषाय आदि भावों का) चिंतवन करता है, तथा उन कर्मों के नाश होने का भी प्रयास करता है पुरुषार्थ करता है तब उस चिंतवन और पुरुषार्थ से अपने स्वभाविक आत्मा के गुणों का चिंतवन होता है और अपने निज आत्मा के उत्तम क्षमा मार्दव आजर्व आदि अपने आत्मा में स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं। जिसको अपने शुद्ध आत्मा का प्रेम होता है वह इन दोनों के यथार्थ स्वरूप का चिंतवन करते हैं। जो अपने शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करता है उसको अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।





## मेरी तीव्र प्रज्ञा बढ़ने व शिक्षा लेने के कारण

आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- छोटी-छोटी गैया...)

**मेरी प्रज्ञा तीव्र बढ़ती है जब कोई सत्य को असत्य माने (कहे, लिखे)।**
**सुगुण को कुगुण, सुगुणी को कुगुणी भी माने व कहे लिखे।।**
**तथाहि समस्या होने पर, समाधान हेतु तीव्र बढ़े।**
**शिष्यों के सुधार हेतु जब मैं, उनके दोष कहूँ प्रायश्चित्त दूँ।। (1)**

**पढ़ने से अधिक पढ़ाने पर, उससे अधिक लिखने पर।**
**मेरी तीव्र प्रज्ञा बढ़ती है तथा शिक्षा मिलती अन्य के दोष पर।।**

**यथा घर्षण से उष्णता बढ़ती, अधिक से उत्पन्न होती अग्नि।**
**तथाहि उक्त कारणों से मेरे, चिन्तनादि बढ़े प्रज्ञा मेरी।। (2)**

**तीर्थंकर बुद्ध आदि यथा पर दोष, दुःख से लेते हैं शिक्षा।**
**तथाहि मैं भी स्व-पर-दोष व दुःख से भावित हो लेता हूँ शिक्षा।।**
**इससे मुझे व अन्य के भी होते हैं बहुविध उपकार।**
**श्रद्धा-प्रज्ञा व अनुभव बढ़े, दोष दूर से होता उपकार।। (3)**

**इसमें होते हैं अनेक कारण, अन्तरंग तथा बाह्य में।**
**इसमें मेरे अन्तरंग कारण है, सनग्रसत्यग्राही स्वभाव में।।**
**स्व-पर विश्व हित हेतु भावना, समता-शान्ति-संवेदना।**
**गुणग्राही व गुणेषु प्रमोद, दुःखी/(दोषी) जीव प्रति कृपाभावना।। (4)**

**हर जीव प्रति मैत्री भावना, विरोधी प्रति भी साम्य भावना।**
**उदार-सहिष्णुता-क्षमा-मृदुता-सरल-सहजता भावना।।**
**इन सब में मेरी आध्यात्मिक भावना, ''मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध''।**
**अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यमय, तन-मन-इन्द्रियों से रहित।। (5)**

ऐसा ही हर संसारी जीव भी, तथाहि कर्मबन्ध से दोषी।
कर्म के कारण होते विभिन्न भाव-व्यवहार यह विभाव परिणती।।
यदि मैं भी अभी स्व-पर दोषों के कारण से करूँगा विभाव परिणती।
मेरे दोष तो और बढ़ते जायेंगे, नहीं बनेगी शुद्ध परिणती।। (6)

इत्यादि अनेक चिन्तन-मनन, ध्यान-अध्ययन व शोध-बोध से।
स्वयं को ही मैं पवित्र बनाता हूँ, जिससे बढ़ती प्रज्ञा मेरी।।
इससे समस्याओं के भी होते समाधान, जिससे होता आत्मविकास।
इन सब से मुझे मिलती अनेक शिक्षायें, 'कनक' का होता आत्मविकास।(7)

मेरे अधिकांश ज्ञान से ले शिक्षा-अनुभव-लेखन-प्रवचन।
उपरोक्त कारणों से होते हैं और भी बढ़ा रहा हूँ सतत।। (8)

नन्दौड़ 18.08.2018 प्रातः 09:31

## मेरे कम प्रयास से अधिकतम सफलता के सूत्र
## (मेरे सत्य-साम्य-शान्ति पूर्ण कम प्रयास के सूत्र)

आचार्य कनकनन्दी

(चाल :- 1. छोटी-छोटी गैया... 2. शारदे नमस्कार...)

स्व-पर विश्व हित हेतु चिन्तन करूँ,
किसी को राजी या किसी को नाराज न करूँ।
सनम्र सत्यग्राही उदार मैं बनूँ,
अन्धानुकरण-कट्टर व दंभी न बनूँ।। (1)

आत्मा की पवित्रता को प्रमुख करूँ,
बाह्य दिखावा-आडम्बर से दूर मैं रहूँ।
स्व-पर-हित-चिन्तन-लेखन करूँ,
अन्य के कारण चिन्ता-अशान्ति न करूँ।। (2)

परम सत्य हेतु चिन्तन-लेखन करूँ,
लोकानुगत-मूढ़ता से दूर मैं रहूँ।



श्रद्धा-प्रज्ञा अनुभव से आगे मैं बढ़ूँ,
अन्य को बाधा न दूँ न बाधित बनूँ।। (3)

समय-शक्ति-प्रज्ञा का सदुपयोग करूँ,
पर अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रिक्त करूँ।
आकर्षण-विकर्षण द्वन्द्व से रिक्त,
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ युक्त।। (4)

महान् आदर्शों का अनुकरण करूँ,
भेड-भेडिया चाल कभी न करूँ।
सर्वजीव हिताय व सुखाय सोचूँ,
बहुमत या भीडतंत्र को मान्यता न दूँ।। (5)

प्रशंसनीय प्रकृष्ट कार्य मैं करूँ,
प्रशंसा प्रसिद्धि हेतु कार्य न करूँ।
सर्व जीव प्रशंसनीय कोई न बना,
तीर्थंकर बुद्ध-ईसा-सुकरात से मीरा।। (6)

समता-शान्ति व निस्पृहता से साधना करूँ,
द्रव्य-क्षेत्र-कालानुसार बाह्य साधना करूँ।
प्रतिस्पर्द्धा-वर्चस्व हेतु कुछ न करूँ,
अन्तरंग शुद्धि हेतु अन्तः तपस्या करूँ।। (7)

धन संग्रह व भीड़ जटाने हेतु,
कोई भी काम न करूँ संक्लेश हेतु।
यह मेरा अल्प प्रयास बहु लाभ के सूत्र,
आगम-अनुभव-शोध से 'कनक' ज्ञात।। (8)

इससे ही मेरे होते शोध-बोध-लेखन,
ध्यान-अध्ययन व अध्यापन चिन्तन।
साहित्य प्रकाशन से ले देश-विदेशों के काम,

प्राणायाम-योगासन-भ्रमण व विश्राम।। (9)

नन्दौड़ 13.08.2018 रात्रि 10:30

अनुप्रेक्षा आत्म-सम्बोधन-आह्वान परक कविता

## शुभस्य शीघ्रं अशुभस्य काल हरणम्!

### (आत्महित शीघ्र करे, आत्म अहित शीघ्र त्यागे)

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : चलो दिलदार चलो...)

चलो! चलो! शीघ्र चलो!...आत्म हित हेतु चलो !
अहित भाव छोड़ो!...स्वहित भाव करो!...
अनादिकाल से तो...अहित भाव किया...
शुभस्य शीघ्र करो!...अशुभ दूर करो!..(स्थायी)...
काम-भोग बन्ध भाव...अनादि से बहु किया...
अतः अशुभ भाव...बिना प्रयत्न होता...
आत्महित नहीं किया...अतः होना दुर्लभ...
दुर्लभ आत्म हित...शीघ्र करना श्रेय...चलो-चलो...(1)

जन्मना सरल है...मरना न दुर्लभ...
राग द्वेष सुलभ है...ईर्ष्या-तृष्णा न अलभ्य...
काम-भोग-उपभोग...आर्त-रौद्र न दुर्लभ...
ज्ञान-वैराग्य दुर्लभ...अतः इसे पाओ शीघ्र!...चलो-चलो...(2)

जिसे किया बहु बार...वह होता बार-बार...
कर्म परतन्त्र वश...गुलामी सम काम...
स्वतन्त्र आत्मभाव...प्रभु सम करो शीघ्र...
जिससे पाओगे तुम...अनन्त आत्म वैभव...चलो-चलो...(3)

पुनः तेरे कोई काम...रहेंगे न अवशेष
कृतकृत्य परमपद...पाओगे अक्षय सुख...



अन्यथा चक्री-इन्द्र भी...न होते कृतकृत्य
संसार चक्र मध्ये...भ्रमण से पाते दुःख...चलो-चलो...(4)

मोही रागी कामी स्वार्थी-माता-पिता भाई बन्धु...
इससे करे विपरीत...फँसाते अन्य को भी
केवल आध्यात्मिक गुरु...आत्महित करते शीघ्र।...
परहित चिन्तन करते...'कनक' करे आत्महित (शीघ्र)... चलो-चलो...(5)

नन्दौड़ दि. 13.08.2018, रात्रि 8.42

यह कविता ब्र. रोहित के गीत गुनगुनाने के कारण बनी।

## बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

संदर्भ -

एयणिओयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेहिं वितीद कालेहिं।।

''एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण से जीवों की संख्या समस्त व्यतीत काल के सिद्धों से अनन्त गुणी है।''

इस प्रकार यह समस्त लोक स्थावर जीवों से सदा भरा रहता हैं। जिस प्रकार बालु के समुद्र में पड़े हुए हीरे के कणों का मिलना अत्यन्त कठिन है। उसी प्रकार इन स्थावर जीवों में से त्रस पर्याय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। त्रस पर्याय में भी विकलेन्द्रियों की संख्या बहुत है इसीलिये जिस प्रकार गुणों में कृतज्ञता अत्यन्त कठिनता से मिलती है उसी प्रकार त्रसों में पंचेन्द्रिय होना अत्यन्त कठिन है। पंचेन्द्रियों में भी पशु, हिरण, पक्षी, साँप आदि तीर्यंचों की संख्या बहुत है इसीलिये जिस प्रकार किसी चौराहे पर (चौरास्ते पर) रत्नों की राशि मिलना कठिन है उसी प्रकार पंचेन्द्रियों में मनुष्य भव प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य जन्म मिलकर नष्ट हो गया तो जिस प्रकार जिसकी लकड़ी जड़ आदि सब जला दी गई है ऐसा वृक्ष फिर से नहीं उग सकता उसी प्रकार मनुष्य जन्म फिर से मिलना अत्यन्त कठिन है। कदाचित् दुबारा मनुष्य जन्म मिल भी जाय तो जिन्हें हिताहित का कुछ विचार नहीं है और जो मनुष्यों का आकर धारण करने वाले पशुओं के

समान है, ऐसे कुछ देशों में रहने वाले म्लेच्छों की संख्या बहुत है। इसीलिए जिस प्रकार मणि का मिलना सुलभ नहीं है उसी प्रकार किसी सुप्रदेशों में उत्पन्न होना भी सुलभ नहीं है। कदाचित् सुप्रदेश में भी मनुष्य जन्म प्राप्त हो जाये तो भी यह लोक प्रायः पाप कर्म करने वाले जीवों के समूहों से भरा हुआ है इसीलिये जिस प्रकार वृद्धों की सेवा न करने वाले के विनय का प्राप्त होना कठिन है उसी प्रकार अच्छे कुल में जन्म लेना बहुत कठिन है। अच्छा कुल मिलने पर भी प्रायः जीवों की शील विनय आचार संपदा देने वाली नहीं होती है। यदि कदाचित् कुल संपदा आदि प्राप्त हो भी जाये तो दीर्घ आयु इन्द्रिय, बल, रूप, और नीरोगता आदि प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। उन समस्त सहयोग के प्राप्त होने पर भी यदि सद्धर्म धारण करने का लाभ न हो तो जिस प्रकार बिना नेत्रों के मुखमंडल व्यर्थ है उसी प्रकार उसका मनुष्य जन्म लेना भी व्यर्थ है। यदि वही अत्यंत दुर्लभ सद्धर्म जिस-तिस तरह से प्राप्त हो जाये और फिर भी वह जीव विषयसुख में निमग्न रहे तो जिस प्रकार केवल भस्म के लिये चंदन जलाना व्यर्थ उसी प्रकार उसका सद्धर्भ प्राप्त होना भी निष्फल है। जो विषय सुखों से विरक्त हो गया है उसके लिये भी तपश्चरण की भावना धर्म की प्रभावना और सुख-मरण अर्थात् समाधिमरण रूप समाधि वा ध्यान की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन है। इन सब सामग्री के मिल जाने पर ही रत्नत्रय प्राप्त हो जाना ही सफल गिना जाता है। इस प्रकार चिन्तवन करना बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है। इस प्रकार इसके चिंतवन करने से रत्नत्रय को पाकर फिर कभी प्रमाद नहीं होता है।

**दुरन्तुदुरितातिपीड़ितस्य प्रतिक्षणम्।**
**कृच्छ्रन्कपातालतलाज्जीवस्य निर्गमः।। 178(ज्ञानार्णव)**

बुरा है अनन्त, जिसका ऐसा पाप रूपी बैरी, से निरन्तर पीड़ित इस जीव का प्रथम तो नरकों के नीचे निगोदस्थान है, जो वहाँ की नित्यनिगोद से निकलना अत्यन्त कठिन है।

**तस्माद्यदि विनिश्कान्तः स्थावरेशु प्रजायते।**
**त्रसत्वमथवाप्नोति प्राणी केनापि कर्मणा।। 179**

उस नित्य निगोद से निकला तो फिर पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों में उपजता है और किसी पुण्य कर्म के उदय से स्थावरकाय से त्रसगति पाता है।



**यतपर्याप्तस्तथा संज्ञी पंचाक्षोऽवयवान्वितः।**
**तिर्यक्ष्वपि भवत्यंगी तन्न स्वल्पाशुभक्षयात्।। 180**

कदाचित् त्रसगति भी पावें, तो तिर्यंच योनि में पर्याप्त (पूर्णावयव संयुक्त्व) पाना कुछ न्यून पाप के क्षय से नहीं होता है अर्थात् बहुत पाप क्षय होने पर पाता है। उसमें भी मन सहित पंचेन्द्रिय पशु का शरीर पाना बहुत ही दुर्लभ है। उस पर भी सम्पूर्ण अवयव पाना अतिशय दुर्लभ है।

**नरत्वं यद्गुणोपेतं देशजात्यादिलक्षितम्।**
**प्राणिनः प्राप्नुवन्तयत्र तन्मन्ये कर्मलाघवात्।। 181**

आचार्य कहते हैं कि ये प्राणीगण संसार में मनुष्यपन और उसमें गुणसहितपना तथा उत्तम देश, जाति, कुल आदि उत्तरोत्तर कर्मों के क्षय से पाते हैं। ये बहुत दुर्लभ हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

**आयुः सर्वाक्षसामग्री बुद्धिः साध्वी प्रशान्तता।**
**यत्स्यात्तत्कत्काकतालीयं मनुश्यत्वेऽपि देहिनाम्।। 182**

जीवों के देश जाति, कुलादि सहित मनुष्यपन होते भी दीर्घायु, पाँचों इन्द्रियों की पूर्ण सामग्री, विशिष्ट तथा उत्तम बुद्धि, शीतल मंदकषायरूप परिणाम का होना काकतालीय न्याय के समान दुर्लभ जानना चाहिये। जैसे, किसी समय ताल का फल पककर गिरे और उसी ही समय काक का आना हो एवं उस फल को आकाश में ही पाकर खाने लगे। ऐसा योग मिलना अत्यन्त कठिन है।

**ततो निर्विशयं चेतो यमप्रशमवासितम्।**
**यदि स्यात्पुण्ययोगेन न पुनस्तत्त्वनिश्चयः।। 183**

कदाचित् पुण्य के योग से उक्त सामग्री प्राप्त हो जावे तो विषयों से विरक्त वा व्रतरूप परिणाम तथा यम-प्रशमरूप शुद्ध भावों सहित चित्त का होना बड़ा कठिन है। कदचित् पुण्य के योग से इनकी प्राप्ति हो जाये, तो तत्त्वनिर्णय होना अत्यन्त दुर्लभ है।

**अत्यंतदुर्लभेश्वेशु दैवाल्लब्धेश्वपि क्वचित्।**
**प्रमादात्प्रच्यवन्तेऽत्र केवित्कामार्थलालसाः।। 184**

यद्यपि-पूर्वोक्त सामग्री अत्यन्त दुर्लभ है तथापि यदि दैवयोग से प्राप्त हो जाये तो अनेक संसारी जीव प्रमाद के वशीभूत हो, काम और अर्थ में लुब्ध होकर

सम्यक्मार्ग से च्युत हो जाते हैं और विषय कषाय में लग जाते हैं।

**मार्गमासाद्य केचिच्च सम्यग्रत्नत्रयात्मकम्।**
**त्यजन्ति गुरुमिथ्यात्वशिव्यामूढचेतसः।। 185**

कोई-कोई सम्यक् रत्नत्रय मार्ग को पाकर भी तीव्र मिथ्यात्वरूप विष से व्यामूढ चित्त होते हुए सम्यग्मार्ग को छोड़ देते हैं। गृहीत-मिथ्यात्व बड़ा बलवान् है जो उत्तम मार्ग मिले तो भी छुड़ा देता है।

**स्वयं नष्टो जनः कश्चित्कश्चिन्नश्टैश्च नाशितः।**
**कश्चित्प्रच्याव्यते मार्गच्चण्डपाशण्डशासनैः।। 186**

कोई-कोई तो सम्यग्मार्ग से आप ही नष्ट हो जाते हैं, कोई अन्य मार्ग से च्युत हुये मनुष्यों के द्वारा नष्ट किये जाते हैं और कोई-कोई प्रचण्ड पाखण्डियों के उपदेश हुए मतों को पाकर मार्ग से च्युत हो जाते हैं।

**त्यक्त्वा विवेकमाणिक्यं सर्वाभिसिद्धिदम्**
**अविचारितरम्येशु पक्षेश्वज्ञःप्रवर्तते।। 187**

जो मार्ग से च्युत अज्ञानी हैं, वह समस्त मनोवांछित सिद्धि के देने वाले विवेकरूपी चिन्तामणि रत्न को छोड़कर बिना विचार के रमणीक भासने वाले पक्षों में (मतों में) प्रवृति करने लग जाता है।

**अविचारितरम्याणि भासनान्यसता जनैः।**
**अधमान्यपि सेवयन्ते जिह्वोपस्थादिदण्डितैः।। 188**

जो पुरुष जिह्वा तथा उपस्थादि इन्द्रियों से दण्डित हैं, वे अविचार से रमणीक भासने वाले दुष्टों के चलाये हुए अधम मतों का भी सेवन करते हैं। विषयकषाय क्या-क्या अनर्थ नहीं कराते ?

**सुप्रापं न पुनः पुंसा बोधिरत्नं भवार्णवे।**
**हस्ताद्रभ्रष्टं यथा रत्नं महामूल्यं महार्णवे।। 189**

यह जो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय है वह संसाररूपी समुद्र में प्राप्त होना सुगम नहीं है, किन्तु अत्यन्त दुर्लभ है। इसको पाकर भी खो बैठते हैं, उनको हाथ में रखे हुए रत्न को बड़े समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है, उसी प्रकार सम्यक्रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है।

**सुलभमिह समस्तं वस्तुजातं जगत्या-**



**मरगनरसरेन्द्रैः प्रार्थितं चाधिपत्यम्।**
**कुलबलसुभगत्वोदामरामादि चान्यत्**
**किमुत तदिदमेक दुर्लभं बोधिरत्नम्।। 13**

इस जगत में (त्रैलोक में) समस्त द्रव्यों का समूह सुलभ हैं तथा धरणेन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्रों द्वारा प्रार्थना करने योग्य अधिपतिपना भी सुलभ है, क्योंकि ये सब ही कर्मों के उदय से मिलते हैं तथा उत्तमकुल, बल, सुभगता, सुन्दर स्त्री आदिक चारित्र रूप सुलभ है। किन्तु जगत् प्रसिद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप बोधिरूप अत्यन्त दुर्लभ है।

**संसारम्हि अणंते जीवाण दुल्लहं मणुस्सत्तं।**
**जुगसमिला संजोगो लवण समुद्दे जहा चेव।। 757। मूलाचार**

अत्यन्त दीर्घ इस अनन्त संसार में जीवों को मनुष्य पर्याय का मिलना बहुत ही दुर्लभ है। जैसे कि लवण समुद्र में जुग और समिला का संयोग। अर्थात् जैसे लवण समुद्र के पूर्व भाग मे जुवाँ के छिद्र में समिला (रस्सी) प्रवेश कर जाना। जैसे कठिन है उसी प्रकार से चौरासी लाख योनियों के मध्य में इस जीव को मनुष्य जन्म का मिलना दुर्लभ है।

**देसकुलजन्म रुवं आऊ आरोग्ग वीरियं विणओ।**
**सवणं गहणं मदि धारणा य एदे वि दुल्लहा लोए।। 758**

उत्तम देश कुल में जन्म, रूप,आयु-आरोग्य,शक्ति, विनय, धर्म-श्रवण, ग्रहण बुद्धि और धारणा ये भी इस लोक में दुर्लभ ही हैं।

**लद्धेसु विएदेसु य बोधी जिणसासणम्हि ण हु सुलहा।**
**कुपहाणमाकुलत्ता जं बलिया राग दोसा य ।। 759**

इनके मिल जाने पर जिन शासन में बोधिसुलभ नहीं है, क्योंकि कुपथों की बहुलता है और रागद्वेष भी बलवान है।

**सेयं भवभयमहणी बोधी गुणवित्थडा मए लद्धा।**
**जदि पडिदा णहु सुलहा तम्हा ण खमो पमादो में।। 760**

सो यह भवभय का मंथन करने वाली, गुणों से विस्तार को प्राप्त बोधि मैंने प्राप्त कर ली है। यदि यह छूट जाय तो निश्चित रूप से पुनः सुलभ नहीं है। अतः

मेरा प्रमाद करना ठीक नहीं है।

**दुल्लहलाहं लद्धुण बोधि जो णरो पमादेज्जो।**
**सो पुरिसो कापुरिसो सोयदि कुगदिं संतो।। 761**

जो मनुष्य दुर्लभता से मिलने वाली बोधि को प्राप्त करके प्रमादी होता है वह पुरुष कायर पुरुष है। वह दुर्गति को प्राप्त होता हुआ शोक करता है।

**उवसमखयमिस्सं वा बोधिं लद्धूण भणियपुंडरिओ।**
**तव संजम संजुत्तो अक्खयसोक्खं तदो लहदि।। 762**

श्रेष्ठ भव्य जीव उपशम, क्षायिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करके जब, तप और संयम से युक्त हो जाता है तब अक्षय सौख्य को प्राप्त कर लेता है।

**तम्हा अहमपि णिच्चं सद्धासंवेग विरियविणएहिं।**
**अत्ताणं तह भावे जह सा बोहि हवे सहरं।। 763**

इसीलिये मैं भी श्रद्धा, संवेग, शक्ति और विनय के द्वारा उस प्रकार से आत्मा की भावना करता हूँ कि जिस प्रकार वह बोधि चिरकाल तक बनी रहे।

**बोधीय जीवदव्वादियाइं बुज्झइ हु णव वि तच्चाइं।**
**गुणसयसहस्स कलियं एवं बोहिं सया झाहि।। 764**

बोधि से जीव, पुद्गल आदि छह द्रव्य तथा अजीव आदि नव तत्व (पदार्थ) जाने जाते हैं। इस तरह हजारों गुणों से सहित बोधि का सदा ध्यान करो।

**जनम मरण मोह राग द्वेष अत्यन्त सुलभ भाईं।**
**संसार नाशक मोह प्रणाशक सुज्ञान दुर्लभ होई।। कनकनन्दी**
**मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहीं।**
**मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।।**

अर्थात् जैसे कि मदकारी कोदु के सेवन से (या मद्य के सेवन से ) नशे से मत्त व्यक्ति हिताहित विवेक से रहित होकर यद्वातद्वा सोचता है, बकता है, करता है वैसे ही मोह (मिथ्यात्व, कषाय) से आवेशित व्यक्ति भी होता है। इससे भिन्न -



**कम्माणुभावदुहिदो एवं मोहांधयारगहणम्मि।**
**अंधो व दुग्गमग्गे भमदि हु संसारकांतारे।। 1788**

अर्थात् इस प्रकार असातावेदनीय आदि पापकर्मों के प्रभाव से दुःखी जीव मोहरूपी अंधकार से गहन संसाररूपी वन में उसी प्रकार भ्रमण करता है जैसे अन्धा व्यक्ति दुर्गम मार्ग में भटकता है।

**दुक्खस्स पडिगरेंतो सुहमिच्छंतो य तह इमो जीवो।**
**णाणवधादीदो से करेइ मोहेण संछण्णो।। 1789 भ.आ.**

अर्थात् मोह से आच्छादित यह जीव दुःख से बचने का उपाय करता है, और इन्द्रिय सुख की अभिलाषा रखता है और उसके लिये हिंसा आदि दोषों को करता है। आशय यह है कि दुःख से डरता किन्तु समस्त दुःखों के विनाश का उपाय नहीं जानता। यद्यपि दुःखों को दूर करना चाहता है किंतु हिंसा आदि पापों में प्रवृत्त होता है जो दुःख के हेतु हैं। इन्द्रिय सुख का लम्पटी होते हुए उन्हीं हिंसा आदि पापों में लगा रहता है जो दुःख के कारण है। इसलिए उसका सब काम दुःख का ही मूल होता हैं।

## धर्मतत्त्वानुप्रेक्षा

**एवमस्य चिंतयतो धर्मानुरागः सदा प्रतिपन्नो भवति।**

इस प्रकार इस अनुप्रेक्षा के चिंतवन करने से धर्मानुराग सदा बढ़ता रहता है।

**पवित्रीक्रियते येन येनैवद्धियते जगत्।**
**नमस्तस्मै दयार्द्राय धर्मकल्पाध्रिपाय वै।। 149** ज्ञानार्णव

जिस धर्म से जगत् पवित्र किया जाता है तथा उद्धार किया जाता है और जो दयारूपी रस से आद्रित (गीला) और हरा है, उस धर्म रूपी कल्पवृक्ष के लिये मेरा नमस्कार है। इस प्रकार आचार्य महाराज ने धर्म को (महात्म्य-कथन-पूर्वक) नमस्कार किया है।

**दशलक्ष्मयुतः सोऽयं जैनधर्म प्रकीर्तितः।**
**यस्यांशमपि संसेव्य विन्दन्ति यमिन शिवम्।। 150**

वह धर्म जिसके अंशमात्र को भी सेवन करके संयमी मुनि मुक्ति को प्राप्त होते हैं उसे जिनेन्द्र भगवान् ने दशलक्षण युक्त कहा है।

**न सम्यगदितुं भाक्यं यत्स्वरूपं कुदृष्टिभिः।**
**हिंसाक्षपोशकैः भास्त्रेरतस्तैस्तन्निगद्यते।।151**

धर्म का स्वरूप मिथ्यादृष्टियों तथा हिंसा और इन्द्रिय-विषय पोषण करने वाले शास्त्रों के द्वारा भले प्रकार नहीं कहा जा सकता । इस कारण इस धर्म का वास्तविक स्वरूप हम कहते हैं।

**चिन्तामणिर्निधिर्दिव्यः स्वर्धेनुः कल्पपादपाः।**
**धर्मस्यैते श्रिया सार्धं मन्ये भृत्याश्चिरन्तनाः।। 152**

आचार्य महाराज कहते हैं कि लक्ष्मी सहित चिन्तामणि, दिव्य नवनिधि, कामधेनु और कल्पवृक्ष ये सब धर्म के चिरकाल किंकर( सेवक हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

**धर्मो नरोरगाधीशनकनायकवाञ्छिताम्।**
**अपि लोकत्रयीपूज्यां श्रियं दत्ते भारीरिणाम्।। 153**

धर्म जीवों को चक्रवती धरणेन्द्र तथा देवेन्द्र द्वारा वांछित और त्रैलोक्यपूज्य तीर्थंकर की लक्ष्मी को देता है।

**धर्मो व्यसन संपाते पाति विश्व चराचरम्।**
**सुखामृतपयः पुरैः प्रीणयत्यखिलं जगत्।।154**

धर्म कष्ट के आने पर समस्त जगत के त्रस, स्थावर जीवों की रक्षा करता है और सुखरूपी अमृत के प्रवाहों से समस्त जगत् को तृप्त करता है।

## मेरी नीति-साधना-उपलब्धि

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : अच्छा सिला दिया... तुम दिल की...)

**नहीं कहुँगा मैं सत्य भी अशुभ, इस हेतु मैं ''दोषवादे च मौनम्''।**
**गुण-गण कथा ही है सत्यवचन, भाषा समिति या गुप्ति चिन्तन।।**
**गुण-गुणी को भी जानूँगा मैं, प्रमोदभाव से गुण ग्रहण करूँगा।**
**गुण-गुणी से न ईर्ष्या-द्वेष करूँ, प्रशंसा से अभिनन्दन करूँ।। (1)**

**दोष-दोषी को भी जानूँगा मैं, ''दुखमेववा से शिक्षा लहूँ मैं।**
**संवेग-वैराग्य का पाठ पढ़ूँ, कारुण्य माध्यस्थ भावना भाऊँ।।**



**वाचन से पाचन अधिक करूँ, स्व-अध्ययन से ले अनुप्रेक्षा करूँ।**
**शोध-बोध-प्रयोग अनुभव करूँ, स्व-पर प्रकाशी सदा मैं बनूँ।। (2)**

**स्व-उपकार सदा मैं पहले करूँ, यथायोग्य पर उपकार भी मैं करूँ।**
**स्व-प्रकाशी बन पर प्रकाशी बनूँ, अप्रकाशी दीप सम परोपकारी न बनूँ**
**वचन से अधिक आचरण करूँ, परोपदेशी पाण्डित्य कभी न करूँ।**
**आचरण से भी मैं आचार्य बनूँ, ''गोमुख व्याघ्र'' व तोता/(बक) न बनूँ।।(3)**

**आत्म पवित्रता हेतु/(सह) धर्म/(सभी) मैं करूँ, दिखावा-आडम्बर ढोंग न करूँ**
**निस्पृह-साम्य-शान्त मैं बनूँ, ख्याति-पूजा, लाभ-वर्चस्व त्यागूँ।।**
**परनिन्दा-अपमान-वैर-विरोध परे, मैत्री प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ धरूँ।**
**तन-मन इन्द्रिय व उपकरण द्वारा, उपकृत बनूँ तिरस्कृत न बनूँ।।**
**(तिरस्कार न करूँ)।। (4)**

**स्व-शिष्यों के दोष दूर करने हेतु, आलोचना से ले प्रत्याख्यान करने हेतु**
**स्व-शिष्यों को दोष कहूँगा मैं, सत्य-धर्म रक्षार्थ दोष कहूँगा मैं।।**
**लौकिक नीति यथायोग्य मैं पालूँ, आध्यात्मिक हित हेतु इसे भी त्यागूँ।**
**यथा विवाह-व्यापार-लोक मूढ़ता, अन्धानुकरण से ले रुढिवादीता।। (5)**

**सब का हित चिन्तन सदा मैं करुँ, अयोग्य भाव-व्यवहार न मानूँ।**
**करोडो अन्धे भी सूर्य को न देख पाते, करोड़ों मूढ़ों का सत्य न मानूँ**
**आध्यात्मिक ही मेरे हेतु परम ग्राह्य, इसके योग्य निमित्त भी ग्राह्य।**
**कानून, राजनीति, समाजनीति, इसके योग्य ग्राह्य वैज्ञानिक पद्धति।। (6)**

**लोकानुगतिक लोक न लोक पारमार्थिक, रागी-द्वेषी-मोही सभी ही लोकानुगतिक।**
**इनका भी मैं हित चिन्तन करूँ, किन्तु इनका अन्धानुकरण न करूँ।।**
**धर्म तो आत्मा का शुद्ध स्वभाव, समता-शान्ति-निस्पृह भाव।**
**ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा रहित भाव, इस हेतु ही सेवनीय धार्मिक कर्म।। (7)**

**धर्म न सेवन करूँ लोकरंजन हेतु, धन-जन-मान व प्रसिद्धि हेतु।**
**प्रतिस्पर्द्धा द्वन्द्व व न परहानि हेतु, धर्म-करूँ स्व-पर-विश्व हित हेतु।।**

मेरा कर्ता-भोक्ता-विधाता मैं हूँ, शुभ अशुभ व शुद्ध का मैं हूँ।
बाह्य निमित्त भी होते अनेक विध, किन्तु आत्मविकास में मैं ही प्रमुख।।(8)

आत्मविकास युक्त ज्ञान-आचरण करूँ, शुद्ध-बुद्ध आनन्दमय मानूँ।
इस हेतु ही तप-त्याग-ध्यान करूँ, स्वयं को स्वयं के द्वारा स्वयं में पाऊँ।।
समय-शक्ति का दुरूपयोग न करूँ , अयोग्य-चिन्तन-कथन न करूँ।
परावलम्बन-पर संचालित न बनूँ, सनग्र सत्यग्राही उद्यमी बनूँ।। (9)

आत्मानुभव से कार्य मैं करूँ, अन्तरात्मा से परमात्मा बनना चाहूँ।
इसके योग्य-द्रव्य-क्षेत्र-काल मैं चाहूँ, सुनियोजित समता से कम प्रयास करूँ।।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ, आकर्षण-विकर्षण-प्रमाद त्यागूँ।
अन्य को मानना-मनाना(क्लेश) मैं त्यागूँ, शोध-बोध-प्रयोग मैं करूँ।। (10)

भेड-भेडीयाचाल व विभ्रम त्यागूँ,गोमुख-व्याघ्र-बगुला भक्त न बनूँ।
शोषण हेतु त्याग का उपदेश न दूँ, संग्रह हेतु ज्ञान-तप न करूँ।।
उपलब्धियों का दुरूपयोग न करूँ, संवर्द्धन हेतु सदा प्रयत्न करूँ।
सतर्क रहूँ समता में भी रहूँ, दुर्जन-दुर्विचार से दूर मैं रहूँ।। (11)

सरल-सदा-सहज-शुचि मैं रहूँ, संकीर्ण,-कट्टर-दंभी न बनूँ।
सदा सर्वदा सभी से सीखूँ, संवेदनशील सदाचारी मैं बनूँ।।
एकान्त मौन में साधना करूँ, प्रदर्शन परे आत्मदर्शन करूँ।
पर परिणति त्यागूँ श्रेष्ठ(तम)परिणाम करूँ, श्रेष्ठतम परिणाम हेतु
अधिकारी बनूँ।। (12)
मेरे द्वारा मुझे योग्यतम बनाऊँ, स्व-मूल्यांकन स्वानुभव से करूँ।
स्व-प्रकाशी बन स्व-अन्धेरा हनूँ, 'कनक' सत्य शिव-सुन्दर बनूँ।। (13)
नन्दौड़ 07.08.2018 रात्रि 11:09 (गी. 94 की I कविता)

## लौकिक जनों की संगति योग्य नहीं

लोइय जणसंगादो होइ मइमुहर कुडिल दुब्भावो।
लोइय संग तम्हा जोइ वि तिविहेण मुंचा हो।।42।।



**अर्थ :-** लौकिक मनुष्यों की प्रवृत्ति अर्थात् मनुष्य अधिक बोलने वाले (वाचाल) बक्कड़ कुटिल परिणामी और दुष्ट भावों से अत्यंत क्रूर विकृत परिणामी होते हैं इसलिये लौकिक मनुष्यों की संगति कभी नहीं करे। मन वचन काय से छोड़ देना चाहिये।

**भावार्थ :-** धर्माचरण विहीन-नास्तिक मनुष्यों की संगति और कुशिक्षा से मनुष्य वाचाल विवेकहीन बन जाते हैं। इससे वे पापकर्म हिंसा जीववध, झूठ, चोरी, व्यभिचार, व्यसन आदि अनीति के कार्य करने लगते हैं। कुशिक्षा के प्रभाव से पापकर्म करते हुए कुछ भी हिचकते नहीं अपने को जैन बतलाते हुए भी लौकिक जन की संगति से जैनधर्म के विरुद्ध आचरण करते है। दुष्ट भावों को रखकर अधर्म की वृद्धि कर मिथ्यात्व को बढ़ाते हैं इसलिए लौकिक जन की संगति का पूर्णतया परित्याग करना चाहिए।

## सम्यक्त्वरहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।
दुम्मदरदो विरुद्धो सो जीवो सम्मउम्मुक्को।। 43।।

**अर्थ :-** उग्र प्रकृति वाले, तीव्र क्रोधादि प्रकृति वाले, दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्भाव वाले, मिथ्याशास्त्रों के श्रवण करने वाले,दुष्ट वचन के कहने वाले, मिथ्याभिमान को धारण करने वाले, आत्मधर्म से विपरीत चलने वाले और अतिशय क्रूर प्रकृति वाले मनुष्य सम्यक्त्व रहित होते हैं।

**भावार्थ :-** जो जीव निरंतर क्रोध में डूबा रहता है और जीवों प्रति बैर द्वेष करता रहता है। बिना प्रयोजन भी धर्मात्मा जीवों के ऊपर क्रोध करेगा। मान के मद में दूसरों को अपमानित करेगा। मायाचारी करता रहेगा। विवेक शून्य असत्यभाषी मिथ्यात्व को अपनाने वाला वाचाल रहता है अर्थात् सन्मार्ग सम्यक्त्व से विपरीत आचरण वाला है।

## क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन

खुद्दो रुद्दो रुट्ठो अणिट्ठुपिसुणा सग्गन्थि असूयो।
गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। 44।।

**अर्थ :-** क्षुद्र प्रकृति वाले रौद्र परिणामी, क्रोधी चुगलखोर कामी, गर्विष्ठ, असहनशील द्वेषी, गायन करने वाले, याचना करने वाले, लड़ाई झगड़ा करने वाले, दूसरों के दोषों को प्रकट करने वाले, निंद्य पापाचारी और मोही मनुष्य धर्म तथा सम्यक्त्व से रहित होते हैं।

## जिन-धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

**वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह**
**पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।। 45।।**

**अर्थ :-** बंदर स्वभाव वाले, गधे के स्वभाव वाले, कुत्ते के स्वभाव वाले, हाथी के स्वभाव वाले, बाघ के स्वभाव वाले, शूकर के स्वभाव वाले, पक्षी के स्वभाव वाले, जलूकादि स्वभाव वाले मनुष्य श्री जिनेन्द्र देव प्रणीत धर्म को धारण नहीं कर सकते हैं धर्म का लोप करने वाले होते हैं।

## सम्यक्त्व की हानि का कारण

**कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसीले कुदंसण कुसत्थो।**
**कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्महाणि होइ णियमं।। 46।।**

**अर्थ :-** मिथ्या तपश्चरण करने वाले, कुत्सित भेषधारण करने वाले, मिथ्याज्ञान की आराधना करने वाले, कुत्सित व्रत धारण करने वाले कुशील सेवन करने वाले, मिथ्या श्रद्धानी विपरीत श्रद्धानी, मिथ्याशास्त्रों का पठन पाठन आदि करने वाले, कुत्सित आचरण, मिथ्याधर्म मिथ्यादेव मिथ्यागुरु इनकी प्रशंसा करने वाले मनुष्य सम्यक्त्व रहित होते हैं।

**भावार्थ :-** जिनके तप में पांच स्थावर कायिक की हिंसा होती हैं, अग्नि को जलाते हैं, पृथ्वी को खोदते हैं, वनस्पति को काटते हैं, जल में डुबते हैं, कंदमूल-जमीकंद का भक्षण करते है, अनेक प्रकार के भेष धारण करके अपने को साधु मान लेते हैं, प्राणीघात करत हैं, प्राणी घात के शस्त्र रखते, कुटुंब परिवार का संसार करते हैं। परस्त्री आदि के सेवन करते हैं। भांग तम्बाकू पीते हैं ऐसे नाना प्रकार के कुकृत्य करने वालों की स्तुति, प्रशंसा करने से सम्यक्त्व की विराधना हो जाती है।



## रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन की मुख्यता

**सम्मविणा सण्णाणं सच्चरित्तं ण होइ णियमेण।**
**तो रयणत्तयमज्झे सम्मगुणक्किठमिदि जिणुदिट्ठं।। 47।।**

**अर्थ :-** सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नियम पूर्वक नहीं होते हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय में सम्यक्त्वगुण प्रशंसनीय है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

**भावार्थ :-** सम्यक्त्व गुण ही सब गुणों में प्रधान गुण है। जीव को जब तक सम्यक्त्व गुण प्राप्त नहीं होता है तब तक संसार भ्रमण का अन्त नहीं आता है। सम्यक्त्व होने के पश्चात् जीव नरकवास में रहे तो भी वह श्रेष्ठ है परन्तु मिथ्यात्व सहितस्वर्ग भी सुखकारी नहीं है। सम्यक्त्व होने पर ही सम्यग्ज्ञान और चारित्र की सार्थकता होती है।

## अहो! सबसे बड़ा कष्ट मिथ्यात्व

**तणुकुट्ठी कुलभंगंकुणइ जहा मिच्छमप्पणो वि तहा।**
**दाणाइ सुगुण भंगंसुगइभंगं मिच्छमेव हो कट्ठं।।48।।**

**अर्थ :-** जिस प्रकार कोढ़ी रोगवाला मनुष्य कुष्ठ रोग शरीर के कारण अपने कुल को नष्ट करता है ठीक उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि मनुष्य दान पूजा चारित्र और धर्मायतनों का विध्वंस करता है, इसलिये मिथ्यात्व बहुत ही कष्टप्रद दुःखदायक है।

मिथ्यात्व से समस्त आत्मीय गुण नष्ट हो जाते हैं और सच्चे देव शास्त्र गुरु तथा धर्माचरणों से विपरीत भाव व क्रिया बनते हैं अर्थात् मिथ्यात्व का सेवन करना महा दुःखों का ही कारण है।

## गुणस्थानों की अपेक्षा आत्मा का वर्गीकरण

**मिस्सोत्ति बाहिरप्पा तरतमया तुरिया अंतरप्प जहण्णा।**
**सत्तोत्ति मज्झिमंतर खीणुत्तर परमजिणसिद्धा।। 146।।**

**अर्थ :-** मिथ्यात्व सासादन मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव बहिरात्मा हैं। चौथे गुणस्थान के जीव जघन्य अंतरात्मा हैं। पांचवे गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक विशुद्धि को बढ़ाते जाने वाले मध्यम अंतर आत्मा है। बारहवें

गुणस्थावर्ती जीव उत्तम अंतर आत्मा है। तेरहवें, चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् सकल परमात्मा है, और सिद्ध परमेष्ठि निकल परमात्मा है। इस प्रकार समझ लेना चाहिए।

## दोषों के त्याग से मुक्ति

**मुढ़त्तय सल्लत्तय दोसत्तय दंडगारवत्तयेहिं।**
**परिमुक्को जोइ सो सिवगइ पहणायगो होई ।। 147।।**

**अर्थ :-** (1) तीन मूढ़ता मिथ्यात्व

(1) देव मूढ़ता : वीतराग देव को छोड़कर अन्य देव को भजना। (2) पाखंड मूढ़ताः सच्चे दिगम्बर गुरु को छोड़कर पाखंडी साधु को मानना(3) लोक मूढ़ता ये तीन मूढ़ता हैं।

(2) तीन शल्य(1) मिथ्या शल्य (2) मायाशल्य (3) निदान शल्य ये तीन शल्य हैं।

(3) तीन दोष (1) राग (2) द्वेष (3) मोह ये तीन दोष हैं।

(4) तीन दंड (1) मनोदंड (2) वचनदंड (3) कायदंड ये तीन दंड हैं।

(5) तीन गारव (1) रसगारव (2) ऋद्धिगारव (3) सात गारव ये तीन गारव हैं।

इन सब दोषों से रहित योगी सच्चा मोक्ष का अधिकारी है, नायक है, पथिक है, श्रेष्ठ है, पूज्य है।

## रत्नत्रय मुक्ति के कारण

**रयणत्तय करणत्तय जोगत्तय विसुद्धेहिं**
**संजुत्तो जोइ सो सिवगइ पहणायगो होई।। 148।।**

**अर्थ :-** जो योगी (1)सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का निरतिचार पालन करता है।

(2) अधःकरण, अपूर्वकरण, और अनिवृत्तिकरण में आरोहण होता है।

(3) मनोयोग, वचनयोग, काययोग को धारण करता है।

(4) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति का पालन करता है।



इन सबके विशुद्धता से सहित योगी है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

## मुक्ति का कारण मूलगुण और उत्तर गुण

**बहिरब्भंतर-गंथ विमुक्को सुद्धोवजोय संजुत्तो।**
**मूलुत्तरगुण पुण्णो सिवगइ पहणायगो होई।। 149।।**

**अर्थ :-** जो योगी बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित है, सदा शुद्धोपयोग में लीन रहते हैं, मूलगुण और उत्तर गुणों का निरतिचार पालन करते हैं, ऐसे वे मुनि अवश्य ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

## सम्यग्दर्शन की साधना

**जं जाइजरामरणं दुहटुट्ठ विसाहि विसविणासयरं।**
**सिवसुहलाहं सम्मं संभावइ सुपाइ साहए साहू।। 150।।**

**अर्थ :-** मोक्ष को सिद्ध करने वाले हे साधु ! इस सम्यग्दर्शन की महिमा को सुनो, इसकी भावना करो और साधना करो कि यह-सम्यग्दर्शन जन्म, बुढ़ापा और मरण को तथा अनेक असंख्य व्याधिक कष्ट दुःखों को दूर करने वाला है। मिथ्यात्व, अज्ञानरूपी विषों को दूर करने वाला है, तथा बिच्छु सर्प आदि के समस्त विषों को भी निर्विष करने वाला है। इतना ही नहीं मोक्ष सुख को भी प्राप्त कराने वाला है। सम्यग्दर्शन मुख्य प्रधान कारण है। इसे निश्चय कर जानो।

## लोकपूज्य सम्यग्दर्शन

**कि बहुणा हो दविंदाहिंद णरिंदगणहरिंदेहिं।**
**पुज्जा परमप्पा जे तं जाण पहाण सम्मगुणं।। 151।।**

**अर्थ :-** बहुत कहने से क्या लाभ है, थोड़े से में इतना ही समझ लेना चाहिए कि भगवान् अरिहंत परमात्मा और सिद्ध परमात्मा तथा जो देवेन्द्र धरणेंद्र चक्रवर्ती और गणधर देवादिक के पदों से पूज्य हुए हैं वे सब सम्यग्दर्शन गुण की महिमा से प्रधानता से ही हुए हैं।

**भावार्थ :-** सम्यग्दर्शन के महात्म्य से ही अरहंतादि पूजनीय पद-स्थान प्राप्त हुए हैं। इसलिए सम्यग्दर्शन को धारण करना प्रत्येक भव्य जीवों का

कर्तव्य है।

## सही समय 'अभी' है

कई बार ऐसा होता हैं हम सोते वक्त अगले दिन किए जाने वाले काम के बारे में सोचते हैं, लेकिन दूसरे दिन ऐसा कुछ नहीं होता । कितनी ही बार हम उत्पादक काम करने की कोशिश करते हैं, पर दिन के अंत में हमारे पास कुछ नहीं होता। सभी के पास 24 घंटे होते हैं। लेकिन कई बार न चाहते हुए भी दिन के अंत में निराशा ही हाथ लगती है।

## जो काम 24 घंटे में नहीं हो सकता, वह कभी नहीं हो सकता'

### इसके लिए ज़रुरत है 'स्मार्ट हील' की

### जानिए क्या है यह...

सफलता बहुत व्यक्तिपरक है। अब प्रश्न यह है कि सफलता क्या है ? इच्छाओं की पूर्ति, शांति, कार्यस्थल पर एक अच्छा दिन, परिवार या दोस्तों के साथ बिताया गया समय या मनचाहा काम करने की आजादी ?

### आपके लिए सफलता के मायने क्या हैं ?

सबसे पहले उसे पहचानना जरुरी है। सफलता दिन, जीवन या अल्प या दीर्घकालिक दोनों ढंग से तय की जा सकती है।

इससे भी महत्वपूर्ण है उस सफलता को पाने के लिए क्या योजना है। इसके दो चरण हैं-

1. **लक्ष्य निर्धारण 2. लक्ष्य का क्रियान्वयन**

अमेरिकन मनोचिकित्सक एडविन लॉके ने अपने लक्ष्य निर्धारण के सिद्धांत में लक्ष्य स्थापना और प्रेरणा के बीच संबन्ध का वर्णन किया है।

### लक्ष्य निर्धारण :

लक्ष्य स्मार्ट होना चाहिए। अंग्रेजी में इस स्मार्ट का अर्थ है स्पेसिफिक



मेजरेबल, अचीवेबल रियलिस्टिक एंड टाइम टारगेटेड (S.M.A.R.T.) अर्थात् लक्ष्य विशिष्ट, मापनीय, प्राप्त करने योग्य, वास्तविक और समय लक्षित होना चाहिए। यदि लक्ष्य इन गुणों से परिपूर्ण है तो व्यक्ति के लिए इन्हें तय करना आसान हो जाता है। इन मापदंडों से गुजरने पर सपने और हकीकत का भेद भी आसान होता है।

2.**लक्ष्य का क्रियान्वयन :-** हील यानी हैल्प, एज्युकेट यॉरसैल्फ, एनैलाइज एंड लर्न (H.E.A.L) अर्थात् सहायता, स्वयं को शिक्षित चार चरणों में अपने लक्ष्य को बांट देने से राह की स्पष्टता हो जाती है। कहां से मदद लेनी है। यानी पढ़ना है से लेकर स्वमूल्यांकन और सतत् सीखते जाने की प्रवृत्ति सफलता का निश्चित मंत्र है।

### सफलता के दो चरण

### स्मार्ट हील

### S स्पेसिफिक (विशिष्टलक्ष्य)

लक्ष्य को छोटे-छोटे उपलक्ष्यों में विभाजित करें। केवल पसंद के आधार पर लक्ष्य नहीं चुन सकते। कुछ काम आनंदपूर्वक नहीं होते, लेकिन आवश्यक होते हैं। उदाहरण के लिए कोई अपनी नौकरी से खुश नहीं है लेकिन करना जरुरी होता है ताकि दूसरी चीजों पर शांतिपूर्वक आनंद उठा सकें।

### M मेज़रेबल (मापनीय)

लक्ष्य विभाजन के बाद सूची तैयार करें जिससे अपनी प्रगति पर नज़र रखकर उसे माप सकें। क्या कारण है ? कैसे करना है ? जैसे ही कोई कार्य पूरा हो, सूची से काट दें। इससे यह पता कर पाएंगे कि आप सफलता के कितने नजदीक हैं।

### A अचीवेबल(प्राप्त करने योग्य)

लक्ष्य ऐसा हो जिसे पाया जा सके। साथ ही अपने लक्ष्य को परखें क्या यह

आपको हर सुबह जगाने के लिए प्रेरित करता है ? आसान लक्ष्य उतने प्रेरणादायक नहीं होते। जितने कि कठिन लक्ष्य। एक कठिन लक्ष्य हासिल करना उपलब्धि के समान महसूस होता है क्योंकि उसमें मेहनत ज्यादा लगती है।

### R रियलिस्टिक(वास्तविक)

लक्ष्य को चुनने से पहले उसके बारे में सब जान लें, अपने स्तर पर हर मुमकिन रिसर्च कर लें। लक्ष्य लार्जर देन लाइफ न हो। लक्ष्य का चुनौतीपूर्ण होना जरुरी है लेकिन वह इतना अधिक मुश्किल भी न हो कि हासिल ही न किया जा सके।

### T टाईम टारगेटेड (समय लक्षित)

लक्ष्य की समय सीमा तय करके तुरंत जुट जाना। बिना समय सीमा निर्धारित किए कोई काम मुमकिन नहीं। समय सीमा तय करने के बाद ही लक्ष्य के रास्ते पर विचार किया जा सकता है।

### H हैल्प (सहायता)

'अच्छे लोगों' की कमी के बारे में शिकायत करने के बजाय स्वयं वैसे बनें जैसी दूसरों से अपेक्षा करते हैं। बड़ा दिल रखकर दूसरों की सहायता करें, लक्ष्य प्राप्ति के लिए दूसरो की सहायता लें। मदद करने से वास्तविक खुशी प्राप्त होती है।

### E एज्युकेट यॉरसेल्फ (पढ़े)

सफल लोग महीने में एक नॉन फिक्शन किताब जरुर पढ़ते हैं। कोई भी किताब, अखबार, पत्रिकाएं, टीका-टिप्पणी, कहानी -कविताए जरुर पढ़ें। पढ़ा हुआ कभी व्यर्थ नहीं जाता है।

### A एनैलाइज (विश्लेषण करें)

किसी भी काम की पूर्ति के बाद उसका अपने स्तर पर विश्लेषण करें। क्या काम उसी तरह हुआ है जैसा हमने सोचा था ? क्या हमारा प्रयास 100 प्रतिशत था ? क्या बेहतर किया जा सकता था ? क्या गलतियां की या क्या बहुत अच्छा किया। इससे आप खुद को और अपनी कार्यशैली को बेहतर तरीके से समझ



पाएंगे।

### L लर्न (रोज कुछ नया सीखें)

वह एक भाषा हो सकती है, नया शब्द हो सकता है, कोई जीवन हो सकता है। महत्वपूर्ण हैं कुछ न कुछ जरुर सीखते रहें। इस तरह आप अपना प्रत्येक दिन मूल्यवान बना सकते हैं। सीखने की कोई उम्र और समय नहीं होता।

**स्मार्ट हील** के इन 9 बिंदुओं पर अमल कर हर दिन को खुशहाल बना सकते हैं। याद रखें कि अच्छा समय जो है अभी है, सबसे सही स्थान वही है जहां आप हैं और सफलता की राह पर चलना आप अभी से शुरु कर सकते हैं।

मुजफ्फरपुर फिर देवरिया के शेल्टर होम की घटना ने देश में नाबालिगों के प्रति चिंता बढ़ा दी है। मगर इन घटनाओ को अलग रखकर देखें, तो भी 18 साल से कम उम्र की लड़कियों से दुष्कर्म के आंकड़े चिंताजनक ही दिखते हैं। यहा पढ़िए देश में नाबालिगों की सुरक्षा की स्थिति और शेल्टर होम्स में लड़कियों की सुरक्षा से जुड़ा वो सबकुछ जो आप जानना चाहते हैं।

## देश में पांच साल में 61% बढ़े दुष्कर्म, लेकिन नाबालिगों से जुड़े मामलों में 133% इजाफा, रोज 46 नाबालिग हो रही शिकार

### नाबालिगों से जुड़ी हैं शेल्टर होम्स की घटनाएं, इसलिए पहले जानिए इनकी सुरक्षा की स्थिति

उत्तर प्रदेश के देवरिया स्थित बालिका गृह में बच्चियों से दुष्कर्म के मामले में योगी सरकार जिला प्रशासन को जिम्मेदार ठहरा दें। या जांच सीबीआई को सौंप दी जाए। चिंता इस बात की है कि दुष्कर्म के मामले में लगातार बढ़ रहे हैं। मुख्य रूप से 18 साल से कम उम्र की बच्चियों के साथ। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरों की रिपोर्ट भी इनकी पुष्टि करती हैं। रिपोर्ट के अनुसार 2011 के बाद पांच साल में दुष्कर्म के कुल मामलें (सभी आयु वर्ग की महिलाओं को जोड़कर) करीब 61 फीसदी बढे हैं। वहीं नाबालिगों से दुष्कर्म के मामलों में 133 फीसदी तक से

दुष्कर्म के 7228 मामले सामने आए थे, जबकि 2016(ताजा रिपोर्ट) में ऐसे 16863 मामले दर्ज हुए हैं। यानी देश में रोजाना ही औसतन 46 से ज्यादा नाबालिग दुष्कर्म का शिकार हो रही है। पिछले सप्ताह मुजफ्फरपुर की घटना पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस मदन बी. लोकुर ने यह भी कहा कि दुष्कर्म की सबसे ज्यादा घटनाएं मध्यप्रदेश फिर उत्तरप्रदेश में हो रही हैं। जस्टिस लोकुर सभी तरह के मामलों का जिक्र कर रह थे।

वैसे सिर्फ नाबालिगों से दुष्कर्म के मामले देखे तो दूसरी स्थान पर महाराष्ट्र आता है। 2016 में यहां उत्तरप्रदेश से भी ज्यादा ऐसी घटनाएं हुई। 2015 में तो महाराष्ट्र 18 साल से कम उम्र की लड़कियों के साथ दुष्कर्म के मामले में शीर्ष पर था। इतना ही नहीं, 12 वर्ष से कम आयु की बच्चियों के साथ दुष्कर्म के सबसे ज्यादा मामले भी महाराष्ट्र में ही देखे जा रहे हैं। हालांकि छोटी बच्चियों के लिए सबसे असुरक्षित राज्य में केरल भी शीर्ष पांच में शामिल है। एक हकीकत यह भी है कि देश की विभिन्न अदालतों में 2016 में दुष्कर्म के जिन मामलों की सुनवाई हुई, उनमें से 18.9 फीसदी मामलों में ही आरोपियों की सजा हुई।

नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरों के ये आंकड़े बताते हैं कि दुष्कर्म के मामले लगातार बढ़ ही रहे हैं। ये जरुर है कि 2015 में इनमें कुछ कमी देखी गई थी। तब नाबालिगों से दुष्कर्म के मामले तो 2013 से भी काफी हद तक कम रहे थे।

### नाबालिगों के लिए ये 5 राज्य सबसे असुरक्षित

साल 2016 के आंकड़े बताते हैं कि नाबालिगों के लिए मध्यप्रदेश सबसे असुरक्षित राज्य है। जबकि सभी उम्र वर्ग की महिलाओं द्वारा दर्ज कराए गए मामलों की जोड़कर देखें तो ओडिशा तथा छत्तीसगढ़ शीर्ष पांच की सूची में नहीं है। इस सूची में चौथे स्थान पर राजस्थान तथा पांचवे पर दिल्ली है। मध्यप्रदेश - 2479, महाराष्ट्र-2310, उत्तरप्रदेश -2115, ओडिसा - 1258, छत्तीसगढ़-984

### 12 वर्ष से छोटी बच्चियों के लिए ये असुरक्षित

इसी साल अप्रैल में केंद्रीय कैबिनेट ने 12 साल तक की बच्चियों से दुष्कर्म के मामले में दोषियों को फांसी की सजा दिए जाने संबंधी अध्यादेश को मंजूरी दी है।



यदि पुराने मामले देखें तो 2016 में महाराष्ट्र इनमें शीर्ष पर था। तब यहां 12 साल से कम उम्र की बच्चियों से दुष्कर्म के सबसे ज्यादा 348 मामले दर्ज हुए थे। दूसरे स्थान पर 327 मामलों के साथ उत्तरप्रदेश, तीसरे पर 192 मामलों के साथ मध्यप्रदेश, चौथे पर केरल और पांचवें पर दिल्ली है। केरल में 2016 में 188 तथा दिल्ली में 171 मामले दर्ज किए गए। वैसे सभी उम्र वर्ग की महिलाओं द्वारा दर्ज कराए गए दुष्कर्म के मामलों को जोड़कर देखें तो केरल का स्थान राज्यों की सूची में 7वां है।

## शेल्टर होम्स में बच्चियों की सुरक्षा किसके जिम्मे और कहां हो रही हैं चूक जानिए 4 सवालों के जरिए

### निगरानी के क्या हैं नियम ?

सुप्रीम कोर्ट ने मई 2017 में अहम् फैसला सुनाते हुए कहा था कि बच्चों को रखने और देखभाल करने वाले हर संस्थानों को जुवेनाइल जस्टिस एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन करवाना होगा। ताकि इनकी निगरानी की जा सके। वैसे शेल्टर होम्स की स्थापना व संचालन की जिम्मेदारी राज्य की है, वो चाहे तो यह काम खुद करे या फिर किसी एनजीओ से करवाए। इनके संचालन के लिए ज्यादातर पैसा केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय से आता है। फिर भी संचालन में केंद्र की कोई सीधी भूमिका नहीं है। केंद्र को यह अधिकार जरुर है कि शेल्टर होम्स की गतिविधियों का निरीक्षण कराए। मुजफ्फर व देवरिया की घटना के बाद इसी अधिकार का इस्तेमाल करते हुए महिला एवं बाल विकास मंत्री मेनका गांधी ने शुक्रवार तक देशभर के 3000 शेल्टर होम्स का सोशल ऑडिट करवाया है। मानदंडों का पालन नहीं करने वाले 40 से ज्यादा शेल्टर होम्स बंद भी करवा दिए गए हैं। देश में बच्चों के लिए 9589 शेल्टर होम्स हैं। इनमें 1.7 लाख लड़कियां रह रही है। मगर 3164 होम रजिस्टर्ड नहीं है।

### फिर ऐसी घटनाएं क्यों ?

नियम है कि राज्य व जिला स्तर व समितियां इन शेल्टर होम्स का तीन महीने में एक बार, जुवेनाइज जस्टिस बोर्ड महीने में एक बार तथा चाइल्ड वेलफेयर कमेटी महीने में दो बार निरीक्षण करें। मगर अभी तक सिर्फ इंफ्रास्ट्रक्चर का ही ऑडिट होता रहा है।

### तो कैसे लगेगी रोक ?

सुप्रीम कोर्ट ने इस होम्स की सतत् मॉनिटरिंग और इन्हें होने वाली फंडिंग की सीएजी द्वारा जांच की बात कही है। केंदीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय चाहता है कि राज्यों में निराश्रित महिलाओं के लिए सेंट्रलाइज होम हों, जो राज्य सरकार द्वारा चालाए जाएं।

### पहले कब, कहां हुई ऐसी घटना ?

मुजफ्फरपुर तथा देवरिया से एक दशक पहले जुलाई 2007 में खुलासा हुआ था, तमिलनाडु के महाबीपुरम में एनजीओं तथा राज्य सरकार द्वार चलाए जा रहे एक अनाथालय में बच्चियों का योन शोषण हो रहा है। खुलासे के दो माह बाद सुप्रीम कोर्ट में एक जनहित याचिका लगी। बच्चों के शेल्टर होम्स का जुवेनाइल जस्टिस एक्ट के तहत रजिस्ट्रेशन इसी याचिका का नतीजा है। इसके अलावा 2015 में देहरादून के एक नारी निकेतन में कुछ मूक-बधिर महिलाओं के साथ दुष्कर्म का मामला सामने आया। मई 2017 में दिल्ली के निर्मल छाया कॉम्पलेक्स स्थित चिल्ड्रन होम की 32 लड़कियों ने दिल्ली महिला आयोग की अध्यक्ष को लिखित शिकायत की थी। इसमें यौन उत्पीड़न का जिक्र था।

### हफ्ते भर में क्या-क्या हुआ...

यूपी के देवरिया स्थित बालिका गृह से भागकर थाने पहुंची लड़की ने यौन शोषण का खुलासा किया। लड़की की शिकायत पर पुलिस ने बालिका गृह पर छापा मारा। थाने पहुंची लड़की ने बताया कि केंद्र की संचालिका कई लड़कियों को रात में कहीं भेजती है। यहां 42 में से 18 लड़कियां गायब मिली। केंद्र की संचालिका, उसके पति तथा बेटे को गिरफ्तार किया गया ।

### 7 अगस्त, मंगलवार

बिहार स्थित मुजफ्फरपुर के शेल्टर होम में हुई ऐसी घटनाओं पर सुप्रीम कोर्ट ने सुनवाई की। कहा-लेफ्ट, राइट और सेंटर हर जगह दुष्कर्म हो रहे हैं। देश में यह क्या हो रहा है ? इसे रोका क्यों नहीं जा रहा ?

**फरवरी 2018 में टाटा** इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंस ने बिहार के



सामाजिक कल्याण विभाग की रिपोर्ट पेश की, जिसमें बच्चियों के यौन उत्पीड़न की बात थी। यहां 34 बच्चियों से दुष्कर्म की पुष्टि हुई।

### 8 अगस्त, बुधवार

मुजफ्फरपुर दुष्कर्म के मामले में बिहार को समाज कल्याण मंत्री मंजू वर्मा का इस्तीफा। उनके पति पर शेल्टर होम के मालिक ब्रजेश ठाकुर से नजदीकी के आरोप हैं।

### 9 अगस्त, गुरुवार

डीएम की जांच में उत्तरप्रदेश के प्रतापगढ़ स्थित दो महिला आश्रयगृह से 26 महिलाएं लापता मिलीं। इनकी उम्र 30 से 45 के बीच थी।

### 10 अगस्त, शुक्रवार

कोर्ट ने प्रतापगढ़ की घटना के बाद एक फिर सख्त टिप्पणी की। कहा- इस तरह की भयावह घटनाएं आखिर कब रुकेंगी ?

## स्व-आत्म आराधना हेतु धर्माराधना (वन्दे तद् गुणलब्धये)

## (निश्चय से स्व शुद्धात्मा ही गण-गच्छ-संघ-संयम(धर्म)

**आचार्य कनकनन्दी**

**(चालः- मन रे तू...2. सायोनारा...)**

**'कनक' तू स्व-आत्महित/(शुद्धि) कर ऽऽऽ**
**आत्महित हेतु ही देव-शास्त्र-गुरु...गण-गच्छ व संघऽऽ(ध्रुव)**
**गाथा - रयणत्तयमेव गणं, गच्छ गमणस्स मोक्ख मग्गस्स।**
**संघो गुण संघाओ, समयो खलु णिम्मलो अप्पा।। (163) रयणसार**

**रत्नत्रयमेव होता है गण...मोक्षमार्ग में गमन है गच्छ ऽऽ**
**संघ होता है गुणों का समूह...समय/(ज्ञान) होता निश्चय से निर्मल आत्मा**
**इस हेतु ही व्यवहार गण-गच्छ-संघ ऽऽऽ कनक...(1)**

**गाथा - देवगुरुसमयभत्ता संसार सरीर भोग परचित्ता।**
**रयणत्तय संजुत्ता ते मणुया सिवसुहं पत्ता।। (9) रयण)**

**देवगुरुशास्त्र की भक्ति सहित...संसार शरीर भोग से हो विरक्त ऽऽ**
**रत्नत्रय से हो तू संयुक्त...तब मिलेगा तुम्हें शिव सुख ऽऽ**
**वन्दे तद्गुण लब्धये सिद्धान्त ऽऽ 'कनक' (2)**

**णियसुद्धप्पणुरत्तो बहिरप्पावच्छवजियो णाणी।**
**जिणमुणि धम्मं मण्णइ गइदुक्खी होइ सद्दिट्ठी।। (6 रयण)**

**निज शुद्धात्मा में हो अनुरक्त... बहिरात्मा व बाह्य पदार्थ त्यागो ऽऽऽ**
**जिनेन्द्र मुनि जिनधर्म को मानो...दुःख क्षय होगा सुदृष्टि ज्ञानी ऽऽ**
**इस हेतु ही बनो ज्ञानी-ध्यानी ऽऽ 'कनक' (3)**

**इसके अतिरिक्त अन्य न चाहो...अन्य न हो तेरे कोई लक्ष्य ऽऽ**
**ख्याति पूजा लाभ सत्कार पुरस्कार...वर्चस्व से लेकर स्वर्ग सुख ऽऽ**
**शुद्धात्मा बनने हेतु वन्दे परमात्मा ऽऽ 'कनक' (4)**

**भक्ति आराधना तप त्याग ज्ञान...ध्यान-अध्ययन से ले प्रभावना**
**शोध-बोध व लेखन-चिन्तन...सभी में करो आत्मआराधना ऽऽ**
**आत्मोपलब्धि हेतु चारों आराधना ऽऽ 'कनक' (5)**
नन्दौड़ दि. 18.8.2018 रात्रि 9:20

## रयणसार ग्रंथ की आराधना रहित जीव मिथ्यादृष्टि

**गंथमिणं जो ण दिट्ठइ ण हु मण्णइ ण सुणेइ ण हु पढइ।**
**ण हु चिंतइ ण हु भावइ सो चेव हवेइ कुद्दिट्ठी।।166।।**

**अर्थ :-** जो मनुष्य इस रयणसार ग्रंथ को निश्चय से देखता नहीं, मानता नहीं, सुनता नहीं, अध्ययन करता नहीं, चिंतवन करता नहीं, भावना भी करता नहीं वह मोही अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आत्म श्रद्धान से वंचित है।

## रयणसार ग्रंथ की आराधना से शाश्वत स्थान

**इदि सज्जण पुज्जं रयणसारं गंथं णिरालसो णिच्चं।**
**जो पढइ सुणइ भावइ पावइ सो सासयं ठाणं।। 167।।**

**अर्थ :-** यह रयणसार नाम का ग्रंथ बड़े बड़े सज्जनों के द्वारा पूज्य है।



ऐसे ग्रंथ को पुरुष आलस छोड़कर प्रतिदिन पढ़ता है, सुनता है, इसकी भावना करता है, इसके अनुकूल अपनी प्रवृत्ति करता है, वह अविनश्वर मोक्ष स्थान को पाता है और शाश्वत सुख भोगता है।

## प्रदूषित परिणामी ही अधिक अधर्मी, स्थूल पाप बिना भी (कुज्ञानी - मोही-कुधर्मी बाह्य से धर्म क्रिया करते हुए भी अधिक पाप करते)

**आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल :- आत्मशक्ति से...क्या मिलिए...)**

**देव शास्त्र-गुरु गुण-गुणी निन्दा करते हैं मोही बहुचाव से।**
**तथापि स्वयं को सच्चा धार्मिक मानते, ऐसी विडम्बना है मोही की।। (1)**

**मोही के ही ऐसे भाव होते तथा निन्दा से बान्धते घाती कर्म।**
**घाती कर्म ही पंच संसार कारण, धाति नाश से बनते अरिहंत।। (2)**

**स्वयं होते कुज्ञानी-मोही होते क्रोध-मान-माया-लोभ सहित।**
**फैशन-व्यसन व पंचपाप सहित, तथाहि ईर्ष्या-द्वेष-घृणा सहित।। (3)**

**कट्टर-संकीर्ण दिखावा हेतु करते कुछ बाह्य धर्म व कर्म।**
**उसका भी फल चाहते ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि व वर्चस्व।। (4)**

**मोह के कारण स्व-दोषों को भी नहीं जानते हैं मदमस्त सम।**
**यथा चक्षु न स्व को देख पाती केवल देखती है बाह्य समान।। (5)**

**तीव्र दूषीत परिणाम से तीव्र पाप बान्धते मन्द परिणाम से मन्द।**
**तथाहि ज्ञात-अज्ञात आदि कारण से, बान्धते है यथायोग्य कर्म।। (6)**

**मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमत से भी बान्धते हैं पापकर्म।**
**केवल शरीर के ही स्थूल पाप काम से नहीं बान्धते अधिक पाप कर्म (7)**
**बाह्य स्थूल पाप बिना भी देव-शास्त्र-गुरु की निन्दा से घाति कर्म बान्धते**
**गुण-गुणी की प्रशंसा न सुहाना स्व-शिक्षा-दीक्षा गुरुओं का नाम छिपाते।।(8)**

**जिन गुरु से व जिस शास्त्रों से ज्ञानार्जन किया उनका नाम न बोलते**
**जिन ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन-लेखन किया उनको नहीं बोलते।।(9)**

**अन्य के ज्ञानार्जन व ज्ञान दान आदि में भी बाधा डालते।**
**इन सब की प्रशंसा न करते, किन्तु ईर्ष्या-घृणा-निन्दा करते।। (10)**

**इन सब कारण आदि से बान्धते, ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म।**
**इन सबसे बान्धते हैं महापाप स्वरूप दर्शन-मोहनीय कर्म।। (11)**

**हर अच्छे काम में विघ्नकारक अन्तराय कर्म भी इनसे बान्धते।**
**ऐसे महापाप तो व्रती श्रावक भी व्यापार-कृषि युद्धादि से भी नहीं बान्धते।(12)**
**नीच गोत्र कर्म व असातावेदनीय कर्म भी इससे बान्धते।**
**जहाँ पर मोहनीयादि घाती बान्धते, वहाँ तो सभी पाप भी बन्धते ।। (13)**

**इससे विपरीत दर्शन विशुद्धि आदि षोडस भावना से तीर्थंकर कर्म बान्धते।**
**देव-शास्त्र-गुरु-गुण-गुणी प्रशंसा-पूजा-प्रार्थना से महान् पुण्य बान्धते (14)**
**दया-दान-सेवा-समता-शान्ति-क्षमा, सहिष्णुता भावना मात्र से भी पुण्य बान्धते**
**किन्तु उक्त भावना आदि से रहित व निन्दादि से घोरातिघोर पाप बान्धते।।(15)**

**इसके हेतु उदाहरण हैं तंदुलमत्स्य व महामत्स्य धीवर व कृषक।**
**श्रीपाल व सात सौ वीर मुनि निन्दा से बने गलीतकुष्टरोगी प्रसिद्ध।।**
**पुण्य-पाप व बन्ध-मोक्ष शुभ-अशुभ-शुद्ध परिणाम के कारण।**
**सर्वज्ञ भगवान् द्वारा कथित ये परम रहस्य 'सूरी कनक' द्वारा भी मान्य।।(16)**
**नन्दौड़ 14.08.2018 रात्रि 08:54**

## आस्रव की विशेषता में कारण

तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव,अधिकरण और वीर्य विशेष के भेद से आस्रव की विशेषता होती है।

योग प्रत्येक संसारी जीव के होता है। योग होने पर भी सम्पूर्ण जीवों के आस्रव समान नहीं होता है। क्योंकि जीवों के परिणामों के अनंत भेद हैं। कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है -



**''णाणाजीव णाणाकम्म णाणाविह हवे लद्धि''**

अर्थात् संसार में अनेक जीव (अनंत) है उनके कर्म (अनंत कर्म) है। इसलिए इनकी लब्धिया भी नाना(अनंत) प्रकार की हैं। इसलिए उनके योग, उपयोग विभिन्न प्रकार के होते हैं। उसके अनुसार कर्म और बंध भी अनेक प्रकार के होते हैं।

**(1) तीव्र भाव** - अति प्रवृद्ध क्रोध, मान, माया और लोभादि के कारण परिणामों की तीव्रता को तीव्र कहते हैं वा बाह्य और आभ्यन्तर कारणों से कषायों की उदीरणा होने पर अत्यन्त संक्लिष्ट भाव होते हैं, अत्यन्त उग्र परिणाम होते हैं, उन परिणामों को तीव्र कहते हैं।

**(2) मन्द भाव** तीव्र से विपरीत परिणाम मन्द होते हैं। बाह्य आभ्यन्तर कारणों से कषायों की अनुदीरणा के कारण से उत्पद्यमान अनुद्रिक परिणाम मन्द होने से मन्द कहलाते हैं। अर्थात् कषायों की उदीरणा में परिणाम तीव्र होते हैं और कषाय की अनुदीरणा में परिणाम मन्द होते हैं।

**(3) ज्ञात भाव** ज्ञात मात्र वा जानकर के प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है। मारने के परिणाम न होने पर भी हिंसा हो जाने पर 'मैने मारा' यह जान लेना ज्ञात है अथवा 'यह प्राणी मारने योग्य है' ऐसा जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है।

**(4) अज्ञात भाव** - मद या प्रमाद से गमनादि क्रियाओं में बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव है। जैसे -सुरापान करने वाले की इन्द्रियाँ विकल हो जाती है, उसी प्रकार इन्द्रियों को मोहित करने वाले परिणाम मद कहलाते हैं। उस मद से तथा कुशल(आत्म हितकारक) क्रियाओं के प्रति अनादर भाव रूप प्रमाद के कारण गमनादि क्रियाओं में बिना जाने प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव कहलाता है।

**(5) अधिकरण भाव** - जिसमें पदार्थ अधिकृत किये जाते हैं या अधिकरण है। आत्मा के प्रयोजन को अर्थ कहते हैं- जहाँ-जहाँ जिसमें प्रयोजन सिद्ध किये जाते हैं, प्रस्तुत किये जाते हैं वह अधिकरण है, द्रव्य है। अर्थात क्रिया का आधारभूत द्रव्य अधिकरण है।

**(6) वीर्य भाव**- द्रव्य का स्वसामर्थ्य वीर्य है। द्रव्य की शक्ति विशेष वा सामर्थ्य विशेष को वीर्य कहते हैं।

## अधिकरणं के भेद

### अधिकरणं जीवाजीवाः। (7)

**अधिकरण जीव और अजीव रूप है**

जीव और अजीव ये आस्रव के अधिकरण और आधार हैं। यद्यपि सम्पूर्ण आस्रव जीव के ही होता है तथापि आस्रव के निमित्त जीव और अजीव दोनों के होते है। क्योंकि हिंसा आदि के उपकरण रूप से जीव और अजीव ही अधिकरण होते हैं। ये दोनों अधिकरण दस प्रकार के हैं-विष, लवण, क्षार,कटुक, अम्ल,स्नेह, अग्नि और खोटे रूप से प्रयुक्त मन-वचन और काय।

## जीवाधिकरण के भेद

**आद्यं संरम्भसमारम्भयोगकृतकारितानुमत**
**कषायविशेषैस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः। (8)**

**पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से 3 प्रकार का, योगों के भेद से तीन प्रकार का कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलने से 108 प्रकार का है।**

इस सूत्र में जीव के निमित्त से होने वाले आस्रव के भेद का वर्णन किया गया है। उस आस्रव के भेद 108 प्रकार के हैं। 108 प्रकार के आस्रव के प्रायश्चित स्वरूप या उसको दूर करने के लिए माला में 108 मणियाँ होती है। संरम्भ आदि का वर्णन निम्न प्रकार है -

**(1) संरम्भ** - प्रयत्न विशेष को संरम्भ कहते हैं। प्रमादी पुरुष का प्राणघात आदि के लिए प्रयत्न करने का संकल्प संरम्भ है।

**(2) समारम्भ** - हिंसादि साधनों को एकत्र करना समारम्भ है। साध्य क्रिया के साधनों को इकट्ठा करना समारम्भ है।

**(3) आरम्भ** - तत्व का कथन करने से सर्व ही (ये तीनों शब्द) भाव साधन हैं। अर्थात् संरम्भण संरम्भ, समारम्भण समारम्भ और आरम्भण आरम्भ हैं।

**(4 से 6) मन, वचन, काय योग** 'कायवाङ्मनस्कर्मयोगः' इस सूत्र में योग शब्द का व्याख्यान कर चुके हैं।



(7) **कृत** - कृत वचन स्वातंत्र्य प्रतिपत्ति के लिए है। स्वतंत्र रूप से जो आत्मा के द्वारा किया जाता है, वह कृत है।

**(8) कारित** - पर प्रयोग की अपेक्षा कारित का अभिधान है। जो दूसरे के द्वारा कराया जाता है, वह कारित कहलाता है।

**(9) अनुमोदना** - अनुमत शब्द से प्रयोजक के मानसिक परिणामों की स्वीकृति दर्शायी गई है। अर्थात् करने वाले के मानस परिणामों की स्वीकृति अनुमत है। जैसे कोई मौनी व्यक्ति किये जाने वाले कार्य का यदि निषेध नहीं करता है तो वह उसका अनुमोदक माना जाता है, उसी प्रकार कराने वाला प्रयोक्ता होने से और उन परिणामों का समर्थक होने से अनुमोदक है।

**(10 से 13) क्रोध, मान, माया और लोभ विशेष**-क्रोधादि कषायों का लक्षण कह चुके हैं कि जो आत्मा को कसती हैं, दुःख देती है, वे कषाय हैं।

अर्थ का अर्थान्तर से जाना विशेष है। विशेष किया जाता है वा विशेष करना, वह विशेष है अथवा विशिष्ट को विशेष कहते हैं।

विशेष का सम्बन्ध सबके साथ लगाना चाहिये। वह विशेष शब्द प्रत्येक के साथ सम्बन्धित है। जैसे संरम्भविशेष, समारम्भविशेष, कृतविशेष, कारितविशेष, अनुमोदितविशेष, योगविशेष और कषायविशेष।

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, योग कृत, कारित, अनुमोदित तथा कषायविशेष के द्वारा आस्रव का भेद होता है। तात्पर्य यह है कि क्रोधादि चार और कृत आदि तीन के भेद से कायादि योगों के संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ से विशिष्ट(सम्बन्ध) करने पर प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं।

**संरम्भो द्वादशधा क्रोधादिकृतादिकायसंयोगात्।**
**आरम्भोसमारम्भौ तथैव भेदास्तु षट्त्रिंशत्**

कहा भी है क्रोधादि और कृतादि के द्वारा कायसंरम्भ बारह प्रकार का है। इसी प्रकार समारम्भ और आरम्भ के साथ कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोध, मान,माया, लोभ का काययोग के साथ संयोग करने से बारह-बारह भेद होते हैं। काय के साथ आस्रव के ये छत्तीस भेद हैं वैसे ही वचनयोग और मनोयोग के साथ छत्तीस-छत्तीस भेद करने चाहिए। इन सबका जोड़ करने पर जीवाधिकरण आस्रव के कुल एक सौ आठ भेद होते हैं।

सूत्र में 'च' शब्द क्रोधादि कषायों के विशेषों का संग्रह करने के लिए है। अर्थात् 'च' शब्द से कषायों के भेद और उपभेदों का भी ग्रहण हो जाता है। अतः अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय के सोलह भेदों से गुणा करने पर जीवाधिकरण आस्रव के चार सौ बत्तीस भेद भी होते हैं।

प्रश्न-संरम्भ, समारम्भ आरम्भ आदि के आस्रवत्व कैसे हैं ?

उत्तर-क्रोधादि से आविष्ठ पुरुष के द्वारा कृत संरम्भ आदि क्रियाएँ कषायों से अनुरंजित होने से, नीले वस्त्र के समान अधिकरण भाव को प्राप्त होती हैं। जैसे नीले रग में डाला गया वस्त्र नीले रंग से अनुरंजित होने से नीला हो जाता है, उसी प्रकार संरम्भ आदि क्रियाएँ अनंतानुबंधी आदि कषायों से अनुरंजित होती है, अतः इन संरम्भादि में भी जीवाधिकरणत्व सिद्ध होता है।

## अजीवाधिकरण के भेद

**निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्। (9)**

पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार, दो और तीन भेद वाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग रूप हैं।

निर्वर्तना दो प्रकार की है। निक्षेप चार प्रकार का हैं संयोग दो प्रकार का है। निसर्ग तीन प्रकार का है। ये सब अजीवाधिकरण के भेद हैं।

मूल और उत्तर गुण के भेद से निर्वतना लक्षण अजीवाधिकरण दो प्रकार का है- मूलगुण निर्वर्तनाधिकरण और उत्तरगुण निर्वर्तनाधिकरण। पाँच प्रकार के शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छवास ये मूलगुण निर्वर्तना है और काष्ठ, पुस्तक चित्रकर्मादि उत्तरगुणनिर्वर्तना है। अर्थात् पाँच प्रकार के शरीर, मन, वचन, काय और श्वासोच्छ्वास इनकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है और काष्ठ, पाषाण, वस्त्र आदि के चित्राम बनाना जीव के खिलौने बनाना, लिखना आदि उत्तरगुणनिर्वर्तना है।

किसी वस्तु के रखने को निक्षेप कहते हैं इसके चार भेद हैं- अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण, दुष्प्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, सहसा निक्षेपाधिकरण और अनाभोग निक्षेपाधिकरण। (1) बिना देखे हुए किसी वस्तु को रख देना अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण है। (2) ठीक तरह से न शोधी हुई भूमि पर किसी वस्तु को रखना दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण है।(3) शीघ्रतापूर्वक किसी वस्तु को रखना सहसा



निक्षेपाधिकरण है। (4) किसी वस्तु को बिना देखे अयोग्य स्थान में चाहे जहाँ रखना अनाभोग निक्षेपाधिकरण है।

भक्तपान और उपकरण के भेद से संयोग दो प्रकार का है। मिलाने का नाम संयोग है, वह संयोग दो प्रकार का है। भक्तपान संयोगाधिकरण और उपकरण संयोगाधिकरण। (1) किसी अन्नपान को दूसरे अन्नपान में मिलाना भक्तपान संयोगाधिकरण है। (2) कमण्डलु, पुस्तक आदि उपकरणों को दूसरे उपकरणों के साथ मिलाना उपकरण संयोगाधिकरण है।

प्रवृत्ति करने को निसर्ग कहते हैं। कायादि के भेद से निसर्ग तीन प्रकार का है- कायनिसर्गाधिकरण, वाकनिसर्गाधिकरण ओर मनोनिसर्गाधिकरण।

काय की स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करना कायनिसर्ग है। वचन की इच्छानुसार प्रवृत्ति करना वाङ् निसर्गाधिकरण है और स्वेच्छानुसार मानसिक प्रवृत्ति मनोनिसर्गाधिकण है।

ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं।

**1. प्रदोष** - किसी के ज्ञानकीर्तन (महिमा सुनने) के अनन्तर मुख से कुछ न कहकर अंतरंग में पिशुनभाव होना, ताप होना प्रदोष है। मोक्ष की प्राप्ति के साधनभूत मति, श्रुत आदि पाँच ज्ञानों की वा ज्ञान के धारी की प्रशंसा करने पर वा उसकी प्रशंसा सुनने पर मुख से कुछ नहीं कहकर के मानसिक परिणामों में पैशून्य होता है वा अंतःकरण में उसके प्रति जो ईर्ष्या का भाव होता है, वह प्रदोष कहलाता है।

**2. निह्नव** -दूसरे के अभिसन्धान से ज्ञान का व्यपलाप करना निन्हव है। यत् किञ्चित पर निमित्त को लेकर किसी बहाने से किसी बात को जानने पर भी मैं इस बात को नहीं जानता हूँ, पुस्तक आदि के होने पर भी 'मेरे पास पुस्तक आदि नहीं है' इस प्रकार ज्ञान को छिपाना ज्ञान का व्यपलपन करना, ज्ञान के विषय में वञ्चन करना निह्नव है।

**3. मात्सर्य** - देय ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है। किसी कारण से आत्मा के द्वारा भावित, देने योग्य ज्ञान को भी योग्य पात्र के लिए नहीं देना मात्सर्य है।

**4. अन्तराय** - ज्ञान का व्यवच्छेद करना अन्तराय है। कलुषता के कारण ज्ञान का व्यवछेद करना, कलुषित भावों के वशीभूत होकर ज्ञान के साथ पुस्तक आदि का व्यवच्छेद करना, नाश करना, किसी के ज्ञान में विघ्न डालना अन्तराय है।

**5. आसादना**-वचन और काय से वर्जन करना असादना है। दूसरे के द्वारा प्रकाशित ज्ञान का काय एवं वचन से वर्जन (गुण-कीर्तन, विनय आदि नहीं करना) आसादना है।

**6. उपघात** - प्रशस्त ज्ञान में दूषण लगाना उपघात है। स्वकीय बुद्धि और हृदय की कलुषता के कारण प्रशस्त ज्ञान भी अप्रशस्त, युक्त भी अयुक्त प्रतीत होता है अतः समीचीन ज्ञान में भी दोषों का उद्भावन करना, झूठा दोषारोपण करना उपघात कहलाता है, उसको उपघात जानना चाहिये।

आसादना और उपघात में एकत्व नहीं है क्योंकि आसादना में विद्यमान ज्ञान का विनय-प्रकाशन, गुणकीर्तन आदि न करके अनादर किया जाता है और उपघात में ज्ञान को अज्ञान कहकर ज्ञान का ही नाश किया जाता है अथवा ज्ञान के नाश करने का अभिप्राय रहता है; अतः आसादना और उपघात में भेद स्पष्ट है।

'तत्' शब्द से ज्ञान-दर्शन ग्रहण किये जाते हैं। 'तत्' शब्द से ज्ञान-दर्शन के प्रति निर्देश किया गया है। अर्थात् ज्ञान और दर्शन के प्रति प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात, ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं।

प्रदोषादि के विषयभेद से भेद सिद्ध होने से ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव पृथक-पृथक हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव भिन्न-भिन्न समझने चाहिये, क्योंकि विषय-भेद से प्रदोषादि भिन्न हो जाते हैं। ज्ञान विषयक प्रदोषादि ज्ञानावरण के और दर्शन विषयक प्रदोषादि दर्शनावरण के आस्रव के कारण होते हैं। आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल में अध्ययन करना, अश्रद्धा, शास्त्राभ्यास में आलस्य करना, अनादर से अर्थ का श्रवण, तीर्थोपरोध (दिव्य ध्वनि) के काल में स्वयं व्याख्यान करने लगना, स्वकीय बहुश्रुत का गर्व करना, मिथ्योपदेश देना, बहुश्रुतवान् का अपमान व अनादर करना, अपने पक्ष का दुराग्रह, स्वपक्ष के दुराग्रह के कारण असंबद्ध प्रलाप करना, सूत्र विरुद्ध बोलना, असिद्ध



से ज्ञानाधिगम(असिद्ध से ज्ञान प्राप्ति) शास्त्र विक्रय और हिंसादि कार्य ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं। दर्शन मात्सर्य, दर्शनान्तराय, आँखें फोड़ना, इन्द्रियों के विपरीत प्रवृत्ति अपनी दृष्टि का गर्व, बहुत देर तक सोये रहना, दिन में सोना, आलस्य, नास्तिक्य, सम्यग्दृष्टियों में दूषण लगाना, कुतीर्थ प्रशंसा, जीव हिंसा और मुनिगणों के प्रति ग्लानि के भाव आदि भी दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं।

## असाता वेदनयी के आस्रव

**दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य। (1)**

अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान, दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिवेदना ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं।

**(1) दुःख** -पीड़ा लक्षण परिणाम को दुःख कहते हैं। विरोधी पदार्थों का मिलना, अभिलाषित (इष्ट) वस्तु का वियोग, अनिष्ट संयोग एवं निष्ठुर वचन श्रवण आदि बाह्य साधनों की अपेक्षा से तथा असाता वेदनीय के उदय से उत्पद्यमान पीड़ा लक्षण परिणाम दुःख कहा जाता है।

**(2) शोक**- अनुग्राहक के सम्बन्ध का विच्छेद होने पर वैकल्प विशेष शोक कहलाता है। अनुग्रह एवं उपकार करने वाले जो बन्धु आदि हैं उनका विच्छेद वा वियोग हो जाने पर उसका बार-बार विचार करके जो चिन्ता, खेद और विकलता आदि मोहकर्म विशेष शोक के उदय से मानसिक ताप होता है, वह शोक कहलाता है।

**(3) ताप** - परिवादादि निमित्त के कारण कलुष अन्तःकरण का तीव्र अनुशय ताप है। परिभवकारी कठोर वचन के सुनने आदि से कलुष चित्त वाले व्यक्ति के जो भीतर-ही भीतर तीव्र जलन या अनुशय पश्चाताप के परिणाम होते है, उसे ताप कहते हैं।

**(4) आक्रन्दन**- परिताप से उत्पन्न अश्रुपात, प्रचुर विलाप आदि से अभिव्यक्ति होने वाला क्रन्दन ही आक्रन्दन है। मानसिक परिताप के कारण अश्रुपात, अङ्गविकार माथा फोड़ना, छाती कूटना आदि पूर्वक विलाप करना, रुदन करना आदि क्रियाएँ होती हैं, वह आक्रन्दन है वा उसे आक्रन्दन समझना चाहिये।

**(5) वध**- आयु इन्द्रिय, बल,श्वासोच्छ्वास आदि का वियोग करना वध है।

भवधारण का कारण आयु है। रूप-रसादि, ग्रहण करने का साधन वा निमित्त इन्द्रियाँ हैं। कायादि वर्गणा का अवलम्बन श्वासोच्छ्वास का लक्षण प्राण है। इन प्राणों का परस्पर विघात करना, वध कहा जाता है।

**परिवेदन-** अतिसंक्लेशपूर्वक स्व पर अनुग्राहक, अभिलषित विषय के प्रति अनुकम्पा उत्पादक रुदन परिवेदन है। अतिसंक्लेश परिणामों के अवलम्बन पूर्वक ऐसा रुदन करना, विलाप करना जिसे सुनकर अपने तथा दूसरे को अनुकम्पा उत्पन्न हो जाय, उसे परिवेदन कहते हैं।

यद्यपि दुःख की ही अनंत जातियाँ होने से ये सभी दुःख रूप हैं तथापि कुछ मुख्य-मुख्य जातियों का निर्देश किया है। जैसे 'गौ' अनेक प्रकार की होती और केवल 'गौ' कहने से सबका ज्ञान नहीं हो पाता अतः खण्डी, मुण्डी, शाबलेय, श्वेत काली आदि विशेषों को ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार दुःख विषयक आस्रव के असंख्येय लोकप्रमाण भेद संभव होने से दुःख ऐसा कहने पर विशेष ज्ञान न होने से कुछ विशेष निदर्शन से उसके विवेक(भेद) की प्रतिपत्ति किस प्रकार होसके, इसलिये शोकादि को पृथक ग्रहण किया है; जिससे ये सर्व भिन्न-भिन्न सुगृहीत होते हैं, इनमें दुःख को लक्षण और उसी का विस्तार है, वह सुष्ठु रीति से दुःख के पर्यायवाची शब्दों को जानने के लिये हैं।

दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन का ग्रहण दुःख के विकल्पों का उपलक्षण रूप है। जो उपलक्षण होता है, वह अपने सदृश का ग्राही होता है अतः शोकादि के ग्रहण से असाता वेदनीय के आस्रव के कारणभूत अन्य सर्व विकल्पों का संग्रह हो जाता है। अशुभ प्रयोग परपरिवाद, पैशून्य, अनुकम्पा का अभाव (अदया), परपरिताप, , आंगोपांगच्छेद, भेद, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सन, तक्षण, विशंसन, बन्धन, रोधन, मर्दन, दमन, वाहन, विहेड़न ह्रेपण, शरीर को रुखा कर देना, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, संक्लेशप्रदुर्भावन, अपनी आयु यदि अधिक हो तो उसका अभिमान, निर्दयता, हिंसा, महारंभ, महापरिग्रह का अर्जन, विश्वासघात, कुटिलता, पापकर्म जीवित्व, अनर्थदण्ड, विषमिश्रण, बाण, जाल, पाश, रस्सी पिञ्जरा, यंत्र आदि हिंसा के साधनों का उत्पादन, बलाभियोग शस्त्र देना और पापमिश्रित भाव इत्यादि भी दुःख शोकादि से गृहीत होते हैं। आत्मा में पर में और उभय में रहने वाले ये दुःखादि परिणाम असाता वेदनीय के आस्रव के कारण होते हैं।



# साता वेदनीय का आस्रव

**भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगःक्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य। (12)**
**भूतअनुकम्पा, व्रतीअनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच ये साता वेदनीय के आस्रव हैं।**

**भूत-** आयुकर्म के उदय विशेष होने से होने वाले भूत प्राणी कहलाते हैं। आयुकर्म के उदय से उन उन योनियों में होने वाले प्राणियों को भूत कहते है अर्थात् सर्वप्राणी भूत कहलाते हैं।

**व्रती-**अहिंसादी व्रतों को धारण करने वाले व्रती कहलाते हैं। वे व्रती दो प्रकार के हैं श्रावक और मुनि। आगार (घर) के प्रति अनुत्सुक संयतीजन अनगार हैं और संयतासंयत गृहस्थ एकदेश व्रती है।

**अनुकम्पा-** अकम्पन को अनुकम्पा कहते हैं। दयाद्र व्यक्ति का हृदय दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर काँप जाता है, वह अनुकम्पा है। भूत (प्राणी) और दोनों प्रकार के व्रतियों में अनुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा है।

**दान-**पर की अनुग्रह बुद्धि से अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। आत्मीय धन आदि वस्तु का दूसरों का उपकार करने की बुद्धि से त्याग करना दान कहा जाता है।

**सराग-**कषायों को निवारण करने में तत्पर अक्षीणकषायी सराग कहलाता है। पूर्वोपार्जित कर्म के उदय से जिसकी कषायें शांत नहीं हुई है परन्तु जो कषायों का निवारण(शांत) करने के लिए तैयार है, वह सराग कहलाता है।

**सरागसंयम-** प्राणियों और इन्दियों में अशुभ प्रवृत्ति की विरति का नाम संयम है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि प्राणियों में और चक्षु आदि पंचेन्द्रियों के विषयों में अशुभ प्रवृत्ति का त्याग करना वा अशुभ प्रवृत्ति से निवृत्त होना संयम है। अर्थात् प्राणियों की रक्षा करना और इन्द्रियों की विषय-प्रवृत्ति को रोकना संयम है। सराग (राग सहित प्राणी) का संयम सरागसंयम है अथवा सराग (राग के साथ) संयम राग संयम है।

आदि शब्द से संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप, आदि का भी ग्रहण है। संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप का भी आदि शब्द से ग्रहण किया गया है। एकदेश विरति को संयमासंयम कहते हैं अर्थात् 'जो त्रस हिंसा का त्याग

करने से संयम और स्थावर हिंसा का त्याग न करने से असंयम तथा दोनों संयम और असंयम के साथ होने से संयमासंयम कहलाता है। विषयों के अनर्थ की निवृत्ति को आत्म अभिप्राय से नहीं करते हुए परतंत्रता के कारण भोगोपभोग का निरोध होने पर शांतिपूर्वक सहन करना अकामनिर्जरा है। यथार्थ प्रतिपति (ज्ञान) अभाव होने से अज्ञानी मिथ्यादृष्टि बाल कहलाते हैं। उन अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का अग्नि में प्रवेश पंचाग्नि तप आदि बालतप है।'

**योग** – निरवद्य क्रिया विशेष के अनुष्ठान को योग कहते हैं। योग अर्थात् पूर्ण उपयोग से जुट जाना। योग, समाधि, सम्यक् प्रणिधान ये सब एकार्थवाची है। दूषण की निवृत्ति के लिए योग शब्द का ग्रहण किया गया है अथवा, भूतव्रत्यनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग भूतवृत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोग कहलाता है।

**क्षान्ति** – धर्मप्रणिधान (धार्मिक भावनाओं) से क्रोधादि की निवृत्ति करना क्षान्ति है। क्रोधादि कषायों को शुभ परिणाम-भावनापूर्वक निवृत्ति करना क्षान्ति कहलाती है। अर्थात् क्रोध के कारण मिलने पर भी सहनशील रहना, उत्तेचित नहीं होना क्षान्ति है।

**शौच** – लोभ के प्रकारों के उपरम को शौच कहते हैं। लोभ के अनेक भेद हैं उनका उपरम करना, त्याग करना शुचि कहलाता है और शुचि का भाव शौच कहलाता है। स्वद्रव्य का ममत्व नहीं छोड़ना, दूसरे के द्रव्य का अपहरण करना, धरोहर को हड़पना आदि लोभ के प्रकार हैं। यहाँ पर इति शब्द प्रकारार्थक है। इस प्रकार भूतव्रत्यनुकम्पा आदि साता वेदनीय के आस्रव के कारण हैं।

## दर्शनमोहनीय का आस्रव

**केवली श्रुत, संघ, धर्म और देव इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है।**

जिनका ज्ञान आवरण रहित है वे केवली कहलाते हैं। अतिशय बुद्धि वाले गणधर देव उनके उपदेशों का स्मरण करके जो ग्रंथों की रचना करते हैं वह श्रुत कहलाता है। रत्नत्रय से युक्त श्रमणों का समुदाय संघ कहलाता है। सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित आगम में उपदिष्ट अहिंसा ही धर्म है। चार निकाय वाले देवों का कथन पहले कर आये हैं। गुण वाले बड़े पुरुषों में जो दोष नहीं है उनका उनमें अद्भावन



करना अवर्णवाद है। इन केवली आदि के विषय में किया गया अवर्णवाद दर्शनमोहनीय के आस्रव का कारण है। यथा केवली कवलाहार से जीते हैं इत्यादि रूप से कथन करना केवलियों का अवर्णवाद है। शास्त्रों में माँस भक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूप से कथन करना श्रुत का अवर्णवाद है। ये शुद्र हैं, अशुचि हैं इत्यादि रूप से अपवाद करना संघ का अवर्णवाद है। जिन देव के द्वारा उपदिष्ट धर्म में कोई सार नहीं जो इसका सेवन करते हैं वे असुर होंगे। इस प्रकार कथन करना धर्म का अवर्णवाद है। देव सुरा और माँस आदि का सेवन करते हैं। इस प्रकार का कथन देवों का अवर्णवाद है।

## चारित्र मोहनीय का आस्रव

**कषायोंदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्र मोहस्य। (14)**

**कषाय के उदय से होने वाले तीव्र आत्मपरिणाम चारित्र मोहनीय के आस्रव के कारण है।**

कषायों के उदय से जो आत्मा का तीव्र परिणाम होता है वह चारित्र मोहनीय का आस्रव जानना चाहिए।

1. **कषाय वेदनीय के आस्रव** – स्वयं कषाय करना, दूसरों में कषाय उत्पन्न करना, तपस्वीजनों के चारित्र में दूषण लगाना, संक्लेश को पैदा करने वाले लिंग(वेष) और व्रत को धारण करना, धर्म का विध्वंस करना, किसी को शीलगुण, देशसंयम और सकलसंयम से च्युत करना, मद्य-माँस आदि से विरक्त जीवों को उनसे बिचकाना धार्मिक कार्यों में अन्तराय करना आदि क्रियाएँ एवं भाव कषाय वेदनीय के आस्रव के कारण।

2. **हास्य वेदनीय के आस्रव** – सत्य धर्म का उपहास करना, दीन मनुष्य की दिल्लगी उड़ाना, कुत्सित राग को बढ़ाने वाला हँसी-मजाक करना, बहुत बकने और हँसने की आदत रखना आदि हास्य वेदनीय के आस्रव हैं।

3. **रति वेदनीय के आस्रव** – नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में लगे रहना, व्रत और शील के पालन में रुचि न रखना आदि रति वेदनीय के आस्रव हैं।

4. **अरति वेदनीय के आस्रव** – दूसरों में अरति उत्पन्न हो और रति का विनाश हो ऐसी प्रवृत्ति करना और पापी लोगों की संगति करना आदि अरति वेदनीय

के आस्रव हैं।

**5. शोक वेदनीय के आस्रव** -स्वयं शोकातुर होना, दूसरों के शोक को बढ़ाना तथा ऐसे मनुष्यों का अभिनन्दन करना शोक वेदनीय के आस्रव हैं।

**6. भय वेदनयी के आस्रव** - भयरूप परिणाम और दूसरों को भय पैदा करना आदि भय वेदनीय के कारण हैं।

**7. जुगुप्सा वेदनीय के आस्रव** - सुखकर क्रिया और सुखकर आचार से घृणा करना और अपवाद करने में रुचि रखना आदि जुगुप्सा वेदनीय के आस्रव हैं।

**8. स्त्री वेदनीय के आस्रव** - असत्य बोलने की आदत, अतिसन्धानपरता (दूसरों का भेद खोलना), दूसरों के छिद्र ढूँढ़ना और बढ़ा हुआ राग आदि हैं।

**9. पुरुष वेदनीय के आस्रव** - क्रोध का अल्प होना, ईर्ष्या नहीं करना, अपनी स्त्री में संतोष करना आदि पुरुष वेदनीय के आस्रव हैं।

**10. नपुंसक वेदनीय के आस्रव** - प्रचुर मात्रा में कषाय करना, गुप्त इन्द्रियों का विनाश करना और परस्त्री से बलात्कार करना आदि नपुंसक वेदनीय के आस्रव हैं।

## नरक आयु का आस्रवः

**बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुष :। (15)**

**बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाले का भाव नरकायु का आस्रव है।**

प्राणियों को दुःख पहुँचाने वाली प्रवृत्ति करना आरम्भ है। यह वस्तु मेरी है इस प्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है। जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह हो वह बहुत आरम्भ ओर बहुत परिग्रह वाला कहलाता हैं और उसका भाव बह्वारम्भ परिग्रहत्व है। हिंसा आदि क्रूर कार्यों में निरंतर प्रवृत्ति, दूसरे के धन का अपहरण, इन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्ति तथा मरने के समय कृष्ण लेश्या और रौद्रध्यान आदि का होना नरकायु के आस्रव हैं।

## तिर्यंच आयु का आस्रव

## माया तैर्यग्योनस्य(16)

**माया तिर्यंचायु का आस्रव है।**

चारित्रमोह के उदय से कुटिल भाव होता है, वह माया है। चारित्र मोह कर्म



के उदय से उत्पन्न जो आत्मा का कुटिल स्वभाव है, वह माया कहलाती है। संक्षेपतः वह माया निकृति तिर्यंच आयु के आस्रव का कारण है। विस्तार से मिथ्यात्वयुक्त अधर्म का उपदेश, बहु आरम्भ, बहु परिग्रह, अतिवंचना (अत्यन्त मायाचार), कूटकर्म, पृथ्वी की रेखा के समान रोष, निःशीलता शब्द और संकेत आदि से परवंचना का षड्यंत्र, छल-प्रपञ्च की रुचि, परस्पर फूट डालना, अनर्थोभ्दावन, वर्ण, रस, गन्ध आदि को विकृत करने की अभिरुचि, जातिकुलशीलसंदूषण, विसंवाद में रुचि, मिथ्याजीवित्व, किसी के सदुणों का लोप, असद्गुणख्यापन, नील एवं कापोत लेश्या के परिणाम, आर्तध्यान और मरणकाल में आर्त्तरौद्रपरिणाम इत्यादि तिर्यंच आयु के आस्रव के कारण हैं।

## मनुष्य आयु का आस्रव

**अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य । (17)**

**अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले का भाव मनुष्यायु का आस्रव है।**

नरक आयु के आस्रव के कारणों से विपरीत भाव मनुष्य आस्रव के कारण हैं। नरक आयु के आस्रवों के कारण बहु आरम्भादि का वर्णन कर दिया है। उससे विपरीत अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रहत्व, संक्षेप में मनुष्य आयु के आस्रव के कारण हैं। विस्तार से मिथ्यादर्शन सहित बुद्धि, विनीत स्वभाव, प्रकृतिभद्रता, मार्दव-आर्जव परिणाम, अच्छे आचरणों में सुख मानना, रेत की रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार, अल्पारम्भ, अल्प परिग्रह, संतोष में रति, हिंसा से विरक्ति, दुष्ट कार्यों से निवृत्ति , स्वागत तत्परता, कम बोलना, प्रकृति मधुरता, सबके साथ उपकार-बुद्धि रखना, औदासीन्यवृत्ति, ईर्ष्यारहित परिणाम, अल्प संक्लेशता, गुरु, देवता, अतिथि की पूजा-सत्कार में रुचि, दानशीलता, कापोत, पीत लेश्या के परिणाम, मरण समय में धर्मध्यान परिणति आदि लक्षण वाले परिणाम मनुष्यायु के आस्रव के कारण हैं।

## स्वभाव मार्दवं च। (18)

**स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है।**

उपदेश की अपेक्षा के बिना होने वाली कोमलता स्वभाविक कहलाती है। मृदु का भाव या कर्म मार्दव है, स्वभाव से होने वाला मार्दव स्वभाविक मृदुता है।

जो जीव स्वाभाविक मृदुता से सहित होते हैं वे भी मनुष्य आयु का आस्रव करते हैं। 17वें सूत्र में मनुष्य आयु के आस्रव का कारण बताने के बाद भी इस सूत्र में अलग से मनुष्य आयु के आस्रव का वर्णन इसलिये किया गया कि स्वाभाविक सरलता से मनुष्य आयु का आस्रव जैसे होता है वैस ही देव आयु का आस्रव का भी कारण बनता है।

## सब आयुओं का आस्रव

### निःशिल्य व्रतत्वं च सर्वेषाम्। (19)

**शील रहित और व्रत रहित होना सब आयुओं का आस्रव है।**

सूत्र में जो 'च' शब्द है वह अधिकार प्राप्त आस्रवों के समुच्चय करने के लिए हैं। इससे यह अर्थ निकलता है कि अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह रूप भाव तथा शील और व्रतरहित होना सब आयुओं के आस्रव हैं।

दिग्व्रत आदि सात शील और अहिंसादि पाँच व्रतों के अभाव से भी यदि कषाय मंद है और लेश्याएँ शुभ हैं तब देव और मनुष्य आदि शुभ आयु का आस्रव होता है और जब कषाय तीव्र है और लेश्याएँ अशुभ रहती है तब तिर्यंच और नरक आदि अशुभ आयु का आस्रव होता है। इसलिए इस सूत्र में कहा है कि शील रहितता एवं व्रत रहितता से सम्पूर्ण आयु का आस्रव होता है।

**सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव हैं।**

सरागसंयमादि शुभ परिणाम देवायु के आस्रव के कारण हैं। विस्तार से तो कल्याणकारी धार्मिक मित्रों की संगति, आयतनसेवा, सद्धर्म श्रवण, स्वअगौरवदर्शन, निर्दोश प्रोषधोपवास, तप की भावना, बहुश्रुतत्त्व, आगमपरता, कषायों का निग्रह, पात्रदान, पीत पद्मलेश्या के परिणाम और मरण समय में धर्मध्यान रूप परिणाम आदि शुभ परिणाम सौधर्मादि कल्पवासी देव आयु के आस्रव के कारण हैं। अव्यक्त सामायिक और सम्यग्दर्शन की विराधना आदि भवनवासी आदि देवों की आयु के और महर्धिक मनुष्यों की आयु के आस्रव के कारण हैं। पाँच अणुव्रतधारी, सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तीर्यंच, सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होते हैं यदि पंचाणुव्रत धारक मानव और तिर्यंच सम्यग्दर्शन की विराधना कर देते हैं



तो वे भवनवासी आदि देवों में उत्पन्न होते हैं। नहीं जाना है- जीव अजीव के स्वरूप को जिन्होंने ऐसे तत्वज्ञानशून्य बालतप तपने वाले, अज्ञानी, तत्त्व-कुतत्त्व को नहीं जानने वाले, अज्ञान पूर्वक संयम का पालन करने वाले, क्लेश के अभाव विशेष यानी (मन्द कषाय) के कारण कोई भवनवासी व्यन्तरादि में उत्पन्न होते हैं कोई सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक उत्पन्न होते हैं और कोई इन भावों से मरकर मानव एवं तीर्यंच पर्याय में भी उत्पन्न हो सकते हैं। अकामनिर्जरा, भूख-प्यास का सहना, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन, पृथ्वी पर शयन, मलधारण (स्नान नहीं करना) परितापादि परिषहों से खेद-खिन्न नहीं होना, गूढ़ पुरुषों के बंधन में पड़ जाने पर भी नहीं घबड़ाना , दीर्घकाल तक रोगी रहने पर भी संक्लेश भाव नहीं करना, वृक्ष या पर्वत के शिखर से झम्पापात करना, अनशन, अग्निप्रवेश, विषभक्षण आदि में धर्म मानने वाले कुतापस मरकर व्यन्तरदेव, मनुष्य ओर तीर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। जिन्होंने शील व्रतों को धारण नहीं किया है किन्तु जिनका हृदय अनुकम्पा से ओतप्रोत है, जिनके जलरेखा सदृश रोष है तथा जो भोगभूमि में उत्पन्न हैं, ऐसे तिर्यंच और मनुष्य व्यन्तरादि में उत्पन्न होते हैं।

### सम्यक्त्वं च। (21)

## सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है।

विशेष कथन न होने पर भी पृथक सूत्र होने से सौधर्मादि विशेष गति जाननी चाहिये। सम्यक्त्व देवायु के आस्रव का कारण है, ऐसा सामान्य कथन होने पर भी सम्यग्दर्शन, सौधर्मादि कल्पवासी देव सम्बन्धी आयु के आस्रव का कारण हैं, यह समझना चाहिए। क्योंकि पृथक सूत्र से यह ज्ञात होता है। यदि सामान्य रूप से सम्यग्दर्शन देव आयु के आस्रव का कारण इष्ट होता तो पृथक सूत्र की रचना व्यर्थ होती। क्योंकि पूर्व सूत्र में ही देवायु के आस्रव के कारण कहे हैं।

सम्यक्त्व के साथ नियम है कि सम्यग्दृष्टि सौधर्मादि विमानवासी देवों की आयु का ही बंध करता है, अन्य आयु का नहीं, इसी प्रकार सरागसंयम और संयम का भी नियम है कि वे भी स्वर्गों की आयु का बंध करते हैं। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना सरागसंयम और संयमासंयम की उत्पत्ति नहीं है अर्थात् सम्यक्त्व के अभाव में सरागसंयम और संयमासंयम नहीं हो सकते।

## अशुभ नामकर्म का आस्रव

**योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।(22)**

**योग व्रकता और विसंवाद ये अशुभ नामकर्म के आस्रव हैं।**

मन में कुछ सोचना, वचन से कुछ दूसरे प्रकार से कहना और काय से भिन्न रूप से ही प्रवृत्ति करना योग वक्रता है। मन, वचन और काय का व्याख्यान पहले किया जा चुका है, उनकी कुटिलता योगवक्रता कहलाती है। अनार्जव का प्रयत्न ही कुटिलता है।

अन्यथा प्रवृत्ति करना, कराना विसंवादन है। दूसरों को अन्यथा प्रवृत्ति कराना, वस्तु के स्वरूप का अन्यथा प्रतिपादन करना अर्थात् श्रेयोमार्ग पर चलने वालों को उस मार्ग की निन्दा करके बुरे मार्ग पर चलने को कहना विसंवादन है।

'च' शब्द अनुक्त के समुच्चय के लिए है। अनुक्त अशुभ नामकर्म के आस्रव का संग्रह करने के लिए 'च' शब्द का प्रयोग किया गया है। अनुक्त अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण कौन-कौन हैं ? मिथ्यादर्शन, पिशुनता अस्थिर चित्त स्वभावता, कूटमान-तुलाकरण (झूठे बाट, तराजू रखना), कृत्रिम सुवर्ण मणि रत्न आदि बनाना, झूठी साक्षी देना, अंग-उपांग का छेदन करना, वर्ण,गंध, रस, स्पर्श का विपरीतपना अर्थात् स्वरूप विकृति कर देना यंत्र, पिंजरा आदि पीड़ाकारक पदार्थ बनाना, एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का विषय सम्बन्ध करना, माया की बहुलता, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, मिथ्याभाषण, परद्रव्यहरण, महारम्भ, महापरिग्रह, उज्ज्वल वेष और रूप का घमण्ड करना, कठोर और असभ्य भाषण करना, क्रोधभाव रखने और अधिक बकवाद करने में अपने सौभाग्य का उपभोग करना, बढ़िया-बढ़िया आभूषण पहनने की चाह रखना, जिन मन्दिर-चैत्यालय से गंध (चन्दन) माल्य, धूप आदि को चुरा लेना,किसी की विडम्बना करना, उपहास करना, ईंट-चूने का भट्टा लगाना, वन में अग्नि लगाना, प्रतिमा का, प्रतिमा के आयतन का अर्थात चैत्यालय का और जिनकी छाया में विश्राम किया जाये ऐसे बाग-बगीचों का विनाश करना, तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ करना तथा पापकर्म जिसमें हो ऐसी आजीविका करना इत्यादि बातों से भी अशुभ नामकर्म का आस्रव होता है। ये सब अशुभ नामकर्म के आस्रव के हेतु हैं।



## शुभ नामकर्म का आस्रव

**तद्विपरीतं शुभस्य। (23)**

**उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद ये शुभ नामकर्म के आस्रव हैं।**

सरल योग और अविसंवाद उस योग वक्रता आदि से विपरीत हैं। मन, वचन, काय की सरलता और अविसंवाद शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण हैं। धर्मात्मा पुरुषों का दर्शन करना, आदर-सत्कार करना, उनके प्रति सद्भाव रखना, संसार भीरुता, प्रमाद का त्याग, निश्चल चारित्र का पालन आदि पूर्वोक्त अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारणों से विपरीत परिणाम शुभ नामकर्म के आस्रव के कारण हैं। इन सब शुभ नामकर्म के आस्रव के कारणों का 'च' शब्द से संग्रह होता है, ऐसा समझना चाहिए।

## तीर्थंकर प्रकृति का आस्रव

**दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिवैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य। (24)**

**दर्शनविशुद्धि, विनय संपन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग,सतत् संवेग शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वेयावृत्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव है।**

**(1) दर्शनविशुद्धि** – जिनोपदिष्ट निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग में निर्शंकितादि आठ गुण सहित रुचि करना दर्शनविशुद्धि है। जिनेन्द्र भगवान् अर्हंत् परमेष्ठी के द्वारा प्रतिपादित निर्ग्रंथ लक्षण मोक्षमार्ग में रुचि होना दर्शनविशुद्धि है। इस दर्शनविशुद्धि के 1. निर्शंकितत्व 2. निःकांक्षता, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टिता, 5.उपबृहण वा उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. वत्सलता और 8 प्रभावना ये आठ अंग हैं।

**(1) निःशंकितत्व** - इहलोकभय, परलोकभय, व्याधिभय, मरणभय, अगुप्तिभय, अरक्षणभय और आकस्मिकभय इन सात भयों से मुक्त रहना अर्थात् मरण आदि से भयभीत नहीं होना अथवा जिनेन्द्र भगवान् कथित तत्त्व में 'यह है या नहीं' इस प्रकार की शंका नहीं करना निःशंकित है।

**(2) निःकांक्षता**- धर्म को धारण करके इस लोक और परलोक में विषयभोगों की कांक्षा नहीं करना और अन्य कुदृष्टियों की (मिथ्यादृष्टि सम्बन्धी) आकांक्षाओं का निरास करना अर्थात् मिथ्याधर्म की वांछा नहीं करना निःकांक्षित अंग है।

**(3) निर्विचिकित्सा**-शरीरादि के अशुचि स्वभाव को जानकर उसमें शुचित्व के मिथ्यासंकल्प को छोड़ देना अथवा अर्हंत् के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन में 'यह अयुक्त है' जिन प्रवचन घोर कष्टदायक है' 'ये जिनकथन घटित नहीं हो सकते' इत्यादि रूप से जिनधर्म के प्रति अशुभ भावनाओं से चित्त में विचिकित्सा (ग्लानी) नहीं करना निर्विचिकित्सा अंग है।'

**(4) अमूढ़दृष्टिता** - तत्त्व के समान अवभासमान अनेक प्रकार के मिथ्यावादियों के मिथ्या मार्गों में युक्त-अयुक्त (योग्यायोग्य) भावों की परीक्षा रूपी चक्षुओं के द्वारा भले प्रकार से निर्णय करके उनसे मोह नहीं करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

**(5) उपवृहण**- उत्तम क्षमा आदि धर्म-भावनाओं के द्वारा आत्मीय-धर्म की वृद्धि करना, आत्मगुणों का विकास करना उपवृहण अंग है।

**(6) स्थितिकरण** - कषायोदय से धर्मभ्रष्ट होने के कारण उपस्थित होने पर भी अपने धर्म से परिच्युत नहीं होना, उसका बराबर पालन करना स्थितिकरण अंग है।

**(7) वत्सलता**- जिनप्रणीत धर्मामृत से नित्य अनुराग रखना वात्सल्य अंग है।

**(8) प्रभावना** - सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के प्रभाव से आत्मा को प्रकाशित करना प्रभावना अंग है।

**(2) विनयसम्पन्नता** - ज्ञानादि में तथा ज्ञानधारियों में आदर करना तथा



उनमें कषाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है। सम्यग्ज्ञानादि मोक्ष के साधनों में तथा ज्ञानादि के साधन (निमित्त) गुरु आदि में योग्य रीति से सत्कार आदर करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनयसम्पन्नता है।

**(3) शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना** - चारित्र के विकल्परूप शीलव्रतों में निर्दोष प्रवृत्ति शीलव्रतेष्वनतिचार है। अहिंसा आदि व्रत तथा उनके परिपालन के लिए क्रोधादि के त्याग रूप शीलों में मन, वचन, काय की निर्दोश प्रवृत्ति करना शीलव्रतेष्वनतिचार है।

**(4) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग** - ज्ञानभावना से नित्ययुक्तता ज्ञानोपयोग है। जीवादि पदार्थरूप स्वतत्त्वविषय को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जानना है लक्षण जिनका ऐसे मतिज्ञानादि विकल्परूप ज्ञान पाँच प्रकार के हैं। अज्ञान की निवृत्ति इनका साक्षात् फल है तथा हित प्राप्ति, अहित-परिहार और उपेक्षा यह व्यवहित (परोक्ष) फल है। इस ज्ञान की भावना में सदा तत्पर रहना ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।

**(5) सतत संवेग** - संसार के दुःखों से नित्य भयभीत रहना संवेग है। शारीरिक, मानसिक आदि अनेक प्रकार के प्रियवियोग, अप्रियसंयोग, इष्ट वस्तु का अलाभ आदि जनित दुःख अतिकष्टदायक हैं, अतः उन संसार दुःखों में नित्य भयभीत रहना संवेग है।

**(6) शक्ति के अनुसार त्याग** - पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु को देना त्याग है। पात्र के लिए दिया गया आहार उस दिन उसकी प्रीति का हेतु बनता है। अभयदान उस भव के दुःखों को दूर करने वाला है और पात्र को संतोषजनक है। सम्यग्ज्ञान का दान अनेक सहस्र भवों के दुःखों से छुटकारा दिलाने वाला है अर्थात् अनेक भवों के दुःखों के नाश में कारणभूत है। अतः (विधिपूर्वक) दिये गये तीनों प्रकार के दान ही त्याग कहलाते हैं।

**(7) शक्ति के अनुसार तप**- अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर मार्गविरोधी कायक्लेश आदि करना तप कहलाता है। यह शरीर दुःख का कारण है, अशुचि है, यथेष्ट(इच्छानुसार) पंचेन्द्रिय के भोगों को भोगने पर भी इनसे तृप्ति नहीं होती है। अतः इसे यथेष्ट भोगविधि से पुष्ट करना युक्त नहीं है। यह अशुचि शरीर भी शीलव्रतादि गुणों के संचय में आत्मा की सहायता करता है, ऐसा विचार करके विषयों से विरक्त हो आत्मकार्य के प्रति शरीर का नौकर की तरह उपयोग कर लेना

उचित है। अतः इस शरीर से यथाशक्ति मार्ग-अवरोधी कायक्लेश रूप अनुष्ठान करना तप कहलाता है।

**(8) साधु-समाधि** - भण्डागार की अग्निप्रशमन के समान मुनिगणों के तप का संधारण करना साधु-समाधि है। जैसे भण्डार में आग लगने पर भण्डार बहुउपकारी होने से उस अग्नि का प्रयत्नपूर्वक शमन किया जाता है अर्थात् अग्नि के शमन करने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार अनेक व्रतशीलों से समृद्ध मुनिगण के तप आदि में विघ्न हो जाने पर उस विघ्न का निवारण करना साधु समाधि है।

**(9) वैयावृत्य करना** - गुणवानों पर दुःख आने पर निर्दोष विधि से उसको दूर करना वैयावृत्य है। गुणवान् (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी) साधुजनों पर आये हुए संकट, रोग आदि आपत्ति को निर्दोष रीति से दूर करना उनकी सेवादि करना बहु उपकारी वैयावृत्य है।

**(10 से 13) अरिहंतादि भक्ति** - अर्हंत, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन में भावविशुद्धि युक्त जो अनुराग है, उनका नाम भक्ति है। केवलज्ञान रूपी दिव्य नेत्र के धारी अर्हंत में, श्रुतज्ञान रूपी दिव्य नेत्र के धारी आचार्य में, परहितप्रवण और स्वसमय एवं परसमय के विस्तार के निश्चय करने वाले बहुश्रुत (उपाध्याय) में तथा श्रुतदेवता के प्रसाद से प्राप्त होने वाले मोक्ष-महल में आरुढ़ होने के लिए सोपान रूप प्रवचन (जिनवाणी) में, भावविशुद्धिपूर्वक अनुराग करना भक्ति है। यह भक्ति तीन या चार प्रकार की है।

**(14) आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना** - षट् आवश्यक क्रियाओं का यथाकाल प्रवर्तन करना आवश्यक अपरिहाणि भावना है। सामायिक, चतुर्विंशतिसंस्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग ये छह आवश्यक क्रियाएँ हैं। सर्वसावद्य योगों का त्याग करना तथा चित्त को एकाग्र रूप से ज्ञान में लगाना सामायिक है। चतुर्विंशति तीर्थंकरो का कीर्तन चतुर्विंशतिस्तव है। मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक खड्गासान या पद्मासन से चार-चार शिरोनति और बारह आवर्तपूर्वक वन्दन होती है। कृत दोषों की निवृत्ति प्रतिक्रमण है। भविष्य में होने वाले दोषों का अपोहन-त्याग करना अर्थात् 'भविष्य में दोष न होने देने के लिए सन्नद्ध होना प्रत्याख्यान है।' प्रतिमाकाल तक शरीर के ममत्व का त्याग करना



कायोत्सर्ग है। इन षडावश्यक क्रियाओं को यथाकाल बिना नागा किये स्वाभाविक क्रम से करते रहना, उत्सुकता का त्याग नहीं करना अर्थात् उत्सुकतापूर्वक करना आवश्यक अपरिहाणि भावना कहलाती है।

**(15) मोक्षमार्ग की प्रभावना** - ज्ञान, तप, जिनपूजा विधि आदि के द्वारा धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है। परसमय रूपी खद्योत के प्रकाश को पराभूत करने वाले ज्ञान रूपी सूर्य की प्रभा से, इन्द्र के सिंहासन को कँपा देने वाले महोपवास आदि सम्यक् तपों के द्वारा और भव्यजन रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य की प्रभा के समान जिनपूजा के द्वारा सद्धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है।

**(16) प्रवचन वात्सल्य** - बछड़े में गाय के समान धार्मिक जनों में स्नेह प्रवचनवात्सल्य है। जैसे गाय अपने बछड़े से अकृत्रिम स्नेह करती है, उसी प्रकार साधर्मिक जनों को देखकर तद्गत स्नेह से ओतप्रोत हो जाना, या चित्त का धर्मस्नेह से आर्द्र हो जाना प्रवचनवत्सलत्व है, जो साधर्मियों के साथ स्नेह है वही तो प्रवचनस्नेह है।

सम्यक् प्रकार से पृथक-पृथक या सर्वरूप से भावित ये षोडशकारण भावनाएँ तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण होती है।

## नीच गोत्र का आस्रव

**परात्मनिन्दाप्रशंसे सद्सद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य। (25)**

**परनिन्दा, आत्मप्रशंसा सद्गुणों का उच्छादन, असद्गुणों का उद्भावन ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।**

सच्चे या झूठे दोष को प्रकट करने की इच्छा निन्दा है। गुणों के प्रकट करने का भाव प्रशंसा है। पर और आत्मा शब्द के साथ इनका क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा परनिन्दा और आत्मप्रशंसा रोकने वाले कारणों के रहने पर प्रकट नहीं करने की वृत्ति होना उच्छादन है और रोकने वाले कारणों का अभाव होने पर प्रकट करने की वृत्ति होना उद्भावन है। यहाँ भी क्रम से सम्बन्ध होता है। यथा- सद्गुणोच्छादन और असुद्गुणोद्भावना इन सब को नीच गोत्र के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

## उच्च गोत्र कर्म का आस्रव

**तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य। (26)**

**उनका विपर्यय अर्थात् पर प्रशंसा, आत्मनिन्दा, सदुणों का उद्भावन और असदुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं।**

जो गुणों में उत्कृष्ट हैं उनके प्रति विनय से नम्र रहना नीचैवृत्ति है। ज्ञानादि की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हुए भी उसका मद न करना अर्थात् अहंकार रहित होना अनुत्सेक है। ये उत्तर अर्थात् उच्च गोत्र के आस्रव के कारण हैं।

## अन्तराय कर्म का आस्रव

**विघ्नकरणमन्तरायस्य ।(27)**

**दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है।**

दानादि का विघात करना विघ्न कहलाता है। दानादि अर्थात् दान, लाभ, भोग उपभोग और वीर्य। किसी के दान लाभादि में विघ्न उपस्थित करना विघ्न कहलाता है। ज्ञान का प्रतिच्छेद सत्कारोपघात (किसी के सत्कार में विघ्न डालना) दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, अनुलेपन, गन्ध, माल्य, आच्छादन, विभूषण, शयन, आसन, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और परिभोग आदि में विघ्न करना, किसी के विभव, समृद्धि में विस्मय करना, द्रव्य का त्याग नही करना, द्रव्य के उपयोग के समर्थन में प्रमाद करना, देवता के लिए निवेदित किये गये या अनिवेदित किये गये द्रव्य का ग्रहण करना, देवता का अवर्णवाद करना, निर्दोष उपकरणों का त्याग, दूसरों की शक्ति का अपहरण, धर्म का व्यवच्छेद करना, कुशल चारित्र वाले तपस्वी, गुरु तथा चैत्य की पूजा में व्याघात करना, दीक्षित, कृपण, दीन, अनाथ, आदि को दिये जाने वाले वस्त्र, पात्र, आश्रय, आदि में विघ्न करना, परनिरोध, बन्धन, गुह्य अंगच्छेदन कान, नाक, ओंठ आदि का काट देना, प्राणिवध आदि अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण हैं।



## मेरे परम उपकारी सत्य-समता-शान्ति

आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आये हो मेरी जिन्दगी में...)

**आये हो मम जीवन में ... उपकारी परम बनके।**
**सत्य-समता-शान्ति...परम धर्म बनके।**
**सत्य समस्त द्रव्य-तत्त्व एवं पदार्थ,**
**देव शास्त्र गुरु व मम शुद्ध आत्म द्रव्य ।। स्थायी।**

**व्यवहार सत्य तथाहि वाचनिक सत्य,**
**हित-मित-प्रिय जो स्व पर हितकारक।**
**अप्रिय-कलह-कटुक-निन्दा व द्वेषकारक,**
**न कहूँगा सत्य भी जो आत्म स्वभाव नाशक।। आये...(1)**

**मेरा ही शुद्धात्मभाव मेरे हेतु परमसत्य...**
**इस हेतु असत्य व विभाव त्यागना साम्य,**
**राग द्वेष काम क्रोध मोह व मद मत्सर,**
**ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दा त्यागना साम्यभाव।। आये...(2)**

**आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द्व-विद्रोह-क्षोभ,**
**त्यागना है आकर्षण-विकर्षण-संक्लेश-विभाव,**
**निस्पृह-निराडम्बर-निष्कलंक-वितराग,**
**कृतकृत्य स्वावलम्ब-स्वतंत्र साम्यभाव। आये...(3)**

**इससे ही जायमान निराकुल-आत्मानन्द,**
**वह ही परम ध्येय ज्ञानानन्दमय शान्त भाव,**
**तृप्ति संतुष्टि आह्लाद या स्वयं में लीन...**
**वह ही शुद्ध-बुद्ध-आनन्द जो (मम, निज) स्वभाव।। (4)**

**यह ही मोक्ष अवस्था यह ही है परमधर्म**
**यह ही है आत्मस्वभाव यह है निजानन्द।**

तीनों मय ही मम स्वधर्म...अन्य सभी है विधर्म/(विभाव)
सिद्धि स्वात्मोपलब्धि 'कनक' का परम ध्येय।। आये...

## गुलाम की आत्मकथा
## मैं हूँ दास सब से नीच
## (राग द्वेष-मोह-स्वार्थादि से विवश जीव होते हैं पराधीन

आचार्य कनकनन्दी

(चाल:- क्या मिलिए...सायोनारा...)

मैं हूँ दास सब से नीच/(नीचे), मैं हूँ पराधीन गुलाम।
कर्माधीन हूँ संसारी जीव, चौरासी लक्ष्य योनि में भ्रमण।।
पहले में होता हूँ विभाव का दास, जिससे हो जाता हूँ कर्माधीन।
ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म या संख्यात-असंख्यात आदि कर्माधीन।। (1)

अनादि से हूँ मैं विभाव का दास, राग-द्वेष-मोह है मेरे विभाव।
इसके भी होते संख्यात-असंख्यात/(अनन्त) भेद तथाविध मेरा विभाव।।
मोह ही मेरा है परम शत्रु(मालिक) इसका मैं हूँ अनादि से गुलाम।
इसके आधीन मैं सत्य को असत्य, धर्म को मानूँ अधर्म।। (2)

राग भी मेरा है प्रबल शत्रु, अनात्म में होता हूँ आसक्त।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-भोग-उपभोग में होता हूँ मोहीत।।
तन-मन व इन्द्रियों को ही मैं, मानता हूँ मेरा स्वरूप।
इनमें ही मैं रागी होकर, करता हूँ फैशन-व्यसन।। (3)

इनके विपरीत कारणों से या, सचित्त-अचित्त मिश्र से।
करता हूँ द्वेष उसे नाश हेतु, करता हूँ विद्रोह से ले अनिष्ट।।
ईर्ष्या का मैं दास बनकर, दूसरों की प्रगति से जलता हूँ।
सज्जन गुणी-निर्दोष व हितकारी से भी घृणा करता हूँ।। (4)

तृष्णा का दास बनकर, तीनलोक की सम्पत्ति चाहता हूँ।
इस हेतु शोषण मिलावट से ले, भ्रष्टाचार-आक्रमण युद्ध करता हूँ।।



इन्द्रियों के दास बनकर भोग-उपभोग फैशन-व्यसन करता हूँ।
अश्लील-कामुक भाव व्यवहार, कथन से ले बलात्कारादि करता हूँ।। (5)

शरीर का दास बनकर शरीर को ही स्व-स्वरूप मानता हूँ।
इसका ही भरण-पोषण करता, आलस्य से धर्मकर्म न करता हूँ।।
मन को मैं दास बनाकर, मनमाना हर पाप करता हूँ।
नीति-नियम सदाचार सुनकर भी, मनके वश में चलता हूँ।। (6)

प्रसिद्धि का दास बनकर, दिखावा-आडम्बर मैं करता हूँ।
इसके वशवर्ती होकर पढ़ाई से ले धर्म-कर्म सभी करता हूँ।।
ऐसा मैं संकीर्ण स्वार्थ से ले अन्धविश्वास रुढि-परम्परा का दास हूँ।
कौन क्या बोलेगा क्या सोचेगा इसके अनुसार परिचालीत होता हूँ।। (7)

मैं केवल नहीं हूँ गुलाम क्रीतदास या ग्लेडियटर बन्धुआ-मजदूर।
बालमजदुर से ले सरकारी नौकर, बहुराष्ट्रीय कम्पनी के नौकर या गृह
आत्म विश्वास ज्ञान चारित्र रहित व स्वतंत्रता मौलिकता रहित हूँ।।
स्वावलम्बन व आत्मानुशासन बिना पराधीनता से सहित हूँ।। (8)

ऐसा है मेरा व्यापक रूप,क्षुद्र जीवों से ले राजा रंक तक।
आगम-अनुभव-मनोविज्ञान से मेरा वर्णन किया है 'सूरी कनक।।
मेरी गुलामी से जो होते हैं परे,वे ही यथार्थ से मालिक/(सनाथ) है।
परम प्रभु(स्वामी) तो अरिहंत सिद्ध, आचार्य-उपाध्याय आंशिक है।। (9)

इससे कम है व्रती श्रावक, इन से कम है सम्यग्दृष्टि जीव।
जो जितने अंश में शुद्ध-बुद्ध-आनन्द उतने अंश में निर्बन्ध।। (10)

नन्दौड़ 18.08.2018 रात्रि 11:13 व 12:34

## अनाथ कौन ? सनाथ कौन ?

गज-अश्व तथा मणि-मणिक्य आदि प्रचुर रत्नों से समृद्ध मगध का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि चैत्य उद्यान में विहार यात्रा के लिए नगर से निकला। वह उद्यान विविध प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण था, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित था और विविध प्रकार के पुष्पों से भली-भांति आच्छादित था कि

बहुधा, नन्दनवन के समान था। राजा ने उद्यान के वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक संयत, समाधि-सम्पन्न, सुकुमार एवं सुखोचित-सुखोपयोग के योग्य साधु को देखा। साधु के अनुपम रूप को देखकर राजा को उसके प्रति बहुत ही अधिक अतुलनीय विस्मय हुआ। अहो, क्या वर्ण(रंग) हैं। क्या रूप (आकार) है। अहो क्या क्षान्ति है, क्या मुक्ति है, निलोभता है। अहों, भोगों के प्रति कैसी असंगता है। मुनि के चरणों में वन्दना और प्रदक्षिणा करने के पश्चात् राजा न अतिदूर न अतिनिकट अर्थात् योग्य स्थान पर खड़ा रहा और हाथ जोड़कर मुनि से पूछने लगा

राजा श्रेणिक - ''हे आर्य! तुम अभी युवा हो। फिर भी है संयत। तुम भोगकाल में दीक्षित हुए हो, श्रामण्य में उपस्थित हुए हो। इसका क्या कारण है, मैं सुनना चाहता हूँ।''

मुनि-महाराज! मैं अनाथ हूँ। मेरा कोई नाथ-अभिभावक एवं संरक्षक नहीं है। मुझ पर अनुकम्पा रखने वाला कोई सुहृद मित्र मैं नहीं पा रहा हूँ।''

यह सुनकर मगधापत्य राजा श्रेणिक जोर से हंसा और मुनि से बोला- ''इस प्रकार तुम देखने में ऋद्धि संपन्न सौभाग्यशाली लगते हो, फिर भी तुम्हारा कोई कैसे नाथ नहीं है ?

राजा श्रेणिक - ''भदन्त! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ। हे संयत! मित्र और ज्ञानीजनों के साथ भोगों को भोगो। यह मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभ है।''

मुनि - ''श्रेणिक! तुम स्वयं अनाथ हो। मगधाधिप। जब तुम स्वयं अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकोगे ?

राजा पहले ही विस्मित हो रहा था, अब तो मुनि से अश्रुतपूर्व (पहले कभी नहीं सुना गया अनाथ यह) वचन सुनकर तो और भी अधिक संभ्रान्त संशयाकुल एवं विस्मित हुआ।''

राजा श्रेणिक - ''मेरे पास अश्व है, हाथी है नगर और अतःपुर है। मैं मनुष्यजीवन के सभी सुख भोगों को भोग रहा हूँ। मेरे पास आज्ञा-शासन और एश्वर्य प्रभुत्व भी है। इस प्रकार प्रधान श्रेष्ठ सम्पदा, जिसके द्वारा सभी कामभोग मुझे समर्पित हैं। मुझे प्राप्त हैं, इस स्थिति में भला मैं कैसे अनाथ हूँ ? भदन्त! आप झूठ न बोले।''



मुनि - ''पृथ्वीपति नरेश! तुम अनाथ के अर्थ और परमार्थ को नहीं जानते हो कि मानव अनाथ और सनाथ कैसे होता है ? ''महाराजा अण्याक्षित अनाकुल चित्त से मुझे सुनिए कि यथार्थ में मैं अनाथ कैसे हो गया। फिर किस भाव से मैंने उसका प्रयोग किया ? प्राचीन नगरों में असाधारण सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी है। वहां मेरे पिता थे। उनके पास प्रचुर धन का संग्रह था।''

''महाराज! प्रथम वय में युवावस्था में मेरी आंखों में अतुल असाधारण वेदना उत्पन्न हुई पार्थिव। उससे मेरे सारे शरीर में अत्यन्त जलन होती थी।'' क्रुद्ध शत्रु जैसे शरीर के मर्मस्थानों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र घोप दे और उससे जैसे वेदना हो, वैसे ही मेरी आँखों में भयंकर वेदना हो रही थी। जैसे इन्द्र के वज्र प्रहार से भयंकर वेदना होती है, वैसे ही मेरे कटिभाग में, अन्तरेच्छ हृदय में और उत्तमांग मस्तक में अति दारुण वेदना हो रही थी। विद्या और मंत्र में चिकित्सा करने वाले मंत्र तथा औषधियों के विशारद् अद्वितीय शास्त्रकुशल आयुर्वेदाचार्य मेरी चिकित्सा के लिए उपस्थित थे। उन्होंने मेरे हितार्थ वैद्य रोगी, औषध और परिचाररूप चतुष्पाद चिकित्सा की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके। यह मेरी अनाथता है। मेरे पिता ने मेरे लिए चिकित्सकों को उपहार स्वरूप सर्वसार अर्थात् सर्वोत्तम वस्तुए दी, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं करा सके यह मेरी अनाथता है।

''महाराज! मुझ में अनुरक्त और अनुवृत मेरी पत्नी अश्रुपूर्ण नयनों से मेरे उरःस्थल(छाती) को भिगोती रहती थी।''

''वह बाला मेरे प्रत्यक्ष में या परोक्ष मे कभी भी अन्न, पान, स्नान,गन्ध,माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती थी। वह एक क्षण के लिए भी मुझ से दूर नहीं होती थी। फिर भी वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी। महाराज! वही मेरी अनाथता है।

तब मैंने इस प्रकार कहा-विचार किया कि प्राणी को इस अनन्त संसार में बार-बार असह्य वेदना का अनुभव करना होता है। इस विपुल वेदना से यदि एक बार भी मुक्त हो जाऊँ तो मैं क्षान्त, दान्त और अनगारवृत्ति में प्रव्रजित दीक्षित हो जाऊंगा। नराधिप! इस प्रकार विचार करके मैं सो गया। परिवर्तमान (बीतती हुई) रात के साथ मेरी वेदना भी क्षीण हो गयी।''

''तदनन्तर प्रातःकाल में निरोग होते ही मैं बन्धुजनों को पूछकर क्षान्त, दान्त

और निरारम्भ होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित हो गया।''

'' तब मैं अपना और दूसरों का त्रस और स्थावर सभी जीवों का नाथ हो गया।।''

**अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।**
**अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा में नन्दणं वणं।।(36)**

''मेरी अपनी आत्मा ही वैतरागी नदी है, कूट शाल्मली वृक्ष है, काम-दुधा धेनु है और नन्दन वन है।

**अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।**
**अप्पामित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ।। (37)**

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्ता भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

''राजन्! यह एक और भी अनाथता है शान्त एवं एकाग्रत्ति होकर उसे सुनो। बहुत से ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं, जो निर्ग्रन्थ धर्म को पाकर भी खिन्न हो जाते हैं, स्वीकृत अनगार धर्म का सोत्साह पालन नहीं कर पाते हैं।''

'' जो महाव्रतों को स्वीकार कर प्रमाद के कारण उनका सम्यक् पालन नहीं करता है, आत्मा का निग्रह नहीं करता है, रसों में आसक्त है, वह मूल से रागद्वेष रूप बन्धनों का उत्छेद नहीं कर सकता है।''

''जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा और आदान-निक्षेप में और उच्चार-प्रसवण, के प्रतिष्ठापन में अयुक्तता-सजगता नहीं है, वह उस मार्ग का अनुगम नहीं कर सकता, जो वीरयात है अर्थात् जिस पर वीर पुरुष चले हैं। जो अहिंसादि व्रतों में अस्थिर है, तप और नियमों से भ्रष्ट है, वह चिरकाल तक मुण्डरुचि (कुछ साधना न कर केवल सिर मुंडा देने वाला भिक्षु) रहकर और आत्मा को कष्ट देकर भी संसार से पार नहीं हो सकता। जो पोली (खाली) मुट्ठी की तरह निस्सार है, खोटे सिक्के की तरह अयन्त्रित अप्रमाणित है, वैडूर्य की तरह चमकाने वाली तुच्छ राढ़ामणि-काचमणि है वह जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में मूल्यहीन है।''

''जो कुशील-आचारहीनों का वेष और ऋषि ध्वज (रजोहरणादि मुनि चिन्ह) धारण कर जीविका चलाता है, असंयत होते हुए अपने आप को संयत



कहता है वह चिरकाल तक विनिघात विनाश को प्राप्त होता है।''

''पिया हुआ कालकूट-विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र, अनियंत्रित वेताल जैसे विनाशकारी होता है, वैसे ही विषय विकारों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।'' जो लक्षण और स्वप्न विद्या का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य में अत्यन्त आसक्त है मिथ्या आश्चर्य को उत्पन्न करने वाली कुहेट विद्याओं से जादूगरी के खेलों से जीविका चलाता है, वह कर्मफल भोग के समय किसी की शरण नहीं पा सकता।''

''वह शील रहित साधु अपने तमस्तम तीव्र अज्ञान के कारण विपरीत दृष्टि को प्राप्त होता है, फलतः असाधु प्रकृति वाला वह साधु मौन धर्म की विराधनाकर सतत दुःख भोगता हुआ नरक और तिर्यंच गति में आवागमन करता रहता है । जो औद्देशिक, क्रीत कृत नियाग-नित्यपिण्ड आदि के रूप में थोड़ा सा भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता है, वह अग्नि की भांति सर्वभक्षी पापकर्म करके यहाँ से मरने के बाद दुर्गति में जाता है।''

''स्वयं की अपनी दुष्प्रवृति शील दुरात्मा जो अनर्थ करती है, वह गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर पाता है। उक्त तथ्य को निर्दय संयमहीन मनुष्य मृत्यु के क्षणों में पश्चाताप करते हुए जान पायेगा। जो उत्तमार्थ में अंतिम समय की साधना में विपरीत दृष्टि रखता है, उसकी श्रामण्य में अभिरुचि व्यर्थ है। उसके लिए न यह लोक है न परलोक है। दोनों लोक के प्रयोजन से शून्य होने के कारण वह उभय-भ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में घुलता जाता है। इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु भी जिनोत्तम भगवान् के मार्ग की विराधना कर वैसे ही परिताप को प्राप्त होता है, जैसे कि भोग रसों से आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुररी(गीध) पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है।''

**सोच्चाणं मेहावि सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं।**
**मग्गं कुसीलाण जहाव सव्वं महानियंठाण वए पहेणं।। (51)**

''मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान गुण से युक्त अनुशासन (शिक्षा) को सुनकर कुशील व्यक्तियों के सब भोगों को छोड़कर, महान् निर्ग्रन्थों के पथ पर चले।''

**चरितामायारगुणन्निए तओ, अणुत्तरं संजम पालियाणं।**

**निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं।। (152)**

''चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निराश्रय होता है। अनुत्तर शुद्ध संयम का पालन कर वह निराश्रय (राग-द्वेषादि बन्ध हेतुओं से मुक्त) साधक कर्मों का क्षय कर विपुल, उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करता है।''

इस प्रकार उग्र-दान्त, महान, तपोधन, महाप्रतिज्ञ, महान् यशस्वी उस महामुनि ने इस महा-निर्ग्रन्थीय महाश्रुत को महान् विस्तार से कहा। राजा श्रेणिक संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला - '' भगवान्! अनाथ का यथार्थ स्वरूप आपने मुझे ठीक तरह समझाया है।

**तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्म, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी!**
**तुब्भे सणाहा य सबन्धवा यं, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं।। (55)**

राजा श्रेणिक - 'हे महर्षि! तुम्हारा मनुष्य-जन्म सफल है, तुम्हारी उपलब्धियाँ सफल हैं, तुम सच्चे अनाथ और सबान्धव हो, क्योंकि तुम जिनेश्वर के मार्ग में स्थित हो।

**तं सि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण संजमा।**
**खामेमि ते महाभाग, इच्छामि अणुसासिउं।।(56)**

हे संयत! तुम अनाथो के नाथ हो, तुम सब जीवों के नाथ हो। महाभाग! मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। मैं तुमसे अनुशासित होने की इच्छा रखता हूँ।''

''मैंने तुमसे प्रश्न कर जो ध्यान में विघ्न किया और भोगों के लिए निमंत्रण दिया, उन सब के लिए मुझे क्षमा करे।''

इस प्रकार राजसिंह श्रेणिक राजा अनगार सिंह मुनि की परम भक्ति से स्तुति कर अतः पुर (रानियों) तथा अन्य परिजनों के साथ धर्म में अनुरक्त हो गया। राजा के रोम कूप आनन्द से उच्छवसित-उल्लसित हो गये। वह मुनि की प्रदिक्षिणा और सिर से वन्दना करके लौट गया ।

और वह गुणों से समृद्ध, तीन गुप्तियों से गुप्त, तीन दण्डों के विरत, मोहयुक्त मुनि पक्षी की भांति विप्र-अप्रतिबद्ध होकर भूतल पर बिहार करने लगे। (उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय 20)